साम्ब-पुराण

(सटीक हिन्दी रूपान्तर)

प्राक्कथन : डा० राजेन्द्र चन्द्र हाजरा

डा० विनोद चन्द्र श्रीवास्तव

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इन्डोलाजिकल पब्लिकेशन्स
इलाहाबाद

प्रकाशक

इण्डोलाजिकल पब्लिकेशन्स

४ सी/२ बैंक रोड

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण नवम्बर १९७५

मूल्य : ३५ रु०

४ डालर

२ पौण्ड

मुद्रक

अनिल प्रेस

३१ बी, कचेहरी नाका के पीछे

इलाहाबाद

माँ

जनकनन्दनी

की

पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित

FOREWORD

It is well known that the *Samba-purana* is one of the two Puranic works which are the most important records of the origin and development of Sun-worship in images in ancient and mediaeval India. Unfortunately, this work, though printed more than once, had no critical edition. and at present it is even not available in the market. Under these circumstances it is highly gratifying to see that Dr. V. C. Srivastava, who has given a good account of himself to the scholarly world by his highly interesting and informative work entitled *Sun-worship in Ancient India*, has prepered, for the use of interested scholars and others, a good Hindi translation of the *Samba-purana* and enriched it with valuable notes as well as with a copious and learned Introduction in which he has dealt, in his usual scholarly way, with the various problems relating to this work. I am sure, his Introduction and notes will be of immense help for a critical study of this upapurana.

Dr. Srivastava has also undertaken the preparation of a critical edition of this work on the basis of a good mumber of manuscripts, and I fervently hope that he will be able to bring out this edition at an early date and remove a long-felt want of Indologists in this field of research.

I convey my sincere congratulations to Dr. Srivastava and wish his work a wide publicity.

R. C. Hazra.

आमुख

भारतीय संस्कृति का एक अमूल्य एवं महत्त्वपूर्ण स्रोत पौराणिक परम्परा मे सन्निहित है। भारतीय धर्म-साधना, दार्शनिक चिन्तन, राजनीतिक इतिहास, साहित्यिक विकास तथा सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन व्यापक एवं समृद्धिशाली स्तर पर हमारे पौराणिक वाङ्मय के द्वारा होता है। यह तथ्य निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि पुराण की उत्पत्ति वैदिक परम्परा के साथ-साथ हुई परन्तु पुराण साहित्य का वास्तविक स्वरूप तृतीय एवं चतुर्थ शताब्दी ईसवी पूर्व से ही विकसित होता है। भारतीय संस्कृति की विकास-यात्रा के समानान्तर पुराणो का जो स्वरूप विकसित हुआ है उसमें परम्परा के संरक्षण के साथ नव्य उपकरणों को भी प्रश्रय मिला है। पुराण भारतीय संस्कृति के विकसनशील कोश हैं। पुराण के विकास की अविरल धारा तीसरी चौथी शताब्दी ईसापूर्व से प्रारम्भ होकर १४ वी-१५ वी शताब्दी ई० तक अविरल गति से बहती रही जिसमें विभिन्न परम्पराओं, सम्प्रदायों तथा व्यवस्थाओं ने अपनी-अपनी पुष्पाजलि अर्पित की है। परिणामतः भारत के इतिहास, राजनीति और संस्कृति की विभिन्न प्रवृत्तियों और परम्पराओ का दर्शन इस विशालकाय पुराण साहित्य में देखा जा सकता है[1]।

पुराणों की संख्या सामान्यतः अठारह स्वीकार की जाती है। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि पुराणों की संख्या इससे कही अधिक है। १८ पुराणों की श्रेणी में आने वाले पुराणों को महा-पुराण की संज्ञा दी गई है। द्रष्टव्य है कि पौराणिक वाङ्मय में महापुराणों के अतिरिक्त उपपुराणों का भी एक वर्ग है जो परम्परानुसार १८ हैं परन्तु वास्तविक दृष्टि-

---

१. प्रस्तुत आमुख मे प्रयुक्त सन्दर्भों के लिए इस ग्रन्थ के अन्त में उल्लिखित विशिष्ट ग्रन्थ-सूची की सहायता ले।

कोण से इससे कहीं अधिक है। उपपुराण साहित्य भारतीय संस्कृति के लिये उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने की महापुराण। कुछ अर्थों में तो उपपुराणों की महत्ता महापुराणों से भी अधिकतर है। सामान्यतः यह स्वीकार किया जा सकता है कि महापुराणों में समय-समय पर सम्वर्धन अधिक हुआ है परिणामतः उनमें प्रक्षिप्त अंश अधिक मिलते हैं। इसके विपरीत समाज में कम लोकप्रिय होने के कारण उपपुराणों में सम्वर्धन की प्रक्रिया कम हुई है। फलतः उनमें प्रक्षिप्त अंश भी कम मिलते हैं। इस प्रकार उपपुराणों का मूल रूप महापुराणों की अपेक्षा अधिकतर सुरक्षित रहा है। यह एक ऐसा ऐतिहासिक तथ्य है जो उपपुराणों की महत्ता को भारतीय संस्कृति के साधन के रूप में द्विगुणित कर देता है। इतिहास की एक विडम्बना रही है कि ऐसे मूल्यवान एवं उपयोगी स्रोत की महत्ता की ओर विद्वानों ने अधिक ध्यान नहीं दिया है। इसके दो मुख्य कारण प्रतीत होते हैं। एक तो परम्परागत समाज में उपपुराणों के प्रति हीनता की भावना दिखाई पड़ती है क्योंकि इन पुराणों को महापुराणों का उपभाग बताया गया है यद्यपि इन उपपुराणों मे अपने को पुराण ही कहा गया है। महापुराणों की तुलना में 'महा' और 'उप' दोनों उपाधियों के कारण तथाकथित उपपुराण साहित्य को हीनता की दृष्टि से देखा गया है। दूसरे अधिकांश उपपुराण साहित्य सामान्यतः अप्राप्य रहा है। इस श्रेणी के बहुत से ग्रन्थ अभी भी अप्रकाशित अवस्था में है। इस कारण भी विद्वानों में इस वर्ग के साहित्य के प्रति अधिक जागरुकता देखने को नहीं मिलती है। अस्तु, अज्ञानवश भी इस मूल्यवान साहित्य के प्रति अवहेलना की भावना दृष्टिगत होती है।

विद्वानों का मत है कि उपपुराण में 'उप' शब्द 'हीनता' अथवा 'निम्नता' के दृष्टिकोण से प्रयुक्त किया जाता था। द्रष्टव्य है कि 'उप' शब्द का अर्थ 'समीपता' अथवा 'निकटता' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता रहा है जैसा कि उपनिषद में 'उप' का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है। पुराण के पाँच लक्षण बताये गये हैं जो सामान्यतया महापुराणों में पाये जाते हैं। परन्तु कालान्तर में इन लक्षणों की संख्या पाँच से बढ़ाकर दस कर दी गई

धार्मिक सम्प्रदायों के विषय में विचार-विमर्श भी एक प्रमुख लक्षण हो गया। साम्प्रदायिक विवरण पुराण की रचना के पीछे एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य बन गया। आगे चलकर यह प्रवृत्ति इतनी अधिक बलवती हो गई कि अनेक पुराणों में अन्य लक्षणों को त्याग दिया गया केवल धार्मिक सम्प्रदायों का इतिहास प्रस्तुत करना ही इनका एक मात्र उद्देश्य हो गया। उपपुराण साहित्य में यह प्रवृत्ति अधिक प्रखर हो उठी है। परिणामतः अधिकांश उपपुराण साम्प्रदायिक ग्रन्थों के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। यद्यपि पुराणों के पंच-लक्षण सिद्धान्त पर आधारित न होने के कारण शास्त्रसम्मत समाज ने इन्हें उस प्रकार की प्रतिष्ठा नहीं दी जैसा कि महापुराणों को दी गई थी तथापि परम्परागत समाज इनकी अवहेलना भी नहीं कर सका क्योंकि ये उपपुराण समाज में विभिन्न साम्प्रदायों के विचार और विकास के महत्त्वपूर्ण साधन थे। अस्तु इन्हें उपपुराण की संज्ञा दी गई जिसका अर्थ होता है एक विशिष्ट प्रकार के पुराण जो परम्परागत पुराणों के समीप हैं।

सौरोपासना भारतीय धर्म-साधना की एक अति प्राचीन परम्परा है जिसे नवीन पाषाण काल से लेकर हिन्दू काल की समाप्ति तक अनेक प्रजातियों, भाषाभाषियों एवं परम्पराओं ने समय-समय पर समृद्धिशाली बनाया है। भारत के आदिकालीन समाज में सूर्य की पूजा अनेक प्रतीकों के माध्यम से होती थी। वैदिक धर्म में सूर्य देवताओं का महत्त्वपूर्ण स्थान था जबकि सूर्य के नैसर्गिक रूप की उपासना ऋचाओं और यज्ञ के माध्यम से होती थी। उसके विभिन्न रूपों की उपासना सूर्य, सवितृ, विष्णु, पूषन, अश्विन, आदित्य आदि नामों के अन्तर्गत होती थी। सूर्य की प्रतीकात्मक पूजा की परम्परा वैदिक धर्म में अक्षुण्ण रही परन्तु सौरोपासना का क्लासिकल रूप वेदोत्तर काल में ही हमारे सम्मुख आया जबकि दो नवीन प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर सूर्यपूजा का साम्प्रदायिक रूप प्रखर हुआ। इनमें प्रथम कारण देशीय था जबकि दूसरा प्रभाव विदेशीय। वेदोत्तर काल की विचारधारा में जो क्रान्तिकारी प्रवृत्तियाँ उपजीं उनमें भक्तिवाद का उदय एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। फलतः अनेक आस्तिक साम्प्रदायों का विकास हुआ जैसे शैव, वैष्णव, सौर

भविष्य पुराण १'५२ से साम्ब-पुराण के श्लोक प्राप्त होने लगते हैं १'५२ वस्तुत: १'५१ का विकास हैं। इसके कथाकार वासुदेव हैं जिन्हे सर्व प्रथम १'४८ में प्रस्तुत किया गया है। भविष्य पुराण के १-४८,४९ पर तांत्रिक प्रभाव देखा जा सकता है। साम्बपुराण के अध्याय १-१६, १८ २१, २४-३८ एवं ४६ तांत्रिक प्रभाव से मुक्त हैं अस्तु निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भविष्यपुराण के ये अंश (१'५१,५२) साम्ब-पुराण के मूल भाग के बाद लिखे गये होंगे। साम्ब-पुराण के अध्याय ८ के अनेक श्लोक भविष्यपुराण में तीन भिन्न स्थानों में संग्रहीत हैं जो यह प्रकट करता है कि भविष्यपुराण साम्ब-पुराण का ऋणी है। साम्ब-पुराण अध्याय ९ में सूर्य के विभिन्न नामों की व्युत्पत्ति दी है। भविष्यपुराण ने इस अध्याय की अन्य सामग्री तो ग्रहण की है किन्तु सूर्य के नामों के व्युत्पत्ति सम्बन्धी विवरण को स्थान नही दिया। साम्ब-पुराण और भविष्यपुराण के संज्ञाअख्यान भी भिन्न हैं। साम्ब-पुराण के अध्याय १० और ११ में अधिकांश श्लोक भविष्यपुराण १'७९ में संग्रहीत है परन्तु भविष्यपुराण में साम्ब-पुराण को ११'२-१२ अ के श्लोक नहीं मिलते। अन्य साक्ष्यों के आधार पर भी कहा जा सकता है कि भविष्यपुराण ने साम्बपुराण से सामग्री ग्रहण की हैं। भविष्यपुराण ने वृहत-संहिता से अनेक श्लोकों को ग्रहण किया है परन्तु साम्ब-पुराण की एक भी पक्ति की समानान्तर पंक्ति वृहत-संहिता में नहीं मिलती जबकि साम्ब-पुराण के अध्याय ८ और २९-३१ के श्लोक भविष्यपुराण में मिलते है जिससे ज्ञात होता है कि साम्ब-कथा को भविष्यपुराण ने साम्ब पुराण से ग्रहण किया और वृहत-संहिता से सामग्री ग्रहण करके उस अध्याय का विस्तार किया। भविष्यपुराण १'६६ में साम्ब-पुराण की ओर संकेत मिलता है। भविष्यपुराण १'१ ३९ में मगों के आगमन का आख्यान तीन उपभागों के विभक्त है जिनमें तृतीय भाग प्रथम से सीधा सम्बन्धित है परन्तु द्वितीय भाग बिल्कुल अलग है। द्वितीय भाग साम्ब-पुराण में नही पाया जाता है जबकि प्रथम और तृतीय भाग साम्ब पुराण में उपलब्ध है।

भविष्यपुराण के समान ब्रह्मपुराण और साम्ब-पुराण में भी अनेक श्लोक समान रूप से मिलते है। आन्तरिक साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ब्रह्मपुराण के ये श्लोक साम्बपुराण से ग्रहण किये गये हैं। उदाहरण के लिये ब्रह्मपुराण २६, साम्बपुराण ३८ और भविष्य १·८०-८२ और ६३ को लिया जा सकता है। स्कन्दपुराण प्रभास खण्ड में अनेक श्लोक साम्बपुराण से संग्रहीत लगते हैं। उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि साम्ब-पुराण सौर धर्म का मूल ग्रन्थ था जिससे भविष्य, ब्रह्म और स्कन्द पुराणों ने सामग्री ग्रहण की है। हाजरा के इस मत को काणे ने स्वीकार नहीं किया है परन्तु खेद का विषय है कि काणे ने स्वयं कोई तर्क अपने विचार के पक्ष प्रस्तुत नहीं किया है।

हाजरा महोदय ने साम्ब-पुराण का तिथि-क्रम निश्चित किया है जो सामान्यत: मान्य है। उनके अनुसार साम्बपुराण में रचना के दृष्टि-कोण से कई इकाइयाँ है और समय-समय पर इसमें प्रक्षेपों के कारण पाठवृद्धि होती रही है। यह न तो एक समय की ही रचना है और न यह एक व्यक्ति द्वारा ही लिखी गई है। इसके मुख्य रूप से दो भाग देखे जा सकते हैं। प्रथम समूह में अध्याय १ (श्लोक १७-२५ को छोड़कर), २-१५, १६, १८-२१, २४-३२, ३४-३८, ४६ और ८४ आते हैं। यह साम्बपुराण का मूल भाग है जिसकी रचना ५०० ई०—८०० ई० के मध्य की गई थी विशेष रूप से इस समय के प्रारम्भ इसी में समूह में अध्याय १७, २०-२३ भी आते है परन्तु इनका समय ६५० ई० के उपरान्त माना जा सकता है। अध्याय ३३ की रचना ७००-६५० ई० के मध्य की गई। अध्याय ४४-४५ का रचना-काल ६००-१०५० ई० के मध्य स्थापित किया जा सकता है।

द्वितीय समूह के अध्याय ३६-४३, ४७-८३ आते हैं जिसका समय १२५०-१५०० ई० के मध्य स्थापित किया गया है। द्वितीय समूह में अनेक इकाइयां है जैसे ३६-४१, ४२-४३, ४७-५२, ५३-५५ (श्लोक १-६७ तक) तथा ५५ (श्लोक ६८ से)—८३। स्टेटिन्क्रान ने हाजरा के इस तिथि-क्रम

क्रम को स्वीकार किया है यद्यपि उनका विचार है कि साम्ब-पुराण का मूल भाग पाँचवी शताब्दी ई० के उपरान्त नहीं रक्खा जा सकता है। हाजरा का यह मत भी तर्क संगत लगता है कि साम्ब-पुराण के मूल रूप में अनेक श्लोक और थे जो अब उसमें नहीं पाये जाते।

साम्ब-पुराण के प्रथम भाग की रचना पंजाब में हुई होगी जबकि उत्तर कालीन भाग का सम्बन्ध उड़ीसा से है। इस सिद्धान्त के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं। साम्ब-पुराण का प्रथम भाग भविष्यपुराण में संग्रहीत है किन्तु द्वितीय भाग का एक भी श्लोक भविष्यपुराण में नहीं मिलता जिससे स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों भाग विभिन्न समयों पर लिखे गये होंगे। प्रथम समूह के अध्यायों का सम्बन्ध चन्द्रभागा के तट पर स्थित मित्रवन से है जिसकी स्थिति पंजाब में स्थापित की जाती है परन्तु द्वितीय समूह के अध्यायों में समुद्र तट पर स्थापित मित्रवन का उल्लेख है जिससे अभिप्राय कोणार्क से लगाया जा सकता है। प्रथम समूह के अध्यायों में सूर्य-पूजा के स्थान को मित्रवन कहा गया है परन्तु द्वितीय समूह के अध्यायों में इसे तपोवन, सूर्यकानन, रविक्षेत्र, और सूर्यक्षेत्र कहा गया है। ब्रह्म-पुराण में कोणार्क को रविक्षेत्र, सूर्यक्षेत्र आदि कहा गया है। साम्ब-पुराण के प्रथम समूह के अध्यायों में साम्ब द्वारा मित्रवन में सूर्य मूर्ति की स्थापना का उल्लेख है जब कि द्वितीय समूह के अध्यायो में भिन्न विवरण मिलता है और कहा गया है कि समुद्र में सूर्यमूर्ति दिखाई पड़ी जिसे जन समूह ने उठाकर स्थापित किया। यह विवरण कोणार्क के लिए ही उचित लगता है। अन्य साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रथम समूह और द्वितीय समूह की रचना भिन्न-भिन्न स्थानों, भिन्न-भिन्न समयों और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा हुई। उदाहरणतया प्रथम समूह के अध्यायों में वेदों को मान्यता प्रदान की गई है जब कि द्वितीय समूह में तान्त्रिक प्रभाव सर्वोपरि है।

साम्ब-पुराण की निम्नलिखित पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। इण्डिया आफिस लन्दन पुस्तकालय में साम्ब-पुराण की दो पाण्डुलिपियाँ (इग्लिंग कैटलाग संख्या ३६१९ तथा ३६२०) उपलब्ध हैं। ये दोनों पाण्डु-लिपियाँ समान हैं। एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता तथा संस्कृत कालेज कलकत्ता की पाण्डुलिपियों से मिलती जुलती हैं। वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित साम्ब-पुराण से भी मिलती जुलती हैं केवल अध्यायों में भेद है इसमें केवल ७० अध्याय हैं जबकि प्रकाशित संस्करण में ८४ अध्याय हैं। इस भेद का कारण यह है कि इस पाण्डुलिपि के एक अध्याय को बहुधा कई अध्यायों में प्रकाशित संस्करण में विभाजित कर दिया गया है उदाहरणार्थ इसके पाण्डुलिपि अध्याय १ को प्रकाशित संस्करण में १ और २ अध्यायों के रूप में विभाजित किया गया है। इसी प्रकार अध्याय ४८ को प्रकाशित संस्करण में ४९–५२ अध्यायों में किया गया है। इस पाण्डुलिपि के विषय-वस्तु को ४८ अध्याय के बाद २२ उपभागों में बाँटा गया जिसे पटल कहा गया है। इन सबको ज्ञानोत्तर शीर्षक के अन्तर्गत रखखा गया हैं। इसका अन्तिम भाग प्रकाशित संस्करण का अध्याय ८४ हैं। अन्तिम श्लोक कलकत्ता संस्कृत कालेज की पाण्डुलिपि के समान है।

ऐशियाटिक सोसाइटी बंगाल के पुस्तकालय में साम्ब-पुराण की चार पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं जिसे पं० हर प्रसाद शास्त्री ने ऐशियाटिक सोसाइटी कैटलाग भाग ५, कलकत्ता, १९२८ में ४०९१, ४०९२, ४०९३, तथा ४०९४ के अन्तर्गत उल्लिखित किया हैं। ४०९१ संख्या की पाण्डुलिपि में ११$\frac{3}{4}$ × ५$\frac{3}{4}$ इंच आकार के १११ फोलियों है। प्रत्येक फोलियों के प्रत्येक पृष्ठ पर १३ लाइने है कुल मिलाकर २८८६ श्लोक है। लिपि नागर है। यह इण्डिया आफिस की पाण्डुलिपि संख्या ३६१९ से काफी मिलती है यद्यपि इण्डिया आफिस की पाण्डुलिपि का दूसरा प्रारम्भिक श्लोक **तिमिर किरकिरातः** इस पाण्डुलिपि में नहीं मिलता। प्रकाशित संस्करण के अध्याय ८१ और ८२ के कुछ अंश से यह पाण्डुलिपि समाप्त होती है। प्रकाशित संस्करण के

अध्याय ८२ के कुछ भाग और ८३-८४ का यहाँ अभाव है। उसकी पुष्पिका के पूर्व निम्नलिखित श्लोक आता है।

'चतुष्टं साधयोभिर्न्यं ऐकैकस्य पृथक् पृथक् ।
क्षुरकादि शलाकान्ता मार्गान्तिश्चैव साधकः ॥''

इस पाण्डुलिपि में साम्ब-पुराण को निरन्तर शाम्ब-पुराण कहा गया है। इसी पुस्तकालय की दूसरी पाण्डुलिपि (संख्या ४०९२) में १२" × ४½" के ८८ फोलियों हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर पंक्तियों की संख्या १३ है। श्लोक संख्या ३२०० है। लिपि मैथिल है। तिथि शाक सम्वत १७६४ है। इण्डिया आफिस के ३६१९-२० से मिलती जुलती है। इसमें ७५ अध्याय है जिसका अन्तिम अध्याय प्रकाशित संस्करण का अध्याय ८४ हैं। इस भेद के होते हुए भी यह पाण्डुलिपि और प्रकाशित संस्करण विषय वस्तु के दृष्टि कोण से एक ही हैं। इसके लेखक पं० बद्री नारायण मिश्र दौलतगंज छपरा (बिहार) निवासी हैं इसमें अध्याय ५२-७४ को ज्ञानोत्तर शीर्षक के अन्तर्गत रक्खा गया है। यह पाण्डुलिपि पूर्ण है। यह निम्नलिखित श्लोक में अन्त होती है।

"अष्टादश पुराणानां श्रवणो यत् फलं भवेत् ।
तत्फलं सम्बोप्नोति सत्यं सत्यं बदामित ॥"

यहाँ की ४०९३ संख्या की पाण्डुलिपि में १२½" × ६" के कुल १०० फोलियों हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर १३-१४ लाइनें हैं। लिपि नागर है। तिथि विक्रम सम्वत १९३० है। यह पाण्डुलिपि केवल ८३ वें अध्याय तक है। इण्डिया आफिस कैटलाग संख्या ३६१९ से मिलती है। यह **तिमिर किरकिरातः** से प्रारम्भ होती है और अन्त होती है—"एतत सर्वं समाख्यातं भास्करेण महात्मना पृच्छतो मम शाम्बोहिम पुष्येन महीतले।" इसके लेखक चित्रसिन मिश्र है

४०६४ संख्या की चतुर्थ पाण्डुलिपि है। यह साम्ब-पुराण का साँतवाँ अध्याय है जिसका नाम शाकद्विपिद्विजराजमहात्म्य है। इसमें ७"×४" के कुल ७ फोलियों हैं जिसके प्रत्येक पृष्ठ पर ८-१० लाइने हैं। लिपि नागर है तिथि विक्रम सम्वत १८७६ है। यह पूर्ण है। इसका प्रारम्भ निम्नलिखित श्लोक से होता है।

"मेघाच्छन्नोयदा सूर्य्यः श्राद्धादौ यज्ञ कर्मणि।
शाकद्वीपी द्विजस्तम स्थापनीयः प्रयत्नतः॥
शाकद्वीपी द्विजोयत्र सूर्य्यो न संशयः।
सूर्य्योऽग्निर्न ब्राह्मणोयत्र तत्र यज्ञादिक क्रिया॥"

इसका अन्त निम्नलिखित पुष्पिका से होता है।

"इति श्री साम्बपुराणे शाकद्विपि द्विजराज
महात्मयं नाम सप्तमोऽध्यायः।"

तन्जोर महाराजा सरफोजी की सरस्वती महल लाइब्रेरी में साम्ब-पुराण की (पी० पी० एस० शास्त्री के कैटलाग संख्या १०५८४ की) एक पाण्डुलिपि सुरक्षित है जो बर्नल के कैटलाग की संख्या १६३० है। इसमें १६३ पृष्ठ हैं। १३½"×६½" के कुल ७६ फोलियों है। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तिया हैं। इसकी लिपि देवनागरी है। इसका प्रारम्भ निम्नलिखित श्लोक से होता है :—

"श्री गणेशाय नमः
नमस्सवित्रे जगदेकचक्षुषे।
जगत प्रसूति स्थिति नाश हेतवे॥
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे।
विरञ्चि नारायणशङ्करात्मने

तिमिरकिर ···रातः प्रत्यहं सप्रभातः ।
कमलविमलबन्धुः पुण्य कारुण्य सिन्धुः ॥
भुवनभवन द्वीपः कुष्टयामप्रतीपः ।
सुरमुनिकृतसेवः पातु वो भानु देवः ॥"

इसका अन्तिम श्लोक है :

"करुण विमल मूर्तिः धातु पाप प्रपंचः ।
वल्लितसकल भोगो पाति लोकं च विष्णोः ॥"

कीथ ने भी इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित साम्ब-पुराण की एक पाण्डुलिपि का उल्लेख संख्या ६८३६ के अन्तर्गत किया है जो ग्रन्थलिपि है में है। यह १८ वीं शताब्दी में लिखी गई है। प्रत्येक पंक्ति में ६ और ५ चरण हैं। इसे साम्ब-पुराण के सारोद्धार का एक अंश कहा जा सकता है। इसका प्रारम्भ फोलियो ७७ से होता है :

"सांबो [व] पुराणे अगस्त्यं प्रति परमेश्वरः ।
चतुर्विधं तु सन्यासो विद्यते वृत्ति भेदतः ॥···"

फोलियो ७७ ब इस प्रकार है;

"इति सांबोरपुराण सारोद्धारे द्वितीयऽध्यायः । ··"

इसकी समाप्ति होती है :—

"कारणात् भिन्न प्रपन्चस्सत्य इति ब्रूमः ।
साचारम्भ श्रुत्वा मतघट दृष्टान्तेन निवर्तनीय "

यह पाण्डुलिपि अशुद्ध है। इग्लिंग की पाण्डुलिपि संख्या ३६१९ से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

कलकत्ता संस्कृत कालेज पुस्तकालय में भी साम्ब-पुराण की एक पाण्डु-लिपि सुरक्षित है जिसे शास्त्री एवं गुई के कैटलाग में संख्या २१४ दी गई। इसे साम्ब-पुराण कहा गया है। १२" × ६" के देशी कागज का प्रयोग हुआ है। ३५०० श्लोक है। यह पाण्डुलिपि पूर्ण है। इसकी तिथि ज्ञात नहीं है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है :

"श्री गणेशाय नमः/श्री सरस्वत्यैनमः ओं नमः सूर्याय।
नमः सवित्रे जगदेक चक्षुषे जगत्प्रसूति नाश हेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्म धारिणे विरंचि नारायण शङ्करात्मने नमः।"

समाप्ति इस प्रकार होती :—

"करुणाविमलमूर्ति वृतपापप्रचण्डो।
बलित सकल भोगो याति लोकं च विष्णोः॥"

इसकी पुष्पिका इस प्रकार है इति शाम्ब-पुराणं समाप्तति। ग्रन्थ संख्या ३५००।

"विवरणम्—शाम्ब-पुराणेतदुपपुराणान्तर्गतम्।"

संस्कृत कालेज बनारस में भी साम्ब-पुराण की एक पाण्डुलिपि सुरक्षित है। गोपीनाथ कविराज के कैटलाग में इसका विवरण उल्लिखित है।

साम्ब-पुराण का प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से १८९६ में हुआ था। यह सम्पादन सम्भवतः एक पाण्डुलिपि के आधार पर हुआ था। पाण्डु-

लिपियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर सम्पादन नहीं हुआ था। इसके अतिरिक्त इस प्रकाशित संस्करण में अनेक अशुद्धियाँ हैं। स्टेटेन्कान ने जर्मन भाषा में साम्ब-पुराण का पाण्डुलिपियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर पाठ प्रस्तुत किया है परन्तु भाषा की कठिनाई के कारण सामान्य हिन्दी भाषाभाषी के लिए अप्राप्य है। अन्य कोई प्रकाशित संस्करण नहीं है।

साम्ब-पुराण की विषय वस्तु का ज्ञान विषय-सूची देखने से हो सकता है। संक्षेप में यह कहना असंगत न होगा कि साम्ब-पुराण का मुख्य विषय मग परम्परा से प्रभावित सौर धर्म है। यह सर्वविदित है कि प्राचीन काल मे सूर्य-पूजा की एक विश्वव्यापी परम्परा रही है। प्राचीन भारत में प्रागैतिहासिक काल में ही प्रतीकात्मक रूप में सूर्य के नैसर्गिक स्वरूप की पूजा होती थी। वैदिक धर्म साधना में सूर्योपासना की अविरल धारा विद्यमान थी। सूर्य के प्राकृतिक रूप की अर्चना सूर्य, सवित्र, मित्र, विष्णु, पूषन, अश्विन, आदित्य आदि नामों के अन्तर्गत होती थी। वेदोत्तर काल में आर्य तथा अनार्य परम्परा के पारस्परिक आदान प्रदान के फल स्वरूप एक सौर सम्प्रदाय का उद्भव हुआ जिसका सर्वप्रथम विवरण महाभारत में मिलता है। इस समय सूर्य का मानवीकरण हुआ परन्तु सूर्य की पूजा मूर्त्तियों एवं मन्दिरो के माध्यम से प्रारम्भ करने का श्रेय मग पुरोहितों को हैं जिन्होंने भारतीय सौर परम्परा को मुलत: प्रभावित किया और उसका पुनुर्त्थान भी किया। साम्ब-पुराण में इसी परम्परा के प्रभाव-वश परिवर्तित सौर धर्म का विवरण मिलता है।

सामान्यत: यह स्वीकार किया जाता है कि मग ईरान के पुरोहित थे जो सूर्य एव अग्नि की संयुक्त उपासना मूर्त रूप में करते थे। यद्यपि मूलत, ये पुरोहित मीडिया के निवासी थे। उनके ईरानेयन होने तक उनके विश्वास पर कैलिडयन और बैबीलोनियन तत्वों का प्रभाव पड़ चुका था। शाकद्वीप जहाँ से मगों के आगमन का उल्लेख पुराणों में किया गया है, सम्भवत: पूर्वी ईरान में था। मगों की प्राचीनता का प्रश्न अत्यधिक जटिल एवं विवाद

ग्रस्त है। सामान्यत: यह विश्वास किया जाता है कि मगों का भारत में आगमन ग्रीक शकप्रथम शताब्दी ई० पू०—प्रथम द्वितीय (शताब्दी ईसवी) पह्लव कुषाण काल में हुआ परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मगों का आगमन कई धाराओं में हुआ। मुख्यत: तीन धाराओं का संकेत मिलता है। प्रथम लहर शाखामनीसी आक्रमणकारियों के साथ उत्तर पश्चिम भारत में पाँचवी शताब्दी ई० पू० में आयी। मगों की दूसरी लहर शककुषाणकाल (१ शताब्दी ई० पू०-१-२ शताब्दी ई०) में आई जबकि अन्तिम लहर पारसियों के साथ ७ वी शताब्दी ई० में आई।

भारतीय सूर्यपूजा पर मगों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा यद्यपि यह मानना कि भारतीय सौर परम्परा मगों के प्रभाव के कारण समाप्त हो गई उचित नहीं हैं। मूर्ति एवं मन्दिर इन दोनों पर आधारित सूर्य-पूजा पर मग परम्परा का विशेष प्रभाव पड़ा। इसी प्रभाव के कारण सूर्य-मूर्तियाँ ईरानियन विशेषताओं से परिपूर्ण होकर प्रचुर मात्रा में शक-कुषाण काल में बनने लगी और समस्त उत्तर भारत में इन्हीं का प्रचार हुआ यद्यपि दक्षिण भारत में भारतीय परम्परा पर आधारित सूर्य मूर्तियों का ही प्रचलन रहा।

भारतीय संस्कृति समन्वयवादिता के लिए प्रसिद्ध रही है। भारतीय एवं मग परम्परा में सामन्जस्य स्थापित किया गया। चतुर्थ पाँचवी शताब्दी ई० तक मगों को भारतीय समाज में मान्यता प्रदान की गई। साम्ब-पुराण की रचना इसका सबसे प्रबल प्रमाण है। मगों की लोकप्रियता के मुख्य कारण थे उनकी प्रचारात्मक परम्परा, राजकीय संरक्षण, सूर्य पूजा के फलों का प्रचार, और विशेष रूप से सूर्य की मूर्तियों एवं मन्दिरों के माध्यम से पूजा।

सूर्यपूजक पुरोहितों को मगों एवं भोजकों-इन दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है। साम्ब-पुराण के आन्तरिक साक्ष्य के आधार पर यह कहा

जाता है कि मग और भोजक एक थे अन्तर केवल इतना था कि मग 'म' अक्षर की पूजा करते थे जबकि भोजक अथवा याजक सूर्य की पूजा धूप दीप के माध्यम से करता था। यह भी सम्भव है कि भोजक भारतीय आदि परम्परा के पुरोहित रहे हों कालान्तर में आपत्तिजनक कृत्यों के करने के कारण इन्हें भोजक कहा जाने लगा। स्टेटेन्टक्रान ने हाल में यह विचार प्रकट किया है कि भोजक और याजक दो भिन्न प्रकार के पुरोहित थे क्योंकि उनके अनुसार साम्ब-पुराण अपने प्रथम समूह के अध्यायों में भोजक का उल्लेख नहीं करता। प्रकाशित संस्करण में केवल दो बार भोजक का उल्लेख हुआ जिसे स्टेटेन्क्रान अशुद्ध मानते हैं क्योंकि यह पाठ पाण्डुलिपि में नहीं मिलता। इन दोनों के भिन्न व्यक्तित्व के पक्ष में यह भी मत प्रतिपादित किया गया है कि इन दोनों की उत्पत्ति, धार्मिक दृष्टिकोण एवं सामाजिक स्थिति में बड़ा भेद है। स्टेटन्क्रान का यह सिद्धान्त क्रान्तिकारी है, अस्तु इसके औचित्य का विश्लेषण भविष्य में वांछनीय है क्योंकि सौर धर्म की समस्या को इस मत ने और अधिक जटिल बना दिया है।

साम्ब-पुराण के उत्तरकालीन अध्यायों में तान्त्रिक प्रभाव से अभिभूत सूर्यपूजा का उल्लेख किया गया है। तान्त्रिक प्रभाव बाह्य क्रियाओं एवं अनुष्ठानों पर पूर्ण रूप से छा गया था क्योंकि तान्त्रिक क्रियायों जैसे मारण, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण आदि का उल्लेख किया गया है। तान्त्रिक मन्त्रों-बीजो आदि का भी उल्लेख हुआ है। तान्त्रिक परम्परा के मूल सिद्धान्त एवं शक्तितत्त्व का भी प्रतिपादन देखने को मिलता है।

साम्ब-पुराण के उत्तरकालीन अध्यायों में सौर एवं शैव परम्पराओं का सामन्जस्य स्थापित किया गया है। सूर्य एवं शिव की अनन्यता का सिद्धान्त पूर्व मध्यकालीन भारतीय धर्म साधना की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है जिसका समुचित प्रतिपादन साम्ब-पुराण के उत्तर कालीन अध्यायों में मिलता है।

साम्ब-पुराण में सूर्य-पूजा के तीन प्रसिद्ध केन्द्रों का उल्लेख किया गया है जिसमें प्रथम स्थान को मूल स्थान, मैत्रवन आदि कहा गया है जो आधुनिक मुल्तान ही माना जाता है। यद्यपि स्टेटेन्कान ने इस मत को स्वीकार नहीं किया है। साम्ब-पुराण का प्रथम भाग मुख्यत: इसी से सम्बन्धित है। सूर्य पूजा का द्वितीय स्थान कालप्रिय कहा गया है जो उत्तर प्रदेश में काल्पी बताया जाता है। इस कालप्रिय की पहचान कुछ विद्वानों के अनुसार उज्जयनी के महाकाल से की जा सकती है जबकि अन्य विद्वानों के अनुसार कालपी की पहचान कालप्रिय नाथ से की जाती है जहाँ भवभूति ने तीनों नाटकों की रचना की थी। तृतीय स्थान शुतीर, मुन्डीर, उदयाचल, सूर्य-कानन, रविक्षेत्र, सूर्यक्षेत्र अथवा मित्रवन कहा गया है जो कोणर्क के विभिन्न नाम है। इस पुराण के द्वितीय भाग का सम्बन्ध इसी स्थान से है।

उपर्युक्त विवरण से प्रकट होता है कि साम्ब-पुराण भारतीय सौरो-पासना के लिये एक मात्र महत्त्वपूर्ण प्राप्य ग्रन्थ है जिसके अध्ययन से भारतीय सौरधर्म साधना के अनेक अन्धकारमय पक्ष आलोकित होते है साथ ही साथ भारतीय समाज में मगों के आगमन और समाविष्ट होने के तत्त्व द्वारा सामाजिक गतिशीलता पर भी प्रकाश पड़ता है। इस आदि एवं पवित्र ग्रन्थ का हिन्दी भाषा में अनुवाद अभी तक उपलब्ध नहीं था अस्तु विकंटेश्वर संस्करण का यह हिन्दी रूपान्तर एक अभाव की पूर्ति के दृष्टि कोण से प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन में मुझे अनेक विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है जिसके लिए मैं उनका आभारी है। डा० राजेन्द्र चन्द्र हाजरा ने प्राक्कथन लिखकर मुझे विशेष रूप से अनुग्रहीत किया है। गुरुवर प्रो० गोवर्धन राय शर्मा ने प्रेरणा एवं मुझे जो प्रोत्साहन दिया है उसके लिये मैं उनका अत्यधिक आभारी है। मेरे गुरु जनों—प्रो० जसवन्त सिंह नेगी, डा० उदय नारायण राय और डा० ब्रजनाथ सिंह यादव ने इस ग्रन्थ के संयोजन में जो प्रेरणा प्रदान की है उसके लिए मैं उनकी ऋणी है।

विभाग के सभी मित्रों डा० शिवेशचन्द्र भट्टाचार्य, डा० सन्ध्या मुखर्जी डा० राधाकान्त वर्मा, श्री रामकृष्ण द्विवेदी, श्री विद्याधर मिश्र, डा० ओम प्रकाश डा० उदय प्रकाश अरोरा आदि ने जो सहयोग दिया उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। मैं अपनी शोध छात्रा मृदुला शुक्ला एवं श्री चन्द्रदेव पाण्डेय को भी साधुवाद देता हूँ क्योंकि साम्ब-पुराण के सांस्कृतिक अध्ययन विषय के निर्देशन हेतु ही मैं यह रूपान्तर प्रस्तुत करने के कार्य में प्रवृत्त हुआ। मैं अपने मित्र डा० राजेन्द्र कुमार वर्मा का ऋणी हूँ जिन्होंने समय-समय पर भाषा सम्बन्धी सुझाव दिया। गंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के श्री किशोर नाथ झा का भी आभारी हूँ जिन्होंने अनेक कठिन श्लोकों के अनुवाद में मुझे सहायता दी। मुख पृष्ठ की साज-सज्जा के लिए मैं श्री एच० एन० कर का आभारी हूँ। मैं अपनी पत्नी श्रीमती माधुरी श्रीवास्तव का भी ऋणी हूँ उन्होंने इस कार्य में अनेक प्रकार से सहायता दी। अन्त में मैं इन्डालाजिकल पब्लिकेशन्स एवं अनिल प्रेस का क्रमशः प्रकाशन एवं मुद्रण के लिए आभारी हूँ।

२३ नवम्बर १९७५ विनोद चन्द्र श्रीवास्तव
इलाहाबाद।

विषय-सूची

प्राक्कथन :

आमुख :

साम्ब पुराण

विषय-सूची

साम्ब-पुराण

साम्ब-पुराण

अध्याय 1

श्री गणेश को नमस्कार है। अब साम्बपुराण प्रारम्भ किया जा रहा है। उस सूर्य देवता को प्रणाम है जो ससार का एक मात्र नेत्र है, संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश का कारण है, जो (ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद की त्रयी से युक्त है, जो (सत्त्व, रज और तम) तीन गुणों को धारण करने वाला है, जो ब्रह्मा, विष्णु, तथा महेश स्वरूप है ॥ १ ॥ समस्त प्राणियों के शरीर को धारण करने वाला, सदैव विशुद्ध बुद्धि से परिपूर्ण वेद-त्रयी से युक्त संसार के एक मात्र साक्षी देवता (सूर्य) को प्रणाम है ॥२॥ पितामह कृष्ण को नमस्कार है जो योगी है, अव्यक्त रूप वाले हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान हैं तथा विश्व के निर्माता हैं। ॥३॥ उस मुनीश्वर (व्यास) को नमस्कार है जो विनम्र हैं, तपस्वी हैं, शान्त हैं, वीतराग है और ज्ञानरूपी आत्मा स्वरूप हैं ॥४॥ उन विधाता (ब्रह्मा) को नमस्कार है जो स्वयं जन्मा है, जो किरणों से युक्त है, प्रकाश करने वाले हैं तथा जीवों के संहार करने में प्रचण्ड हैं ॥५॥ इन्द्र, अग्नि, यमराज, राक्षस, वरुण, वायु, कुबेर, शंकर आदि उन समस्त देवों को नमस्कार है जो पाताल, आकाश और दिशाओं को व्याप्त कर विद्यमान हैं ॥६॥ नैमिषारण्य में प्राचीन काल में महर्षि शौनक[1] ने बारह वर्ष तक चलने वाले अपने प्रसिद्ध यज्ञ की समाप्ति के समय सूत से पूछा ॥७॥ यज्ञ चलते रहने के बीच में भी उन्होंने इस कथा को पूछा—हे सूत! आपने अत्यन्त विस्तार वाले पुराण का वर्णन किया ॥ ८॥

१—एक महर्षि, ऋग्वेद प्रतिशाख्य तथा अन्य अनेक वैदिक रचनाओं के प्रणेता।

प्रारम्भ में षडानन (कार्त्तिकेय) की कथा को और बाद मे ब्रह्माण्ड की कथा को आपने कहा, वह कथा भी आपने कही, जो वायु-देवता ने कही थी तथा जो सावर्णि मनु ने कही थी ॥९॥ जो कथा महर्षि मार्कण्डेय ने कही, जो वैशम्पायन ने कही, जो दधीचि ने कही तथा जो शंकर ने कही। ॥१०॥ जो विष्णु ने कही, जो ऋषियों ने वर्णित की, जो बालखिल्यों ने कही और जिसे मैंने ऋषियो के साथ सुना ॥११॥ (परन्तु) हे मुनीश्वर! आपने वह कथा नहीं कही जो हरि के पुत्र (साम्ब) ने वर्णित की थी, अमृत के समान मेरे कानो का सुख (अर्थात् उस कथा को सुनने की लालसा) मौन नहीं पसन्द कर रही है ॥१२॥ बुद्धिमान साम्ब ने जो भास्कर का पुराण पूछा था वह बारह आकार वाला था न कि पन्द्रह मूर्तियों वाला। इस पुराण में अन्य समस्त पुराण और सारे शास्त्र प्रतिष्ठित है अतएव हे महाभाग! जैसा आपने इसे सुना है वैसा कहिये ॥१३॥ सूत ने कहा—हे सुव्रत! जैसा आप कह रहे हैं वह विषय अत्यन्त गम्भीर एवं भारवान है क्योंकि यह महाभारत के आख्यान से और वेदों के विस्तार से भी अधिक अर्थ देने वाला, समस्त पुराणों में सर्वश्रेष्ठ पुराण है, इसमें विविध प्रकार की चित्र विचित्र कथाएं सन्निहित है ॥१६॥

इसमें वेदों के अर्थ, स्मृतियों के तत्त्व, वर्णाश्रमधर्म के आधार भूत सिद्धान्त तथा भूत वर्तमान और भावी घटनाएँ एवं मन्त्रों के रहस्य सम्मिलित हैं ॥१७॥ सृष्टि की उत्पत्ति एवं प्रलय, पूजा का विधान, साङ्गोपाङ्ग समाहार-विधि, पूजा करने का ढंग सम्मिलित है ॥१८॥ वशीकरण, आकर्षण, शत्रु-स्तम्भन और उच्चाटन इत्यादि, मूर्तियों के लक्षण तथा मन्दिरों के विधान भी सम्मिलित हैं ॥१९॥ मण्डल सिद्धि के लिये किये जाने वाले यज्ञ, सांसारिक सफलता के लिये किये जाने वाली पूजा, यज्ञों की विधियाँ, महामण्डल यज्ञ तथा द्वादशात्मा सूर्य की भक्ति भी सम्मिलित है ॥२०॥ भूमि का तोषण, पुष्प, धूप आदि के (प्रयोग के) नियम सप्तमी एवं उपवास करने की विधि भी सम्मिलित है ॥२१॥ दान देने और उसके फल-प्राप्ति

को भी बताया गया है, समय और काल का विधान और वर्म-विधि भी सम्मिलित है ॥२२॥ इस कर्म का ढंग एवं जय-प्राप्ति की विधि नियमित अथवा उदण्ड व्यक्ति को वश में करने की विधि, स्वप्न-फलाफल विचार भी सम्मिलित है॥२३॥ प्रायश्चित्त करने के विधान, आर्य पुरुष के लक्षण, समस्त शिष्यों को दीक्षा देने की विधि, मन्त्र द्वारा निश्चय करने के नियम भी सन्निहित है ॥२४॥ नाना प्रकार की स्तुतियां इस ग्रन्थ में संक्षेप में सम्मिलित है। भविष्य में होने वाली अन्य विविध घटनाओं को भी आश्रय दिया गया है ॥२५॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में उद्देश्य द्योतक 'अनुक्रमणिका कथन' नामक प्रथम अध्याय समाप्त होता है ।

अध्याय २

सूत ने कहा—रघुवंश में उत्पन्न राजा बृहद्बल ने स्वस्थ भाव से बैठे हुए ऋषिराज वशिष्ठ से श्रेष्ठ कल्याण की बात पूछी ।।१।। हे भगवान ! मैं उस परब्रह्म सनातन का माहात्म्य सुनना चाहता हूँ जिसे सुनकर विवेकी लोग मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ।।२।। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ अथवा सन्यासी जो मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा करता है वह किस देवता की पूजा करे ? ।।३।। किससे उसे निश्चल स्वर्ग हो सकता है, किससे सर्वश्रेष्ठ कल्याण मिल सकता है वह क्या करे कि स्वर्ग प्राप्त कर पुनः उससे च्युत न हो ? ।।४।। हे महामुनि ! देवताओं के मध्य ऐसा कौन देवता है, पितृगणों का भी कौन ऐसा पिता है जिससे बड़ा और कोई नहीं है ? उसे मुझको बताएँ ।।५।। हे ब्रह्मन ! चर और अचरमय यह विश्व कहाँ से निर्मित हुआ और प्रलय भी किसकी ओर से आती है, आप उसे बताने की कृपा करें ।।६।। वशिष्ठ ने कहा—हे नराधिप ! उदित होता हुआ प्रकाश करता हुआ सूर्य अपनी किरणों से संसार को अंधकारहीन बना देता है । उसकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ देव और कोई नहीं है ।।७।। यह पुरुष (सूर्य) आदि और अंत से विहीन है । शाश्वत है, कभी नष्ट न होने वाला है तथा परिभ्रमण करता हुआ तीक्ष्ण किरणों से यह तीनों लोकों को संतप्त करता है ।।८।।

यह (सूर्य) समस्त देवताओं की आत्मा स्वरूप है, तपः शक्तियों का परिणाम स्वरूप है, समस्त संसार का स्वामी है, कर्मों का साक्षी है और प्रकाश पुंज है ।।९।। यह (सूर्य) जीवों का संहार करता है और पुनः उनकी सृष्टि करता है, यह सूर्य एकाकी प्रकाश करता है, तपता है, और किरणों से

सबको आकर्षित करता है ।।१०।। यह (सूर्य) धाता है, विधाता है, जीवों का उद्गम बिन्दु है तथा जीवों पर कृपा करने वाला है। यह क्षय को नहीं प्राप्त होता तथा नित्य अक्षय मण्डल है ।।११।। यह सूर्य पितृों का भी पिता है, देवों का भी देव है, यह उस ध्रुव स्थान का स्वामी है जिसे प्राप्त कर मनुष्य पुनः च्युत नहीं होता ।।१२।। सृष्टि-बेला में सम्पूर्ण विश्व आदित्य से उत्पन्न होता है और प्रलय-बेला में उसी प्रदीप्त तेज वाले सूर्य मे विलीन हो जाता है ।।१३।। योगीगण तथा साँख्य मतानुयायी अन्त मे पुरातन शरीर को छोड़कर, भलीभांति शुद्ध होकर इसी तेजोराशि दिनकर मे प्रवेश करते हैं ।।१४।। इसको सहस्रों किरणों का आश्रय लेकर सिद्धि प्राप्त मुनिगण देवताओं के साथ उसी प्रकार रहते है जैसे शाखाओं का आश्रय लेकर पक्षीगण रहते हैं ।।१५।। जनक इत्यादि ग्रहस्थ, राजर्षिगण, ब्रह्मचारीगण ।।१६।। वानप्रस्थी, भिक्षुकगण तथा पंचशिख[1] (सम्प्रदाय वाले) साधकगण योग का आश्रय लेकर सूर्य-मण्डल में प्रविष्ट हो गये ।।१७।।

लक्ष्मी से सम्पन्न व्यासपुत्र शुकदेव भी योग-धर्म को प्राप्त करके एवं सूर्य की किरणों का पान करके पुर्नजन्म के बन्धन से मुक्त हो गये ।।१८।। शब्दाकार श्रुति जिनके मुख में है ऐसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव इत्यादि देवता शब्द मात्र से सुने जाने वाले हैं परन्तु अन्धकार नाशक यह श्रेष्ठ सूर्य देवता प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर है ।।१९।। अतएव कल्याणइच्छुक व्यक्ति द्वारा किसी अन्य में भक्ति नहीं करनी चाहिये क्योंकि अनदेखा (भविष्य) सदैव देखे गये (वर्तमान) से बाधित हो जाता है ।।२०।। इसलिए हे राजन् ! तुम्हें भी निरन्तर भगवान रवि की अर्चना करनी चाहिये, वही माता है, वही पिता है और वही सम्पूर्ण संसार का गुरु है ।।२१।। इस प्रकार साम्बपुराण का द्वितीय अध्याय समाप्त होता है ।

---

१. यह साँख्य का एक सम्प्रदाय है। द्रष्टव्य **महाभारत** (गीता संस्करण), १२. २११-२१२ ; कीथ, ए०, बी०, **दी साँख्य सिस्टम** पृ० ४७-४९; लारसन, जी० जे०, **क्लासिकल साँख्य**, पृ० १०९,१५० ।

अध्याय ३

बृहद्बल ने कहा—हे महामुनि ! सूर्य का आदि निवास स्थान कहाँ और किस द्वीप में है ? जहाँ पर शास्त्रीय रीति से की गई पूजा को वह स्वयं ग्रहण करते हैं ॥१॥ वसिष्ठ बोले कि चन्द्रभागा नदी के रमणीक तट पर साम्ब नामक[1] जो नगर पृथ्वीलोक में है वहीं सूर्य का शाश्वत स्थान है, वहीं सूर्य की नित्यता है ॥२॥ साम्ब के प्रति स्नेहभाव होने के कारण साथ ही साथ संसार के कल्याण के लिए, सूर्य बारहवें रूप में (मित्र) मैत्री पूर्ण दृष्टि से वहीं विद्यमान रहता है ॥३॥ वहीं भास्कर सम्यक भक्ति सम्पन्न जनों पर अनुग्रह करता है और शास्त्रीय रीति से प्रदत्त पूजा को स्वयं ग्रहण करता है ॥४॥ बृहदबल ने कहा—यह साम्ब कौन है ? किससे पैदा हुआ है ? नाम से सूर्य का प्रिय यह साम्ब किसका पुत्र है ? जिस पुण्यकर्मों के लिये यह सहस्त्रकिरण वाला सूर्य वरद बन गया है ॥५॥ वशिष्ठ बोले- देव-माता अदिति का बारहवाँ पुत्र विष्णु था जो कि कालांतर में इस पृथ्वी पर वासुदेव अर्थात कृष्ण के रूप में अवतरित हुआ उसी कृष्ण का पुत्र साम्ब हुआ ॥६॥ वह साम्ब अपने पिता द्वारा बारम्बार अभिशापित होकर कुष्ठ रोग का रोगी हो गया, उसी साम्ब द्वारा यह सूर्य (स्थान) अपने नाम से प्रसिद्ध करके स्थापित किया गया ॥७॥

---

१. इसे मूल स्थान, मैत्रवन, कश्यपपुर, हंसपुर, भगपुर, प्रह्लादपुर आदि नामों से भी वर्णित किया गया है और साधारणतया पंजाब में स्थित मुल्तान से तादात्मय स्थापित किया गया है । दृष्टव्य विनोद चन्द्र श्रीवास्तव, **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया** पृ०, २६७ ।

बृहद्बल ने कहा अपने औरस पुत्र को पिता कृष्ण ने किस कारण से शाप दिया ? कोई न कोई कारण तो अवश्य होना चाहिए जिससे कि उन्होंने पुत्र को शाप दिया ॥८॥

वशिष्ठ बोले—महाराज ! सावधान होकर उस शाप का कारण सुनिये ! ब्रह्मा के मानसपुत्र नारद नाम वाले जो मुनि हैं ॥९॥ ब्रह्मलोक में, विष्णु-लोक में, सूर्य-लोक में, रुद्र-लोक में ॥१०॥ पितरों, राक्षसों, नागों के लोक मे, यम और वरुण के लोक में या इन्द्र की अमरावती पुरी में तथा कुबेर की अलकापुरी में ॥ ११ ॥ और पृथ्वी-लोक में जो जो भूपतिगण हैं और जो पाताल में उत्पन्न जीव हैं उन सब के घरों में निरन्तर उन देवर्षि नारद की अप्रतिहत गति है ॥१२॥ वही क्रोधी मुनिराज (नारद) ऋषियो के साथ वासुदेव कृष्ण से मिलने के लिए द्वारकापुरी में आए ॥१३॥ इसके पश्चात आते हुए उन देवर्षि नारद के सम्मान में प्रद्युम्न आदि समस्त यदुवंशी कुमारगण विनय के कारण झुककर खड़े हो गये ॥१४॥ उन कुमारों ने नारद का अभिवादन कर अर्घ्य तथा चरणोदक से यत्नपूर्वक पूजा की। परन्तु दैवयोगवश उन नारद के अवश्यम्भावी शाप से मूढ बनकर कुमार साम्ब ॥१५॥ निरन्तर महात्मा नारद की अवज्ञा करने लगे और रूप-यौवन से गर्वित खेल खेल में निरन्तर उन्हें चिढ़ाने लगे ॥१६॥

पुत्र को दुर्विनीत जानकर देवर्षि नारद ने सोचा-इस अविनीत राज-कुमार पर मैं अत्यधिक नैतिक प्रशिक्षण[1] भाव करूँगा । १७॥ इस प्रकार सोचकर नारद ने कृष्ण से कहा—ये जो आपकी (देव की) सोलह हजार पत्नियाँ हैं, हे केशव ! साम्ब ने निश्चय ही इन सबके मनों को अपने कमल सदृश नेत्र, रूप, और यौवन सम्पन्न सौन्दर्य से चुरा लिया है । इस चर अचर

१. विनय का अर्थ नैतिक प्रशिक्षण लिया गया है दृष्टव्य रघु० १/२४, मा० १०/५ ।

जगत में साम्ब रूप से अनुपम प्रसिद्ध है। इसलिए ये नारियाँ साम्ब को देखने के लिए लालायित रहती हैं ॥१९॥ वशिष्ठ बोले—नारद से यह बात सुन कर तथा भावी घटना के वशीभूत होकर सम्पूर्ण वृतान्त को बिना सोचे विचारे ही भगवान (कृष्ण) ने नारद से कहा ॥२०॥ वासुदेव (कृष्ण) बोले—देवर्षि ! आपने जो बात कही है मैं उस पर विश्वास नहीं करता। इस प्रकार कहते हुये उन कृष्ण से नारद ने पुन: कहा ॥२१॥ मैं कुछ वैसा ही प्रयत्न करूँगा जिससे कि आप इस बात को मान लेगें ।२२॥ वशिष्ठ ने कहा कि ऐसा कहकर नारद जैसे आये थे पुन: उसी प्रकार चले गये। इसके पश्चात कुछ दिन बाद पुन: द्वारकापुरी पहुँचे ॥२३॥ इस दिन भगवान कृष्ण भी अन्त:पुर की रमणियों के साथ जलविहार करके एकान्त मे झूला झूल रहे थे ॥२४॥

अट्टालिकाओं की पंक्तियों से शोभित, समस्त ऋतुओं में खिलने वाले फूलों से सुगन्धित, चित्र-विचित्र जंगलों वाले रमणीक रैवतक[1] नाम वाले उद्यान में श्रीकृष्ण थे जो कि नाचते हुये मयूरों तथा सैकड़ों मयूरों की बोलियों से झंकृत हो उठा था, जो कि कोयलों की बोली से गूंज उठा था, जो कि चक्रवाक पंक्षियों से सुशोभित था ॥२६॥ जो कि कोकिला के मधुर आलाप से युक्त था, जो कि जल-कुक्कुटों से शोभायमान था, जो कि भ्रमरों के गीत से मधुर हो उठा था तथा शुकों और चातकों से शब्दायमान था ॥२७॥ अनेक प्रकार के कमल पुष्पों से भरी बावलियों से जो अलंकृत था और जो हंसों की बोली से भली भाँति भर उठा था और सारस पक्षियों से अलंकृत था ॥२८॥ उसी रैवतक उद्यान में उस समय स्त्रियों से घिरे हुए कृष्ण रमण कर रहे थे। हार, नूपुर, केयूर, करधनी आदि आभूषणों से ॥२९॥ अलंकृत, रमणीय अंगों वाली जो सम्मानित स्त्रियाँ थी, क्रीड़ा के निमित्त जो कमलपत्रों पर बैठी हुई थी ॥३०॥ उस उद्यान

---

१. द्वारका के निकट एक पर्वत का नाम, विस्तार के लिये द्रष्टव्य **शिशु०**, ४

में उन स्त्रियों के लिए (कृष्ण द्वारा) मणि कंचन पात्रों में नाना पुष्पों से सुगन्धित मीठी मदिरा दी जा रही थी ॥३१॥ जो आम की मंजरियों और टूटे हुये नीलकमलों से सुगन्धित थी। इसी बीच में यह जान कर कि स्त्रियाँ मदिरा से मतवाली हो गई हैं॥३२॥ नारद ने साम्ब को अच्छी प्रकार समझा बुझाकर उसे शीघ्रता कराते हुये यह कहा—हे साम्ब! हे कुमार। जाओ रैवतक उद्यान का आश्रय लो ॥३३॥

तुम्हें (कृष्ण) देव बुला रहे हैं। तुम्हारा यहाँ रहना उचित नहीं है। नारद के उस वाक्य के अर्थ को बिना समझे ही तथा भावी घटना से प्रेरित होकर ॥३४॥ शीघ्रता पूर्वक पहुँचकर कुमार साम्ब ने पिता को प्रणाम किया। इसी बीच में उस उद्यान में जो रमणियाँ साधारण सात्त्विक भाव वाली थीं ॥३५॥ वे सब अचानक कुमार साम्ब को देखकर अस्थिर हो उठीं, जिन रमणियों ने कामदेव के समान नवयुवक पहले नहीं देखा था मदिरा के दोष से स्मृति के लोप हो जाने के कारण अल्प सत्त्व वाली उन रमणियों का मन शीघ्र विचलित हो गया और योनि से शीघ्र प्रस्राव हुआ ॥३७॥ हे राजन! जैसा कि यह श्लोक सुना जाता है तथा पुराणों में पढ़ा जाता है—भले ही नारी साध्वी हो, ब्रह्मचर्य व्रत में हो ॥३८॥ फिर भी पुरुष को देखकर वे विचलित हो जाती हैं, मदिरा के अत्यधिक सेवन से भी संसार में यह बात सुनी जाती है ॥३९॥ अच्छे वंश में उत्पन्न और लज्जावन्ती होने पर भी नारियाँ लज्जा छोड़ देती है। मांस युक्त भोजन के कारण, चिकनी मीठी मदिरा के कारण गन्धों से और मनोहर वस्त्रों से स्त्रियों में काम का उदय होता है ॥४०॥ यह जानकर बुद्धिमान (श्रेष्ठ कल्याण वाले) व्यक्ति को पतिव्रता नारियों को अल्पमात्र भी मदिरा नहीं देनी चाहिए ॥४१॥ वशिष्ठ ने कहा—इसके पश्चात हड़बड़ाये हुये नारद भी साम्ब को भेजकर उनके पीछे पीछे वहीं (रैवतक उपवन में) आये ॥४२॥

देवर्षि श्रेष्ठ गुरु तुल्य उन नारद को आया हुआ देखकर मद-विह्वल समस्त नारियाँ अचानक उठ खड़ी हुई ॥४३॥ वासुदेव कृष्ण ने उठती

हुई उन नारियों की विकलता देखी। श्वेत वस्त्रों को चीर कर मद गिर पड़ा ॥४४॥ उनकी यह विकलता देखकर क्रुद्ध होकर कृष्ण ने स्त्रियों को यह शाप दिया कि मुझे छोड़कर जिस कारण से तुम लोगों के मन अन्यत्र अपहृत कर लिए गये हैं अतएव मृत्योपरान्त पति द्वारा प्राप्त होने वाले लोकों को तुम लोग नहीं प्राप्त होओगी। मेरे स्वर्ग चले जाने पर पतिलोक से परिभ्रष्ट होकर तुम लोग असहाय बनकर लुटेरों के हाथों मे पड़ोगी ॥४६॥ वशिष्ठ बोले—इसके पश्चात उसी शाप के दोष से कृष्ण के स्वर्गगामी हो जाने पर अर्जुन के देखते देखते वह स्त्रियाँ पंचनद प्रदेश के लुटेरों द्वारा लूट ली गयी ॥४७॥ केवल तीन पतिव्रताओं—रुक्मिणी सत्यभामा तथा जाम्बवती के अतिरिक्त वे सभी स्त्रियाँ इसके पश्चात शाप से संदूषित होकर महान पतन को प्राप्त हुई[1]। इस प्रकार उन स्त्रियों को शाप देकर कृष्ण ने अपने पुत्र साम्ब को शाप दिया। कृष्ण ने कहा—चूँकि तुम्हारे अत्यन्त मनोहर रूप को देखकर समस्त स्त्रियाँ क्षुब्ध हो गयीं इसलिए तुम भी कुष्ठ रोग को प्राप्त करोगे ॥५०॥ वशिष्ठ बोले—जिस क्षण अपने पिता द्वारा उन्हीं से उत्पन्न कुमार साम्ब अभिशप्त होकर अत्यन्त दुःसह कुरूप कुष्ट रोग को प्राप्त हुआ ॥५१॥

भावी अर्थ का अतिशय स्मरण करते हुये उसी साम्ब द्वारा पुनः मुनि दुर्वासा क्रुद्ध कर दिये गये ॥५२॥ जिसके कारण रूप-श्रेष्ठ साम्ब ने एक और बड़ा शाप प्राप्त किया ॥५३॥ उस शाप के कारण मूसल[2] उत्पन्न हुआ जिससे कि सारा यदुवंश नष्ट हो गया ॥५३॥ अपने दुर्विनय के कारण इन दोषों को उत्पन्न हुआ देखकर बुद्धिमान, गुरुजनों और ब्राह्मणों के प्रति सदा विनीत होना चाहिए ॥५४॥ उस साम्ब ने शाप से दुखी होकर भगवान सूर्य की उपासना करके तथा पुनः अपने मनोहर रूप को प्राप्त

---

१. मूसल-आख्यान के लिये दृष्टव्य **महाभारत**, मौसल पर्व।

२. दृष्टव्य **महाभारत**, मौसल पर्व। ७

करके अपने नाम से सूर्य (के मन्दिर) की स्थापना की ॥५५॥ नारद स्त्रियों का भाव परिवर्तन दिखाकर और कुमार साम्ब को अभिशाप से युक्त करके वहीं अन्तर्ध्यान हो गये ॥५६॥ इस प्रकार साम्ब पुराण में साम्ब-शाप नामक तृतीय अध्याय समाप्त होता है ।

अध्याय ४

राजा बृहद्‌बल ने कहा—साम्ब द्वारा चन्द्रभागा नदी के तट पर यदि सूर्य स्थापित किये गये इसलिए यह स्थान सूर्य का मूल स्थान नहीं हुआ जैसा कि आपने कहा है ।।१।। वशिष्ठ ने कहा—यह स्थान सूर्य का मूल स्थान है, साम्ब ने तो बाद में वहाँ अपने नाम से सूर्य मन्दिर बनवाया विस्तारपूर्वक मैं इस स्थान की मौलिकता बता रहा हूँ तुम मुझसे सुनो ।।२।। हे राजन् ! जिसका आदि नहीं है, जो लोकनाथ हैं, उन विश्वमाली जगत्पति देव सूर्य ने मित्रभाव में अवस्थित होकर तपश्चर्या की ।।३।। जन्म और मृत्यु से परे नित्य रहने वाले तथा कभी नष्ट न होने वाले ऐसे उन सहस्र किरणों वाले अव्यक्त पुरुष (ब्रह्मा) ने समस्त प्रजापतियों और विविध प्रकार की प्रजाओं को निर्मित करने के पश्चात ।।४।। अपने आपको बारह रूपों में विभक्त करके देवमाता अदिति के गर्भ से जन्म लिया ।।५।। इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान, विष्णु, अंशु, वरुण मित्र (ये इनके नाम है)[1] ।।६।। इन्हीं बारह रूपों वाले उन परमात्मा सूर्य द्वारा अपनी मूर्तियों से हे राजन ! यह सारा संसार व्याप्त किया गया है ।।७।। अदिति-पुत्र उस सूर्य की जो प्रथम मूर्ति इन्द्र नाम से जानी जाती है देवों के ऊपर शासन करने वाली वह देवराज के रूप में विख्यात है ।।८।।

---

१. द्वादशादित्यों का विवरण वैदिक एवं प्रारम्भिक पुराणों में प्राप्त होता है द्रष्टव्य सिद्धेश्वरी नारायण राय, **पौराणिक धर्म एवं समाज**, पृ० ४८; **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**, पृ० ११६, २१२

सूर्य की जो द्वितीय मूर्ति धाता के नाम से प्रसिद्ध है वह प्रजापति के रूप में स्थित है और अनेक प्रकार के प्राणियों की सृष्टि करती है ।।९।। सूर्य की जो तृतीय मूर्ति पर्जन्य नाम से विश्रुत है वह बादलों में अवस्थित है और वहीं किरणों से वर्षा करती है ।।१०।। सूर्य की चौथी मूर्ति जो पूषा के नाम से प्रसिद्ध है वह अन्नों में व्याप्त है और वही निरन्तर प्राणियों का पोषण करती है ।।११।। सूर्य की पांचवीं मूर्ति जो त्वष्टा के नाम से विख्यात है वह वनस्पतियों में व्याप्त है और हर प्रकार की औषधियों में भी विद्यमान है ।।१२।। सूर्य की छठी मूर्ति जो अर्यमा के नाम से प्रसिद्ध है वह वायु संचार के लिए उपादेय है और प्राणियों की देह में ही उसका आश्रय है ।।१३।। सूर्य की जो सातवीं मूर्ति भग नाम से सुनी जाती है वह पृथ्वी में और प्राणियों के शरीरों में व्यवस्थित है ।।१४।। उनकी जो आठवीं मूर्ति विवस्वान नाम से प्रसिद्ध है वह अग्नि में विलीन है और वही प्राणियों का अन्न पचाती है ।।१५।। सूर्य की जो नवीं मूर्ति विष्णु नाम से प्रसिद्ध है वह निरन्तर देवताओं के शत्रुओं अर्थात दैत्यों का विनाश करने के लिए उत्पन्न होती है ।।१६।।

उनकी जो दसवीं मूर्ति अंशुमान नाम से विख्यात है वह वायु मे प्रतिष्ठित है और जीवों को आह्लादित करती है ।।१७।। सूर्य की जो ग्यारहवीं मूर्ति वरुण नाम से पुकारी जाती है वह जलराशियों में प्रतिष्ठित है वही समस्त जीवों को संवरित करतीहै ।।१८।। यह वरुण जल के निधान समुद्र में प्रतिष्ठित हैं इसलिये समुद्र को वरुणालय नाम से पुकारते हैं ।।१९।। सूर्य की बारहवीं मूर्ति जो मित्र नाम से पुकारी जाती है वह संसार का कल्याण करने के लिए चन्द्रभागा नदी[1] के तट पर विद्यमान

---

१. द्रष्टव्य ए० कनिंघम, **दी ऐन्सियन्ट जियागरफी आफ इण्डिया** पृ० १९४-१९९

है ॥२०॥ वायु का भक्षण करते हुए कल्याणमय नेत्रों से (सूर्य ने) तपस्या की थी ॥२१॥ नाना प्रकार के वरों द्वारा अपने भक्तों को अनुगृहीत करते हुए उन सूर्य ने यहाँ तपस्या की थी इस प्रकार यह उनका मूल स्थान है और साम्ब ने बाद में इसे बनवाया ॥२२॥ इस स्थान पर चूँकि मित्र निवास करते थे इसलिये उसे मित्रवन भी कहते थे। इस प्रकार उन बारह रूपों से युक्त परमात्मा सूर्य यहाँ रहते थे ॥२३॥ इस प्रकार मनुष्य बारह सूर्यों वाले संसार का रहस्य जानकर उनका माहात्म्य सुन और पढ़कर अन्त में सूर्यलोक में आदर प्राप्त करता है ॥२४॥

इस प्रकार साम्बपुराण का 'द्वादश सूर्योपाख्यान' नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ५

बृहद्बल ने कहा—गुरुदेव! यदि सूर्य सनातन आदि देवता हैं तो उन्होंने साधारण मनुष्यों की भाँति किस बात के लिए तपश्चर्या की ।।१।। वशिष्ठ ने कहा —राजन! मैं आपको सूर्य देवता का अत्यन्त गोपनीय रहस्य बता रहा हूँ जिसे मित्र ने प्राचीन काल में देवर्षि नारद को स्वयं बताया था ।।२।। मैंने तुम्हें सूर्य की जिन बारह मूर्तियों का वर्णन बताया है उनमें से मित्र और वरुण ये दोनों तपस्या करने मे लग गये। इन दोनों में से जल का भक्षण करने वाले वरुण पश्चिमी समुद्र में स्थित हुए और वायु का भक्षण करने वाले मित्र देवता इसी मित्रवन में तपस्या करने लगे ।।४।। उसके पश्चात सुमेरु पर्वत के गन्धमादन शिखर से नीचे उतर कर देवर्षि नारद समस्त लोकों में संचरण कर रहे थे ।।५।। इसी प्रसंग में देवर्षि नारद वहाँ आये जहाँ मित्रदेवता तपस्या कर रहे थे। उन्हें तपस्या करते देखकर नारद को कौतूहल हुआ ।।६।। जो अक्षय, अव्यय है, व्यक्त और अव्यक्त और सनातन है और एकात्मक सूर्य के द्वारा यह त्रिलोकी स्वयं धारण की गई है ।।७।। जो समस्त देवताओं का पिता है—जो सर्व-श्रेष्ठ देवता है, भला वह सूर्य, किस देवता अथवा किन पितृ के लिए यज्ञ कर रहा है ।।८।।

मन में यह बात सोचकर नारद ने सूर्यदेव से कहा। नारद बोले—वेदों मे और सांगोपांग पुराणों में जिसका गुणगान होता है ।।९।। ऐसे आप अजन्मा, शाश्वत, धाता, महाभूत और सर्वश्रेष्ठ हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य सब कुछ आपही में प्रतिष्ठित है ।।१०।। हे देव! गृहस्थ इत्यादि चार ही

आश्रम हैं, वे गृहस्थ लोग भी रात दिन नाना रूपों में अवस्थित आपकी उपासना करते हैं ॥११॥ आपके सबके माता पिता हैं, आप शाश्वत देव हैं (तो फिर) मैं नहीं समझ पाता कि किस अन्य देवता अथवा पितृ की उपासना आप कर रहे हैं? ॥१२॥ मित्र ने कहा—हे नारद! यह सनातन श्रेष्ठ रहस्य वाला वक्तव्य कहने योग्य नहीं है तथापि हे ब्रह्मन! भक्तिसम्पन्न आपको यह रहस्य यथातथ्य बता दूँगा ॥१३॥ क्योंकि यह रहस्य सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है। तथा इन्द्रियों, इन्द्रिय-विषयों और समस्त प्राणियों द्वारा वर्जित है ॥१४॥ यह रहस्य है जीवों का अन्तरात्मा[1] जो कि कहा जाता है वह आत्मा सत्त्व, रजस, और तमस गुणों से सर्वथा पृथक पुरुष के नाम से प्रसिद्ध है ॥१५॥ वह हिरण्यगर्भ और भगवान है, वही बुद्धि के नाम से स्मरण किया जाता है उसी एकात्मा द्वारा यह त्रैलोक्य अपने समस्त देहों में निवास करता है ॥१६॥

स्वय अशरीर होकर भी सभी देहों में निवास करता है और देहों में रहता हुआ भी कर्मों द्वारा कभी लिप्त नहीं होता है ॥१७॥ हमारी तुम्हारी और भी जो अन्य प्राणधारी जीव है, उन सबका साक्षी भूत वह अन्तरात्मा किसी द्वारा कहीं भी पकड़ में नहीं आता है ॥१८॥ सगुण निर्गुण विश्व रूप ज्ञान से जाना जा सकने वाला वह है ॥१९॥ वह अन्तरात्मा हर तरफ से हाथ और पैर वाला है, हर तरफ से आंख, सिर और मुँह वाला है हर तरफ से सुनने वाला है, संसार में सब कुछ व्याप्त करके विद्यमान रहता है ॥२०॥ अकेले वही अन्तरात्मा समस्त इन्द्रिय गुणों को और इन्द्रियों को उसी प्रकार उत्पन्न करता है जैसे कोई व्यक्ति हजारों दीपक जला देता है ॥२१॥ जब वह अन्तरात्मा किसी व्यक्ति को ज्ञात हो जाता है तो वह मनुष्य मुक्त हो जाता है। प्रलय बेला में वह एक रूप वाला और सृष्टि-बेला में बहुसंख्यक

---

१. यह विचारधारा वैदिक काल से चली आ रही थी दृष्टव्य विनोद चन्द्र श्रीवास्तव, आन दी ऋग्वेद १-११५-१ क्षेमेश चन्द्र चट्टोपाध्याय **फिलोसोटेशन वाल्यूम**, भाग २ पृ० ६५७—६६२

हो जाता है ॥२२॥ उस अकेले ईश्वर को छोड़कर स्थावर जंगम जीव के संसार में चर और अचर जीवों की नित्यता नहीं होती ॥२३॥ वह आत्मा अक्षय, न नापने योग्य, और सर्वगामी कहा जाता है ॥ हे ब्राह्मण—श्रेष्ठ ! उसी आत्मा से यह त्रिगुणात्मक सृष्टि उत्पन्न हुई है ॥२४॥

अव्यक्त और व्यक्त भावों में रहने वाली वह जो प्रकृति[1] है उसी को ब्रह्म की योनि समझो जो ब्रह्म सत्स्वरूप तथा नित्य है ॥२५॥ संसार में देवों और पितरों संबंधी धर्मकार्यों में उसी आत्मा की पूजा की जाती है। उससे अधिक सात्त्विक पिता अथवा देव अन्य कोई नहीं है ॥२६॥ वह हम लोगों की आत्मा कहा जाता है इसलिए मैं उसी आत्म-तत्त्व की पूजा करता हूँ जो प्राणी स्वर्गलोक में हैं वे भी उसी की अर्चना करते हैं ॥२७॥ उस आत्मा की कृपा से ही वे जीव बताये हुए फल के अनुसार गतिप्राप्त करते हैं। देवता, आश्रमों में रहने वाले तपस्वी, नाना रूपों वाले प्राणी ॥२८॥ उसी आत्मा की पूजा भक्तिपूर्वक करते हैं और वह आत्मा उन्हें प्रथम गति प्रदान करता है। वह समस्त जीवों में व्याप्त और निर्गुण कहा जाता है ॥२९॥ हे नारद ! उस आत्मा का यह माहात्म्य जानकर ही मैं उस सनातन की पूजा करता हूँ जो लोग उसके द्वारा अनुगृहीत है और एकमात्र उसी पर आधारित है ॥३०॥ वे प्राणी उसी अक्षय और अव्यक्त आत्मा में विलीन हो जाते हैं उन प्राणियों के लिए यही बहुत बड़ी बात है जो कि वे उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥३१॥ हे नारद ! इस प्रकार यह गोपनीय रहस्य मैंने तुम्हें बताया। हे देवर्षि ! मेरे प्रति भक्ति होने के कारण तुमने भी उस श्रेष्ठ रहस्य को सुना ॥३२॥

---

१. सूर्य के इस दार्शनिक विवरण पर सांख्य दर्शन की स्पष्ट छाप है। दृष्टव्य आर० सी० हाजरा, **स्टडीज इन दी उपपुराणज**, भाग १, पृ० ५६-५७

जिन देवताओं और मुनियों द्वारा ही यह पुराण स्मरण किया जाता है वे सब परमात्मा सूर्य की पूजा करते हैं ॥३३॥ ऋषियों द्वारा कहा हुआ यह आख्यान जो मैंने तुमसे कहा इसे किसी भी रूप में सूर्य के भक्त के अतिरिक्त और किसी को नहीं बताना चाहिए ॥३४॥ जो मनुष्य इस तथ्य को निरन्तर सुनाता है अथवा जो सुनता है वह (मृत्यु के बाद) सहस्र किरणों वाले सूर्य में विलीन हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं ॥३५॥ हे मुनिवर ! इस कथा को सुनकर आर्तजन रोग से मुक्त हो जाता है और जिज्ञासु व्यक्ति ज्ञान तथा मनचाही गति को प्राप्त करता है ॥३६॥ कल्याण मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति के लिये जो इसका पाठ करता है, वह जो भी कामना करता है उसे निश्चय ही प्राप्त करता है ॥३७॥ वशिष्ठ ने कहा—राजन् ! इस प्रकार महात्मा नारद द्वारा यह रहस्य मुझे बताया गया और मैंने भी सूर्य के प्रति भक्ति होने के कारण तुम्हे बताया ॥३८॥ इसलिए हे राजन् ! तुम्हें निरन्तर भगवान सूर्य की अर्चना करनी चाहिए क्योंकि वही धाता है, विधाता है, और सारे संसार का गुरू है ॥३९॥ यह साम्ब-पुराण का पंचम[1] अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

१. तुलना कीजिए **भविष्य**, १.६७

अध्याय ६

बृहद्बल ने कहा—हे गुरुवर! साम्ब को सूर्य की प्राप्ति कैसे हुई अथवा किसके द्वारा उन्हें सूर्य की प्राप्ति कराई गयी? कठोर शाप पाकर पिता कृष्ण ने क्या कहा? ॥१॥ वशिष्ठ बोले—इसके पश्चात शापाभिभूत होकर साम्ब ने पिता कृष्ण से कहा—हे देव! मैंने कौन दुष्कर्म किया जिसके कारण आपने मुझे शाप दिया ॥२॥ हे देव! मैं तो आप की आज्ञा से शीघ्रता पूर्वक इस उपवन में आया, तब फिर अपकार न करने वाले मेरे ऊपर आपने शाप भार क्यों डाला ॥३॥ हे जगत्पति! आप प्रसन्न हो, मै आपका कुछ भी अपकार नहीं करता। हे देवेश! अपना शाप लौटा ले, मेरे ऊपर कृपा करें ॥४॥ इसके बाद कृष्ण ने साम्ब को निष्पाप समझकर उनसे कहा ॥५॥ ऋषि श्रेष्ठ नारद को प्रसन्न करके तुम्हीं पूछो वह देवर्षि तुम्हें वह उपाय बतायेंगे जिससे तुम्हारा शाप दूर हो जायेगा ॥६॥ इसके बाद पिता के वचन को सुनकर जाम्बवती पुत्र साम्ब ने दीन और शाप से घिरे हुए अंगों वाला होकर और बारम्बार मन में विचार करके ॥७॥ द्वारकापुरी में विद्यमान कृष्ण को देखने के लिए कभी आये हुये देवर्षि नारद के पास पहुँचकर विनीत भाव से पूछा ॥८॥

*

साम्ब ने कहा—हे ब्रह्मा के पुत्र! हे निष्पाप! सर्वज्ञ और सर्वलोक गामी! आप मुझ विनीत के ऊपर कृपा कीजिए ॥९॥ मैं आपसे सुनना चाहता हू, निश्चय ही आप मुझे बताएं समस्त देवताओं के बीच कौन स्तवन करने योग्य है और कौन श्रेष्ठ अव्यय पुरुष है ॥१०॥ दरिद्रों के कष्ट को हरने वाला कौन है, मैं किसकी शरण में जाऊँ। हे महामुनि! पिता के शाप से

बढे हुए कलंक से ॥११॥ अभिभूत मेरे मोक्ष का क्या साधन होगा? वशिष्ठ ने कहा इस प्रकार पूछते हुए साम्ब से नारद ने कहा ॥१२॥ कभी पर्यटन करता हुआ मैं सूर्यलोक पहुँच गया। वहाँ मैंने समस्त देवगणों से घिरे हुए सूर्य को देखा ॥१३॥ वह गन्धर्वों, अप्सराओं, नागों, यक्षों और राक्षसो से घिरे थे। वहाँ गन्धर्व गा रहे थे और अप्सरायें नृत्य कर रही थी ॥१४॥ शस्त्रों और अस्त्रों को उठाए हुए यक्ष, राक्षस, और नाग रक्षा कर रहे थे और वहाँ ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद सशरीर विद्यमान थे ॥१५॥ ऋषिगण उन वदों द्वारा कही गयी विविध स्तुतियो से सूर्य की प्रशस्ति कर रहे थे। वहाँ पवित्र मुख वाली (निष्पाप) तीनों संध्याएँ सशरीर विद्यमान थीं ॥१६॥

वहाँ आदित्य, आठों वसु, ग्यारह रुद्र, मरुत् तथा दोनो अश्विनी कुमार वज्र ओर लोहबाण लिए हुए सूर्य के चारों ओर विद्यमान थे ॥१७॥ अन्यान्य देवगण वहाँ तीनों सध्याओ में सूर्य की पूजा कर रहे थे और इन्द्र की जय-जयकार करते हुए वहीं पर खड़े थे ॥१८॥ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र पवित्र आशीर्वाद दे रहे थे और सूर्य का रथ अरुण नाम वाला सारथि हाँक रहा था। ॥१९॥ घोड़े का रूप धारण करने वाले हरे रंग के सात छदो से वह रथ युक्त था और उन सूर्यो के पास उनकी दो पत्नियाँ थीं जो रानी जैसी थीं ॥२०॥ और भी अन्य नामवाले देवगण परिचर्या करने मे लगे थे। पिंगल वहाँ देवक के रूप में था और अन्य देवता दण्डनायक था ॥२१॥ उन सूर्य देवता के द्वार पर दो कल्माष पक्षी थे और इसके बाद आकाश के चार श्रृंग सुमेरु के समान लक्षण वाले विद्यमान थे ॥२२॥ उन सूर्य देवता के समक्ष नग्न वेष वाले दिण्डि[1] थे और दिशाओं में अन्य देवगण

---

१. भविष्य, १.७६.१३-१९, स्कन्द, ७.१.११, विष्णुधर्मोत्तर ३.६७.२-११ आदि में सूर्य के परिवार के सदस्यों एवं सेवकों का उल्लेख आया है। दिण्डि को दण्डिन भी कहा गया है।

थे इस प्रकार समस्त प्राणियों से व्याप्त, नित्य प्रदीप्त, जगत, कल्याणकारी ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा गुणगान किये गये सूर्य देवता की शरण में, हे साम्ब ! तुम आओ ।।२३।। इस प्रकार साम्बपुराण का भक्त्युपस्थान नामक छठाँ[1] अध्याय समाप्त हुआ ।

१. तुलना कीजिए **भविष्य**, १.७५.

अध्याय ७

साम्ब ने कहा—हे देवर्षि । मैं मूलतः यह सुनना चाहता हूँ कि सूर्य किस प्रकार सर्वगत है ? उनकी किरणें कितनी प्रकार की हैं और उनके कितने रूप हैं। यह राज्ञी और निक्षुभा कौन है ? और दण्डनायक कौन है ? किसे पिंगल कहा गया है और वह सदैव क्या लिखने में (लीन) रहता है । ॥२॥ उस राजा सूर्य के द्वार पर कौन दो द्वारपाल राज्ञ और स्तोष हैं और कौन कल्माष और पक्षी हैं और सुमेरु के समान लक्षण वाला वह आकाश कौन देवता है ? ॥३॥ नग्न वेष वाला वह दिण्डि कौन है और दिशाओं में खड़े वे देवता कौन हैं ? हे देवर्षि! विस्तारपूर्वक मूलतः मुझे वह तथ्य[1] बताएँ ॥४॥ नारद बोले—विस्तार पूर्वक क्रमशः वर्णित किये गये सूर्य को तुम सुनो, इसके बाद सूर्य को नमस्कार करके औरों को भी बताऊँगा ॥५॥ तत्त्व की चिन्ता करने वाले ज्ञानी लोग उस तत्त्व को अव्यक्त कारण, नित्य, सत् और असत् रूप वाला प्रधान तथा प्रकृति इस रूप मे जानते हैं ॥६॥ परम ब्रह्म गन्ध, रूप, रस, शब्द और स्पर्श से हीन है वह सनातन संसार के मूल कारण के रूप में प्रकट हुआ है ॥७॥ प्राचीन काल में वही अव्यक्त समस्त वस्तुओं को रूप देने वाला बना । वह अनादि, अनन्त, अजन्मा, सूक्ष्म त्रिगुणात्मक तथा उससे जगत उत्पन्न तथा उसी में लीन होते हैं ॥८॥

उसे प्राचीन श्रेष्ठ सम्पत्ति और बड़ी कठिनाई से ज्ञात होने वाला परम पद बताया गया है, उस आत्मतत्त्व द्वारा सम्पूर्ण संसार व्याप्त है ॥

---

१. तुलना कीजिए **भविष्य**, १. ७६-७८.

उस ईश्वर की प्रतिभा, ज्ञान एवं वैराग्य लक्षण वाली है और धर्म तथा ऐश्वर्य से युक्त इसकी बुद्धि ब्राह्मी नाम से प्रसिद्ध है ॥१०॥ उस आत्मा के अव्यक्त से वह उत्पन्न होता है जो वह मन से सोचता है। चतुर्मुख के ब्रह्मा पद प्राप्त करने में और यमराज के काल रूप बनने में वह सहायक होता है ॥११॥ उस पुरुष के हजार मस्तक हैं और उस स्वयंभुव आत्मा की तीन अवस्थाएँ हैं—ब्रह्मा रूप धारण करने पर सत्त्व और रजस तथा कालरूप धारण करने पर रजस और तमस गुण होते हैं ॥१२॥ विष्णु रूप धारण करने पर उस स्वयंभुव आत्मा का सात्त्विक गुण होता है। ब्रह्मा रूप से वह लोकों की सृष्टि करता है और काल रूप से संहार करता है ॥१३॥ पुरुष रूप धारण करने पर वह पालन करता है। इस प्रकार उस स्वयंभुव आत्मा की तीन अवस्थाएँ हैं। अपने को तीन रूपों में विभक्त, करके वह भूत भविष्य एवं वर्तमान को प्रवर्तित करता है ॥१४॥ अपने आप इन्हीं तीन रूपों से वह सृजन करता है, ग्रसता है और पालन करता है। उस स्वयंभुव आत्मा से सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ उत्पन्न होता है ॥१५॥ प्रथम देवता होने के कारण और अजन्मा होने के कारण वह आदित्य अज कहा जाता है। देवों के मध्य महान् देवता होने के कारण वह महादेव के रूप में स्मृत होता है ॥१६॥

संसार का मूल होने के कारण और किसी के वंश में न होने के कारण वह ईश्वर कहा जाता है, विशाल होने के कारण ब्रह्मा और भूत होने के कारण भव कहा जाता है ॥१७॥ चूँकि समस्त प्रजाएँ इसी सूर्य से उत्पन्न होती हैं इसलिए यह प्रजापति कहा गया है और चूँकि यह पुरी अर्थात् शरीर रूपी नगरी में सोता है इसलिए पुरुष कहा जाता है ॥१८॥ किसी से उत्पन्न न होने के कारण और सर्वप्रथम होने के कारण वह स्वयंभुव के रूप में स्मृत होता है और चूँकि यह स्वर्ण के गर्भ में रहता है और उसी से घिरा रहता है इसलिए यह सूर्य देवता हिरण्यगर्भ कहा जाता है। तत्त्वदर्शी ऋषियों

ने जलसमूह को ही "नार" की संज्ञा दी है ॥२०॥ उसी जलसमूह का आश्रय होने के कारण वह नारायण कहा जाता है । कवियों द्वारा सिद्ध होने के अर्थ में 'अर' शब्द एक अव्यय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ॥२१॥ प्राचीन काल में चराचर जगत के नष्ट हो जाने पर एक मात्र नारायण नाम वाले उस पुरुष ने जल में शयन किया ॥२२॥ सहस्त्र मस्तकों वाला, विशाल आकार वाला सहस्त्र चरणों वाला, सहस्त्र नेत्रों और मुखों वाला, सहस्त्र भोजन करने वाला, सहस्त्र भुजाओं वाला वही प्रथम प्रजापति बाद मे सूर्य नाम से पुकारा जाने लगा ॥२३॥ वह सूर्य आदित्य वर्ण संसार का रक्षक, अपूर्व, अकेला पुरुष, प्राचीन हिरण्यगर्भ और महात्मा है । मृत्यु के पश्चात उसी का अन्वेषण होता है ॥२४॥

वह सूर्य एक हजार युगों के बराबर निशाकाल में शयन करता है और प्रलय काल के पश्चात् जीवों की सृष्टि के लक्ष्य मे ब्रह्मा का रूप धारण करता है ॥२५॥ सृष्टि कार्य को सोचकर पृथ्वी को जल मे डूबी हुई देखकर उस प्रभु ने वराह का रूप धारण करके जल के भीतर प्रवेश किया ॥२६॥ इस प्रकार सोचकर पृथ्वी का उद्धार करने में समर्थ उस देवता ने महा समुद्र में डूबी हुई पृथ्वी को ऊपर निकालने का प्रयास किया ॥२७॥ उस समुद्र के जल के बीच में से उठते हुए महावराह द्वारा पृथ्वी को लेकर ऊपर निकलते समय उसके रोमों के बीच विद्यमान मुनियों ने उसके वेदमय शरीर की स्तुति की ॥२८॥ जल से पृथ्वी को ऊपर निकालकर उस देवता ने प्रजाओं की सृष्टि का संकल्प किया और अपने ही तेज के समान तेज वाले मानस पुत्रों को उत्पन्न किया वे पुत्र थे ॥२९॥ भृगु, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मारीचि, दक्ष और नवें वसिष्ठ ॥३०॥ नौ प्रजापतियो को उत्पन्न करने के पश्चात वह पुरुषोत्तम जीवों के कल्याण की कामना से देवमाता अदिति के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए ॥३१॥ मारीचि ने कश्यप नाम वाले पुत्र को जल में नाव पर उत्पन्न किया जो कि प्रजापतियों में दशम था और ब्रह्मा के समान तेजस्वी था ॥३२॥

दक्ष प्रजापति की कन्या अदिति उस कश्यप की पत्नी हुई और उसने पृथ्वी और आकाश के समान विस्तार युक्त एक अण्डे को जन्म दिया ।।३३।। उसी अण्डे से सहस्त्रों किरणों वाले आत्मा वाले दिवाकर उत्पन्न हुए जिनका विस्तार नौ हजार योजन बताया गया है और उनके मण्डल का विस्तार इसका तिगुना अर्थात् सत्ताइस हजार योजन कहा गया है ।।३४।। जैसे कदम्ब का फूल चारों ओर केसरों से घिरा रहता है उसी प्रकार यह प्रकाश गोलक चारों ओर किरणों से घिरा रहता है ।। हजार मस्तकों वाला पुरुष[१] जिसे मैं पहले बता चुका हूँ वह इसी प्रकाश गोलक के बीच में व्यवस्थित है ।।३६।। वही यह सूर्य आकाश में अपनी किरणों से जल का शोषण करता है, अग्नि से घिरे हुए घड़े के समान सहस्त्र किरणों वाला यह सूर्य है ।।३७।। अपनी हजार किरणों से वह सूर्य चारों ओर नदी, समुद्र, सरोवर और कुएँ से जल ग्रहण करता है ।।३८।। सूर्य के अस्त हो जाने पर सूर्य की वह प्रभा अग्नि में प्रवेश कर जाती है इसीलिए रात दूर से ही प्रकाशित होती है ।।३९।। पुनः सूर्य के उदय होने पर वह प्रभा अग्नि सदृश उष्णता के रूप में बदल जाती है और दिन में अग्नि के तेज के ही समान वह तपती है ।।४०।।

इस प्रकार सूर्य और अग्नि के जो दो तेज प्रकाश और उष्णत्व हैं वे एक दूसरे में प्रवेश करने के कारण रात और दिन कहे जाते हैं ।।४१।। नारद बोले—अब आप मुझसे सूर्य किरणों के नाम और उनकी व्यापकता बताइये (वशिष्ठ बोले) उन्हें हेति, किरण, गऊ, रश्मि, गभस्ति ।।४२।। अभीशु, वन, उस्र, घृणि, मारिचि, नाडी, दीधिति, साध्या, मयूख, भानु अंशु ।।४३।। सप्तार्पि, सुपर्ण, कर, पाद इस प्रकार सूर्य की किरणों के नामों के बीस पर्याय बताए गये हैं ।।४४।। वन्दना करने योग्य जिनके अलग अलग

१. तुलना कीजिए **बृहदारण्यक उपनिषद २.३.१; मैत्री उपनिषद**, ६.५.

वन्दना आदि नाम हैं ।। ये सूर्य की सहस्त्र किरणें शीत, वर्षा और ग्रीष्म ऋतुओं के माध्यम से विद्यमान हैं ।।४५।। अचिन्त्य स्वरूप वाली चार सौ नाडियाँ जलवृष्टि करती हैं. इन्हीं में वन्दनाएँ, मेध्याएँ, कातनाएँ और केतनाएँ हैं ।।४६।। नाम से जो अमृता कही जाती हैं वे समस्त सूर्य किरणें जल वर्षा करने वाली है ।। इनसे पृथक तीस किरणें शीत उत्पन्न करने वाली बताई गयी है ।।४७।। जिनका नाम चन्द्रा है ऐसी पीले रंग वाली समस्त किरणें मेघ को पुष्ट करने वाली, आनन्द देने वाली और हिम सृष्टि करने वाली हैं ।।४८।।

वे समस्त किरणें मनुष्यों, देवताओं और पितरों को भली भाँति धारण करती हैं ।। मनुष्यों को औषधियों से, पितरों को स्वधा से, ।।४९।। समस्त देवताओं को अमृत से वे किरणें संतुष्ट करती हैं वह सूर्य वसन्त और ग्रीष्म में तीन सौ किरणों से तपता है ।।५०।। और शरद और वर्षा में चार सौ किरणों से जलवृष्टि करता है ।। हेमन्त और शिशिर ऋतु में तीन सौ किरणों से तुषार की सृष्टि करता है ।।५१।। औषधियों में शक्ति भरता है, स्वधाओं में स्वधा भरता है । इस प्रकार सूर्य सबका भरण-पोषण करता है ।।५२।। यह द्वादशात्मा प्रजापति सुरश्रेष्ठ सूर्य चराचर युक्त तीनों लोकों को प्रकाश देता है ।।५३।। यह ब्रह्मा है, विष्णु है और शंकर है, यह ऋक् है, यजुष और यही निसंदेह साम है ।।५४।। उदित होता हुआ यह सूर्य ऋचाओं से, मध्यान्ह में यजुओं से, और संध्याकाल में सामों से क्रमशः सदीप्त किया जाता है ।।५५।। वही यह तेजोराशि दीप्तिमान सार्वलौकिक सूर्य अपने करवटों से ऊपर नीचे चारों ओर प्रकाश करता है ।।५६।।

जैसे प्रकाश करने वाला दीपक घर के बीच रखे जाने पर अपनी करवटों से ऊपर नीचे बराबर अंधकार का नाश करता है ।।५७।। ठीक उसी प्रकार सहस्त्र-किरण ग्रहराज जगत्पति यह सूर्य अपनी तीन सौ किरणों से भूलोक

को प्रकाशित करता है ॥५८॥ इसकी चार सौ किरणें पितृलोक को तिरछे होकर और तीन सौ ही किरणें ऊपर देवलोक को प्रकाशित करती हैं। इस प्रकार यही शुक्ल वर्ण वाला मण्डल सूर्य-लोक कहा जाता है ॥५९॥ यही सूर्य नक्षत्रों, ग्रहों और चन्द्रमा आदि की प्रतिष्ठा का कारण है। चन्द्रादि समस्त ग्रह सूर्य से ही उत्पन्न हुए हैं ॥६०॥ सूर्य की जिन हजार किरणों का मैंने पहले उल्लेख किया है उनमें से ग्रहों को उत्पन्न करने वाली सात किरणें पवित्र और श्रेष्ठ हैं ॥६१॥ (उनके नाम हैं) सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वव्यच्, सौम्यसुरत ॥६२॥ उद-वसु तथा सुरादन्य ॥६३॥ जो सुषुम्न नाम वाली सूर्य की किरण है वह निस्तेज चन्द्रमा को बढ़ाती है। हुई एक किरण से उसमें अमृत भरकर ॥६४॥

देवताओं को आप्यायित कर देने के कारण उसे आदित्य कहते हैं और शुक्लत्व अमृतमय शैत्य प्रकाश और आह्लादन में ॥६५॥ तथा ब्रह्मा की दीप्ति में इस प्रकार अनेक अर्थ होने के कारण उसे चन्द्र कहते हैं। सूर्य की जो रश्मि संयद्वसु कही जाती है वह अंगार को उत्पन्न करने वाली है ॥६६॥ विश्वकर्मा नाम वाली सूर्य की किरण दक्षिण मे बुध को आप्यायित करती है। सूर्य की जो किरण उदावसु नाम की है वह बृहस्पति की योनि है ॥६७॥ जो किरण विश्वव्यचा कही जाती है वही शुक्र की योनि बताई गई है और 'स्वराट्' नाम वाली सूर्य की किरण शनिश्चर को आप्यायित करती है ॥६८॥ जो हरिकेश नाम की किरण है वही नक्षत्रों को तेज प्रदान करती है ॥ चूंकि वह कभी क्षीण नहीं होती यही उनकी नक्षत्रता है ॥६९॥ क्षत्र, वीर्य, बल और तेज — ये शब्द एकार्थवाचक है चूँकि सूर्य उनके क्षेत्र को ग्रहण करता है, अतः उनकी नक्षत्रता बताई गयी है ॥७०॥ अपने गुणों के कारण इस लोक तक पहुंचने वाले व्यक्तियों का तारण करने के कारण उन्हें तारक कहा जाता है अथवा अपनी शुक्लता के कारण ही ये तारक हैं ॥७१॥ सूर्य की एक दूसरी किरण नाम से वष्टि-पति कही गयी

है समता गुण से युक्त होने के कारण वही संसार को जीवन प्रदान करती है ॥७२॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण में सर्वव्यापित्व निरूपण नामक सातवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

अध्याय ६

नारद ने कहा- सूर्य के साधारण रूप से बारह नाम[1] है अब मैं अलग अलग आदि से अन्त तक उन बारह नामों को बताऊँगा ॥१॥ आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर ॥२॥ और बारहवाँ नाम रवि इस प्रकार समझना चाहिए। इसी प्रकार विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, यम, विवस्वान, अंशुमान त्वष्टा और बारहवें पर्जन्य इस प्रकार अलग अलग यह बारह आदित्य बताये गये हैं ॥४॥ यह बारहों बारह महीनों के क्रम से उठते हैं। चैत्र में विष्णु तपता है और बैशाख में अर्यमा ॥५॥ ज्येष्ठ मास में विवस्वान, आषाढ़ में अंशुमान, श्रावण मे पर्जन्य, भादों में वरुण ॥६॥ क्वार में इन्द्र, कार्तिक में धाता, अगहन में मित्र, पौष में पूषा ॥७॥ माघ में भग और फागुन में त्वष्टा प्रकाश करता है। इन्हीं बारह प्रकार की रश्मियों द्वारा विष्णु सदैव तपता है ॥८॥

अर्यमा तेरह सौ किरणों से प्रकाशित होता है और विवस्वान चौदह सौ किरणों से और अंशुमान पन्द्रह सौ किरणों से प्रकाश करता है ॥९॥ पर्जन्य भी विवस्वान की भाँति और वरुण अर्यमा की भाँति उतनी ही किरणों से प्रकाश करता है। इसी प्रकार इन्द्र बारह सौ किरणों से और पूषा एक

---

१. बारह आदित्यों की परम्परा के लिये देखिये **शतपथब्राह्मण,** ६-१-२८, **विष्णु पु०,** १.१५.१२६-१३१, **वायु पु०,** ६६.६६-६७. **ब्रह्माण्ड पु०,** ३.२.६७-६६, **मत्स्य पु०** ६.३-५.

सूर्य के संसार को संतृप्त न करने पर स्वर्ग अथवा पृथ्वी लोक पर प्राणियों और व्यवहारों का अभाव हो जाता है ॥१०॥ बिना वृष्टि के सूर्य तपता नहीं है और न ही बिना वृष्टि के परितुष्ट होता है बिना वृष्टि के परिवेष नहीं होता है ॥११॥ वसन्त ऋतु में सूर्य कपिल वर्ण का होता है, ग्रीष्म ऋतु में स्वर्णिम वर्ण का होता है, वर्षा ऋतु में श्वेत और शरद ऋतु में पाण्डु वर्ण का होता है ॥१२॥ हेमन्त ऋतु में ताम्र वर्ण, शिशिर में लोहितवर्ण इस प्रकार विभिन्न ऋतुओं में होने वाले सूर्य के रंग बताए गए। ऋतुओं के स्वभाव के उत्पन्न होने वाले वर्णों के द्वारा सूर्य अनायास कल्याण उत्पन्न करने वाला होता है ॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में सर्वव्यापकत्ववर्ण नामक आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय ८

नारद बोले—हे यदुनन्दन ! सारा त्रैलोक्य सूर्य से ही उत्पन्न हुआ है ॥ देवों, असुरों और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण संसार उन्हीं से उत्पन्न हुआ है ॥१॥ रुद्र, विष्णु, इन्द्र, श्रेष्ठ ब्राह्मण और स्वर्गवासी देवगण इस प्रकार महान् प्रकाश से युक्त समस्त प्राणियों का सार्वलौकिक तेज वही सूर्य है ॥२॥ वह सबकी आत्मा है,[1] समस्त लोकों का स्वामी है, देवों का भी देव है और प्रजापति है ॥३॥ सूर्य ही त्रैलोक्य का मूलभूत श्रेष्ठ देवता है आग में भली-भाँति छोड़ी गई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य से वृष्टि वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजायें ॥४॥ सूर्य से सब कुछ उत्पन्न होता है और सूर्य में ही विलीन हो जाता है । प्राचीन काल में लोगों का भाव अभाव दोनों ही सूर्य से निकले थे ॥५॥ ध्यानी योगियों का जो ध्यान है वह सूर्य हैं, मोक्ष चाहने वालों का जो मोक्ष है वह यही सूर्य हैं इसी में लोग निर्वाण प्राप्त करते हैं और इसी से प्रजाएँ पुनः उत्पन्न होती हैं ॥६॥ क्षण, मुहूर्त, दिन रात, पखवारा, महीना, वर्षा, ऋतुयें और युग ॥७॥ उस सूर्य को छोड़कर इन सबकी काल संख्या नहीं होती और काल के बिना न तो कोई नियंत्रण होता है और न ही अग्नि का यज्ञ-कर्म ॥८॥

ऋतुओं का विभाजन न होने से फलमूल और फल भला कहाँ से उत्पन्न हो सकते हैं ॥ कहाँ से हरी भरी फसलें पैदा हो सकती हैं और कहाँ से तृणों और ओषधियों का समूह हो सकता है ॥९॥ जल का शोषण करने वाले

१. तुलना कीजिए ऋग्वेद १. ११५ १

हजार किरणों से प्रकाश करता है। भग मित्र के ही समान किरणों से, त्वष्टा ग्यारह सौ किरणों से प्रकाश करता है ॥११॥ सूर्य के उत्तरायण होने पर सूर्य की रश्मियाँ बढ़ती हैं और दक्षिणायन होने पर उनका ह्रास होता है ॥१२॥ इस प्रकार अर्थसाधक वह सूर्य-लोक सहस्रों किरणों से युक्त है जो कि आगे भी अनेक बार ऋतुओं और महीनों द्वारा हजारों भागों में विभाजित हो जाता है ॥१३॥ इस प्रकार सूर्य के २४ नामों का वर्णन किया गया और उनके सहस्त्रों नामों का तो विस्तारपूर्वक वर्णन अन्य ग्रंथों में किया गया है ॥१४॥ हे राजन्! अब इसके उपरान्त इन नामों में आई धातुओं का अर्थ आप सुनें॥ देवताओं, पृथ्वी पर रहने वाले जीवों ॥१५॥ इन सबका आदन अर्थात भक्षण करने के कारण इसे आदित्य कहते हैं ॥ यह तपश्चर्या तेजस्विता का केन्द्र-बिन्दु है॥ अथवा चूँकि वह देवमाता अदिति का पुत्र है इसलिए भी तत्वज्ञों ने इसे आदित्य कहा है ॥१६॥

चूँकि सूर्य अपना कर्म (जलवर्षण) करता है इसलिए भी उसे आदित्य कहते हैं ॥१७॥ स्यन्दन अ वाली सु धातु से भी सूर्य बनाया जाता है। सव धातु स्यन्दन अर्थात प्रवाह के अर्थ में प्रयुक्त होती है इस प्रकार प्रकाश को प्रवाहित करने के कारण इसे सविता कहा गया है ॥१८॥ चूँकि इससे निरन्तर प्राणी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर उसी में विलीन होते हैं इसलिए तत्वज्ञानी मनीषियों ने इसे सूर्य कहा है ॥१९॥ नुद् धातु प्रेरणा के अर्थ में और भा धातु दीप्ति के अर्थ में प्रयुक्त होती है। इस प्रकार दीप्तियों को प्रेरित करने के कारण इसे भानु कहा जाता है ॥२०॥ चूँकि श्वेत आदि विविध वर्णों के कारण इसकी किरणें बहुरंगी होती हैं इसीलिए इसे चित्र-भानु भी कहा गया है ॥२१॥ चूँकि वह सूर्य अत्यधिक कान्ति उत्पन्न करता है इसकी किरणें बहुत प्रकाशमयी होती हैं और भासृ धातु प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त होती है इसलिए इसे भास्कर कहते हैं ॥२२॥ प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली भा धातु प्र उपसर्ग से युक्त होने पर प्रकृष्ट रूप में प्रकाश

करने का अर्थ देती हुई सूर्य को प्रभाकर बनाती है ॥२३॥ विद्वान लोग अव्यय के रूप में दिवा शब्द का प्रयोग करते हैं और चूँकि सूर्य दिवा अर्थात दिन करता है इसलिए इसे दिवाकर कहते हैं ॥२४॥

चूँकि पर्यटन करता हुआ यह सूर्य तीनों लोकों को रक्षित करता है, अव धातु रक्षण के अर्थ में प्रयुक्त होती है इस प्रकार अवन कर्म के कारण उसे सविता कहा गया है ॥२५॥ चूँकि यह सूर्य देवताओं द्वारा अर्चित किया गया है इसीलिए इसे अर्क कहते हैं। अण्डे को दो भागों में विभक्त कर देने पर उसे आर्त्त देखकर स्नेहपूर्वक पिता ने कहा था—हे देवेश ! 'आर्त मत हो' इसलिये मार्त्तण्ड कहा गया है ॥२६॥ चूँकि यह समस्त लोकों को धारण करता है, उन्हें भूमि प्रदान करता है इस प्रकार धारण करने के अर्थ मे प्रयुक्त होने वाली डुधाञ् धातु से निष्पन्न होने के कारण इसे धाता कहते है ॥२७॥ गमि प्रत्यय पूर्वक ऋ धातु से निष्पन्न होने से अर्यमा बनाया गया है क्योंकि गति में इससे परे कोई नहीं है ॥२८॥ चूँकि यह सूर्य दया भाव से समस्त जीवों का त्राण करता है इस प्रकार स्नेह के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली ञिमित् धातु से निष्पन्न होने के कारण उसे मित्र कहते हैं ॥२९॥ वर की याचना करते हुए याचक देवताओं के लिए चूँकि यह वरद था इस प्रकार वरण के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली वृञ् धातु से निष्पन्न होने के कारण इसे वरुण कहते हैं ॥३०॥ नागों, असुरों, देवताओं के रूप में जिसका श्रेष्ठ ऐश्वर्य है इस प्रकार श्रेष्ठ ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली इदि धातु से निष्पन्न होने के कारण इसे इन्द्र कहते हैं ॥३१॥ चूँकि यह संसार की सृष्टि, पालन और उसका संहार करने में समर्थ है इस प्रकार शक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली शक्लृ धातु से निष्पन्न होने के कारण इसे शक्र कहते हैं ॥३२॥

चूँकि सूर्य समस्त जीवों में अन्तर्हित होकर अनदेखा ही निवास करता है इस प्रकार निवास के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली वस् धातु से सम्बद्ध होने

के कारण इसे विवस्वान कहते हैं ।।३३।। गर्ज शब्द में 'प्र' उपसर्ग जोड़ देने के निपातन से पर्जन शब्द बनता है चूँकि यह (मेघ के रूप में) अत्यधिक गरजता है इसलिए इसे पर्जन्य कहते हैं ।।३४।। चूँकि यह अमृत इत्यादि से भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक को सींचता है इसलिए पुष्टि के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली पुष् धातु से सम्बद्ध होने के कारण इसे पूषा कहते हैं ।।३५।। अश् धातु व्याप्ति के अर्थ में और इसके साथ प्रिय 'अनु' शब्द जुड़ गया है, इस प्रकार चूँकि सूर्य सारे संसार को व्याप्त करता है इसलिए इसे अंशु भी कहते हैं ।३६। चूँकि यह समस्त देवताओं द्वारा सेवित होता है और किरणों को प्राप्त करता है इस प्रकार सेवा के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली भज् धातु से निष्पन्न होने के कारण इसे भग कहते हैं ।।३७।। तुष्टि के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली तुष् धातु से क्योंकि यह तुष्ट होकर समस्त प्रजाओं को उत्पन्न करता है अतः इसे त्वष्टा कहते हैं ।।३८।। चूँकि यह सम्पूर्ण संसार सूर्य की किरणों से व्याप्त है इस प्रकार व्याप्ति के अर्थ में प्रयुक्त विष् धातु से निष्पन्न होने के कारण इसे विष्णु कहते हैं ।।३९।। चूँकि इस सूर्य का शरीर बृहत् है और नापने योग्य नहीं है इसलिए बृहत् शब्द विस्तीर्ण का पर्याय होने के कारण इसे ब्रह्मा कहते हैं ।।४०।।

जो समस्त देवताओं द्वारा पूजित होता है और जो प्रमाण की दृष्टि से महान् है इस प्रकार पूजा के अर्थ में प्रयुक्त मह् धातु से सम्बद्ध होने के कारण इसे महादेव कहते हैं ।।४१।। इस सूर्य को जो निर्वाह करता है प्रताप-वान और उग्र बनकर जो विश्व के मांस, रक्त और मज्जा आदि को खाने वाला है इसलिए रुद्र कहते हैं ।।४२।। जिससे सृष्टि क्रमान्वित होती है और जिसके द्वारा पुनः बटोर ली जाती है इसलिए त्रैकालिक होने के कारण वह देव कहा जाता है ।।४३।। भिन्न भिन्न दर्शन वाले कहते हैं यह सर्वश्रेष्ठ है अथवा ऐसा नहीं है, तमस भाव के कारण अथवा मूर्खता के कारण वे ऐसा कहते हैं। ।।४४।। कुछ लोग सूर्य को ब्रह्म का भी कारण मानते हैं और कुछ लोग

भक्ति भावना के कारण उसे विष्णु कहते हैं ॥४५॥ श्रेष्ठ देवताओं ने विभिन्न अर्थों में सूर्य को कारण माना है इस प्रकार अकेला वह स्वयम्भुव सूर्य पृथक पृथक रूपों में विश्रुत है ॥४६॥ जैसे स्फटिक मणि चित्र विचित्र रंगों में रंग दी जाती है उसी प्रकार अपने विभिन्न गुणों के कारण स्वयम्भुव का अनुरंजन करने से ॥४७॥ वह सूर्य एक ही महामेघ बनकर वर्णरूप और गुणों से भिन्न-भिन्न रूप में रहता है ॥४८॥

जैसे आकाश से गिरा हुआ जल दूसरे जलों में मिल जाता है और भूमि के वैशिष्ट्य से भिन्न रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार गुणों के कारण वह सूर्य भी पृथक हो जाता है जैसे एक ही वायु दिशाओं के भेद से दुर्गन्ध अथवा सुगन्ध बन जाती है उसी प्रकार वह सूर्य भी बदल जाता है ॥५०॥ जैसे एक ही गार्हपत्य अग्नि अन्य नामों से पुकारी जाती है दक्षिण और आहवनीय आदि उसी प्रकार वह सूर्य भी ॥५१॥ इस प्रकार सूर्य के एकत्व और बहुत्व के विषय में यह प्रमाण बताया गया इसलिए इस देवता दिवाकर में श्रेष्ठ भक्ति करनी चाहिए ॥५२॥ यही सूर्य ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश्वर है, यही वेद है, यज्ञ है, स्वर्ग है, इसमें संशय नहीं ॥५३॥ स्थावर जंगम युक्त यह संसार सूर्य से व्याप्त है अन्न और पान के रूप में यह रवि खाया जाता तथा पिया जाता है ॥५४॥ विभिन्न नामों और मूर्तियों द्वारा वही सूर्य देवता सर्वत्र मनुष्यों, अतिथियों, वायु, आकाश, अग्नि में व्याप्त है ॥५५॥ इस प्रकार का यह सूर्य ज्ञानी व्यक्ति द्वारा सदैव पूजा योग्य है जो व्यक्ति इस आदित्य को जानता है वह उसी में विलीन होता है ॥५६॥

जो व्यक्ति सूर्य के एक भी नाम की धातु के अर्थ ज्ञान सहित जानता है वह समस्त रोगों से छुटकारा पाकर तत्काल पाप से मुक्त हो जाता है ॥५७॥ हे साम्ब ! पापी व्यक्ति को कभी भी सूर्य में भक्ति नहीं हो सकती

इसलिए तुम्हें उत्कृष्ट भक्ति भावना सहित सूर्य की शरण में जाना चाहिए ।।५८।। इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में सूर्य-निगमनोनाम का नवाँ अध्याय[1] समाप्त होता है ।

---

१. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.७८. इस अध्याय के १-३ अ तथा १४ श्लोकों की पुनरावृत्ति **ब्रह्म-पुराण**, ३१.१४ ब-२७ में की गई है ।

अध्याय १०

वशिष्ठ ने कहा—इस प्रकार विस्तारपूर्वक सुनकर कुतूहल उत्पन्न हो जाने से प्रसन्नचित्त जाम्बवती पुत्र साम्ब ने नारद से पुनः पूछा ।।१।। साम्ब ने कहा—हर्ष की बात है हे देवर्षि! आपने सूर्य का हर्षवर्धन माहात्म्य वर्णित किया जिससे श्रेष्ठ देवता सूर्य में मेरी भक्ति उत्पन्न हुई ।।२।। अब इसके बाद भाग्यशालिनी राज्ञी, निक्षुभा, दण्डी और पिंगल आदि को भी हे महामुनि! मुझे बताएं ।।३।। नारद बोले—मैंने पहले ही बताया है कि सूर्य की दो पत्नियां हैं राज्ञी और निक्षुभा। उन दोनों में राज्ञी को ही द्यौ और निक्षुभा को पृथ्वी कहते हैं ।।४।। पूस महीने की कृष्णपक्षीय सप्तमी के दिन सूर्य के साथ द्यौ की पूजा होती है और माघ कृष्ण सप्तमी के दिन सूर्य, पृथ्वी और भगवान आदित्य का संगम होता है और ऋतुस्नान किए हुई पृथ्वी सूर्य से गर्भ ग्रहण करती है ।।६।। द्यौ वर्षा ऋतुओं में जलरूपी गर्भ को सूर्य से धारण करती है और पृथ्वी लोक रक्षा के लिए हरी भरी फसलें उत्पन्न करती हैं ।।७।। हरी भरी फसलों के उत्पन्न होने से प्रमुदित ब्राह्मण लोग आहुतियाँ प्रदान करते हैं और स्वाहा और वषट्कारों से पितरों और देवताओं के लिये यज्ञ करते हैं ।।८।।

चूंकि ओषधियों और स्वधामृतों से मनुष्यों, पितरों और देवताओं को पृथ्वी क्षोभरहित कर देती है इसलिए उसे निक्षुभा कहते हैं ।।९।। जिस प्रकार सूर्य की पहली पत्नी दो रूपों में बदली और जिसकी यह बेटी हुई और इसकी जो सन्तानें हुई अब वह सब मुझसे सुनो ।।१०।। ब्रह्म के पुत्र

मारीचि और मारीचि के पुत्र कश्यप हुए ।। कश्यप के हिरण्यकशिपु और उससे प्रह्लाद नामक पुत्र हुआ ।।११।। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन नाम से प्रसिद्ध हुआ और विरोचन की बहिन नाम से जननी कही गई ।।१२।। इस प्रकार वह दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु की पौत्री हुई, वही कन्या जननी विश्वकर्मा की पत्नी और प्रह्लादी भी कही जाती है ।।१३।। इसके बाद महर्षि मारीचि की सुन्दरी कन्या जिसका नाम सुरुपा था महर्षि अंगिरा की पत्नी हुई और बृहस्पति की माँ बनी ।।१४।। बृहस्पति की बहिन ब्रह्म-वादिनी 'भुवनी' था और वह वसुओं में से आठवें अर्थात् प्रभास की पत्नी हुई ।।१५।। उसी ने समस्त शिल्पियों के अगुआ विश्वकर्मा को पैदा किया और वही विश्वकर्मा देवताओं के बढ़ई नाम से त्वष्टा हुये ।।१६।।

देवताओं के आचार्य उन्हीं विश्वकर्मा की यह कन्या तीनों लोकों में सरेणु के नाम से विख्यात हुई ।।१७।। राज्ञी संज्ञा सास्वी प्रभासा और पृथ्वी के रूप में विद्यमान उसी की पुत्री निक्षुभा ।।१८।। महात्मा भगवान मार्तण्ड की पत्नी हुई जो कि साध्वी पतिव्रता देवी और रूपयौवन सम्पन्ना थी । जिससे रमण करने के लिए सूर्य प्राचीन काल में पुरुष रूप में अवस्थित हुये ।।१९।। अपने महान् तेज के कारण सूर्य का जो रूप था वह अंगों के प्रतिरुद्ध हो जाने पर कान्तिविहीन हो गया ।। २० ।। उन्हें गात्रों में भेद देखकर पिता ने कहा—हे मार्त्तण्ड दुखी मत होओ । इसीलिए सूर्य मार्त्तण्ड कहे गये हैं ।। २१ ।। इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में राज्ञी-निक्षुभो-त्पत्ति नामक दसवाँ अध्याय[1] समाप्त होता है ।

---

१. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.७९.१०-२२ अ इस अध्याय के ४ ब-१७ श्लोकों तथा १८-२० श्लोकों को **स्कन्द-पुराण**, (प्रभास खण्ड), ७.६२-७५ तथा ७७-८८ अ में क्रमशः ग्रहण किया गया है ।

अध्याय 11

अब इसके बाद उस महात्मा सूर्य की सन्तानों के विषयों में बताऊँगा सूर्य ने 'संज्ञा' की कोख से तीन संतानें उत्पन्न की ॥१॥ दो भाग्यशाली पुत्र और एक कन्या कालिन्दी । इन तीनों में श्राद्धदेव नाम वाले प्रजापति वैवस्वत मनु ज्येष्ठ थे ॥२॥ इसके बाद यम और यमी दोनों जुड़वा पैदा हुए, उन सूर्य का तेज निरन्तर उत्तरोत्तर बढ़ रहा था जिसके कारण वह चराचर युक्त तीनों लोकों को अत्यधिक संतप्त कर रहे थे विवस्वान के उस गोलाकार रूप को देखकर ॥४॥ उस तेज को न सह पाती हुई अतएव अपनी छाया को भेजकर संज्ञा ने कहा । तुम लक्षणों से मेरे समान नारी स्वरूप वाली हो जाओ ॥ ५ ॥ संज्ञा के ऐसा कहने पर समान लक्षणों वाली वह छाया उठ खड़ी हुई । संज्ञा महीमयी थी अब उसकी छाया उत्पन्न हुई ॥६॥ हाथ जोड़कर और प्रणत होकर छाया ने संज्ञा से कहा ॥७॥ हे शोभने ! जिस लिए मुझे पैदा किया है उसकी आज्ञा दो, भले ही वह दुष्कर कार्य हो मैं सब कुछ करूँगी ॥८॥

संज्ञा ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो । मैं अपने आप पिता के घर जाऊँगी इस मेरे घर में निर्विकार भाव से तुम रहना ॥९॥ इन दोनों बच्चों और श्रेष्ठ वर्ण वाली इस कन्या को गोदी में लिए रहना और स्वामी से यह बात कभी न बताना ॥१०॥ छाया ने कहा—हे देवि ! सुखपूर्वक जाओ । तुम्हारी कही गई बात कभी न बताऊँगी छाया द्वारा इस प्रकार ढाढ़स बधाने पर संज्ञा पिता के घर गई ॥११॥ वह तपस्विनी संज्ञा लजाती हुई पिता के पास पहुँचकर एक हजार वर्ष तक उन्हीं के घर में रही ॥१२॥ पिता के

द्वारा बार बार यह कहने पर कि पति के पास जाओ वह यशस्विनी संज्ञा वास्तविक रूप छोड़कर घोड़ी का रूप धारण करके गई ॥१३॥ उत्तर कुरु प्रदेश पहुँचकर वह घास चरने लगी। इसके पश्चात् संज्ञा के चले जाने पर संज्ञा के ही कथनानुसार ॥१४॥ संज्ञा का रूप धारण करके छाया सूर्य के पास उपस्थित हुई। दूसरी संज्ञा होने पर भी सूर्य ने उसे भी संज्ञा ही समझा ॥१५॥ सूर्य ने छाया से दो पुत्र और एक रूपवती कन्या पैदा की अपने पहले उत्पन्न हुए भाई मनु के समान और उन्हीं की तरह रूप वाले वे दोनों भी हुए ॥१६॥

उनमें से एक अपने धर्म को जानने वाला श्रुतश्रवा था और दूसरा श्रुतकर्मा। इन भाइयों में श्रुतश्रवा ही भविष्य में सावर्णि मनु होगा ॥१७॥ और जो शनैश्चर ग्रह हैं श्रुतकर्मा को वही समझना चाहिए। कन्या का नाम तपनी था जो कि पृथ्वी लोक में अप्रतिम रूपवती थी ॥१८॥ पृथ्वी रूप धारिणी उस छाया संज्ञा ने जैसे अपने पुत्रों का पालन किया उसी प्रकार स्नेहपूर्वक संज्ञा से उत्पन्न हुए बच्चों का भी पालन किया ॥१९॥ मनु तो उसकी बातें सहते थे किन्तु यम नहीं सहते थे इस प्रकार अपने पिता की पत्नी द्वारा अनेकशः प्रार्थना करने पर भी सूर्य पुत्र यम ने एक बार क्रोधवश बचपने के कारण अथवा भावी दुर्योग के कारण पैर से छाया पर प्रहार किया ॥२१॥ इसके बाद पृथ्वी रूप धारिणी उस संज्ञा ने क्रुद्ध होकर यम को शाप दिया—अपने पिता की गौरवशालिनी पत्नी मुझको जो तुम पैर से मार रहे हो ॥२२॥ इसलिए तुम्हारा यह चरण गिर जायेगा इसमें संशय नहीं। यमराज ने उस शाप से अत्यंत पीड़ित मन वाले होकर ॥२३॥ अपने बड़े भाई मनु के साथ सब कुछ अपने पिता सूर्य को बता दिया और कहा हे देव। यह माँ अधिक स्नेह देने वाली नहीं है ॥२४॥

यह प्रायः हम लोगों को छोड़कर अपने छोटे बच्चों को ही सम्हालती है। मैंने उसे मारने के लिए पैर उठाया भर था किन्तु शरीर पर गिराया

नहीं था ।।२५।। यह चाहे मेरे बचपने के कारण, चाहे मेरे अज्ञान के कारण हुआ आप कुछ भी कह सकते हैं लेकिन हे देवेश ! हे तपस्वियों में श्रेष्ठ ! तब भी माँ ने मुझे शाप दिया मुझे इस महान् संकट से उबारिये । आपकी कृपा से मुझे चरण प्राप्त हों ।। २६।। सूर्य बोले—निश्चय ही इस प्रसग मे मरुत् पुत्र कारण होगा जिससे कि तुम जैसे भी धर्मज्ञ और धर्मपालक व्यक्ति के क्रोध प्रविष्ट हो गया ।।२७।। बेटे समस्त शापों का प्रतिकार तो सम्भव है लेकिन माँ द्वारा शापित व्यक्ति के लिए तो कोई मोक्ष का साधन नहीं ।।२८।। यहाँ तक कि तुम्हारी माँ भी स्वयं उस शाप को नहीं मिटा सकती । पुत्र स्नेहवश मैं तुम्हारे ऊपर कुछ न कुछ कृपा अवश्य करूँगा ।।२९।। कीड़े मकोड़े माँस लेकर पृथ्वी पर गिरेंगे, तुम्हारी माँ की बात सत्य होगी, तुम उनके रक्षक बनो ।।३०।। नारद बोले ।। इसके बाद सूर्य ने छाया से पूछा—पुत्रों के एक जैसा होने पर भी तुम किसी एक के प्रति अधिक स्नेह क्यों करती हो ।।३१।। छाया उस बात पर न ध्यान देती हुई सूर्य से कुछ भी नहीं बोली तब सूर्य ने अपने तेज को समाहित करके सारे रहस्य को जान लिया ।।३२।।

तब भगवान् सूर्य क्रुद्ध होकर उसे शाप देने के लिए उद्यत हो गये ।। तब छाया ने सूर्य से सब कुछ बता दिया जैसे घटना घटी थी ।।३३।। इसके पश्चात् छाया से सारी बातें जानकर सूर्य क्रुद्ध होकर श्वसुर के पास पहुँचे उन्होंने भी यथोचित रूप में उन्हें प्रसन्न करके और क्रोध के कारण जला देने की इच्छा वाले सूर्य को धीरे धीरे शान्त किया ।।३५।। विश्वकर्मा ने कहा—तुम्हारे अत्यन्त तेज से भरे हुए इस सुदुःसह रूप को न सह पाती हुई वह संज्ञा घासों के वन में रह रही है ।।३६।। हे सूर्य ! आज आप शुभ आचरण वाली अपनी भार्या को देखेंगे जो कि आपके सह्य रूप के लिए वन मे महान् तपस्या कर रही है ।।३७।। हे देव ! यदि मुझ बड़े का वाक्य आपको अच्छा लगता है तो हे शत्रुनाशक सूर्य ! मैं तुम्हारा रूप रमणीय बना देता

हूँ ॥३८॥ सूर्य का रूप ऊपर नीचे और तिरछे एक जैसा था उस रूप से देवराज इन्द्र भी पीड़ित होते थे ॥३९॥ संतुष्ट हुए महातपस्वी सूर्य ने अपने श्वसुर की बात को बहुत महत्त्व दिया। इस प्रकार रूप सम्पादन के लिए आज्ञा पाकर ॥४०॥

विश्वकर्मा ने शाकद्वीप में सूर्य को खराद पर चढ़ाकर उनके तेज को शान्त कर दिया[1] ॥४१॥ इस प्रकार जामाता की आज्ञा से विश्वकर्मा द्वारा वह सूर्य भली भाँति काट छाट दिये गये परन्तु अपनी उस काट छांट को सूर्य ने पसन्द नहीं किया इसलिए उतार दिये गये ॥४२॥ इसके पश्चात् अपहृत किये गये तेज से निष्पन्न हुआ सूर्य का वह रूप पहले से अधिक कान्त हो गया और वे और भी अधिक शोभायमान हो गये ॥४३॥ तब उन्होंने योगवृत्ति का आश्रय लेकर अपनी भार्या बडवा को देखा जो कि अपने तेज से तिरोहित होने के कारण समस्त जीवों के लिए अदृष्ट थी ॥४४॥ अश्व का रूप धारण कर सूर्य उसके सामने संगम के लिए गये परन्तु पर पुरुष की शंका से उसने प्रतिकूल चेष्टा की ॥४५॥ उस संज्ञा ने सूर्य के वीर्य को नासिका मार्ग से बाहर निकाल दिया उसी से वैद्यों में श्रेष्ठ दोनों अश्विनी कुमार देवता पैदा हुए ॥४६॥ वे दोनों अश्विनी कुमार नासत्य और दस्र नाम से पुकारे गये तब सूर्य ने अपने मनोहर रूप का दर्शन दिया ॥४७॥ उन्हें देखकर वह संज्ञा भी अधिक संतुष्ट और प्रसन्न हुई उस वीर्य के संयोग से और भूमि के गुण से ॥४८॥

८

अश्व के समान रूप वाले शरीधन्वी कुमार उत्पन्न हुए। चूँकि वे उन सूर्य देवता की कृपा से रैतस् से उत्पन्न हुए ॥४९॥ इसलिए वे संसार में

---

१. संज्ञा-छाया आख्यान अन्य पुराणों में भी आता है—**विष्णु पु०** ३.२, **मारकण्डेय पु०** ७७ १-४२.

रैवत के नाम से ख्याति प्राप्त करेंगे ।।५०।। इसके पश्चात् मनु, यम, यमी, सावर्णी और शनैश्चर ।।५१।। तपती, दोनों अश्विनी कुमार और रैवत ये सूर्य की संतानें पृथ्वी में जहाँ तहाँ पर्यटन करने लगी ।।५२।। इस प्रकार प्राचीन काल मे उनकी पहली माँ संज्ञा दूसरी, पृथ्वी कही गयी ।। संज्ञा को ही राज्ञी और छाया को निक्षुभा कहा गया ।।५३।। राज धातु दीप्ति के अर्थ में प्रयुक्त होती है ।। राजा सदैव प्रकाशित करता है और सूर्य तो समस्त जीवों की अपेक्षा अधिक प्रकाश देता है ।।५४।। चूँकि वह अधिक प्रकाश देता है इसलिए वह राजा कहा जाता है चूँकि संज्ञा राजा की पत्नी थी इसलिए उसे राज्ञी कहा गया ।५५।। वही सूर्य पत्नी संज्ञा किस प्रकार पति द्वारा संचालित (भयभीत) कर दी गई उसका वर्णन किया जा चुका है ।। क्षुभ धातु संचालन के अर्थ में प्रयुक्त होती है इसलिए उसका नाम निक्षुभा है ।।५६।।

स्वर्गलोक में भी क्षुधा से विहीन चूँकि लोग हो जाते हैं स्वर्ग की दिव्य छाया में प्रवेश करते है इसलिए वह निक्षुभा कही गयी ।।५७।। यमराज भी मा के शाप से पीड़ित मन वाले होकर धर्म से अपनी रक्षा की इसलिए वे धर्मराज हुए ।।५८।। अपने पवित्र कर्म के कारण श्रेष्ठ द्युति को उन्होंने प्राप्त किया, पितृलोक का अधिपत्य और लोकपाल पद प्राप्त किया ५९।। उन बच्चों में जो सबसे बड़े श्राद्धदेव मनु थे उन्हीं की सृष्टि इस समय चल रही है ।। उन्हीं का यह इक्ष्वाकुवंश है जिसके अंत में राजा बृहद्बल हुए ।।६०।। मनु और यम से छोटी जो यशस्विनी कन्या यमी थी वही लोकपावनी श्रेष्ठ नदी यमुना हुई ।।६१।। महान् तपस्वी प्रजापति जो दूसरे सावर्णि मनु है वे आगे आने वाले मन्वन्तर में मनु होंगे ।।६२।। वे महाप्रभु आज भी सुमेरु पर्वत के ऊपर दिव्य तपस्या में लीन हैं। उनके भाई शनैश्चर ने ग्रह की पदवी भी प्राप्त किया ।।६३।। सावर्णि और शनैश्चर से छोटी जो सूर्य की तपती नामवाली कन्या थी वह शोभना राजा संवरण की पत्नी हुई ।।६४।।

इस प्रकार उसी से विन्ध्याचल के शिखरों से तपती नाम वाली नदी निकली। वह पवित्र सूर्य-पुत्री नित्य पुण्य जलवाली है ॥६५॥ यशस्वी दोनों अश्विनी कुमारों ने देवताओं का वैद्यत्व प्राप्त किया उन्हीं दोनों के वर्गों का आश्रय लेकर आज भी इस संसार में वैद्य लोग जी रहे हैं ॥६६॥ अप्रतिम रूप वाला सत्वशाली पवित्र जो सूर्य का रेवन्त नाम वाला पुत्र है वह शीघ्र ही प्रसन्न होता है ॥६७॥ जो उसको मार्ग में पूजित करता है वह कुशल पूर्वक मार्ग पार करता है वह मनुष्यों को अपनी कृपा से सुख देता है ॥६८॥ जो देवताओं के इस जन्मवृतांत को सुनता अथवा पढ़ता है उसके समस्त पुत्रों का तेज बढ़ता है ॥६९॥ आपत्ति आने पर भी वह मुक्त हो जाता है और महान् फल प्राप्त करता है ॥७०॥ इस प्रकार श्री साम्बपुराण में ग्यारहवाँ अध्याय[1] समाप्त होता है।

---

१. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.७९., **स्कन्द-पुराण** ७.११. **ब्रह्म-पुराण,** ३२

अध्याय १२

साम्ब ने कहा—हे देवर्षि ! आपने सूर्य के शरीर की काट छाँट का वृतांत सक्षेप में बताया हे मुनि ! मैं उसे विस्तार से सुनना चाहता हूँ मुझे बताए ॥१॥ नारद बोले—हे यदुनन्दन ! संज्ञा के मैके चले जाने पर सूर्यदेव ने अपने रुप को चाहने वाली संज्ञा की चिन्ता की ॥२॥ उन्होंने सोचा-संज्ञा पिता के घर चली गयी और इस यशस्विनी ने जो इतना बड़ा तप किया इसलिए इसका मनचाहा मनोरथ मैं पूरा करूँगा ॥३॥ इसी बीच में ब्रह्मा सूर्यदेवता के पास पहुँचकर मीठी वाणी से सूर्य को प्रसन्न करने वाली बातें बोले ॥४॥ हे सूर्य ! देवताओं के बीच तुम आदि देव हो यह मैंने समझा है तुम्हारे श्वसुर तुम्हें रूप सम्पन्न कर देंगे ॥५॥ सूर्य से इस प्रकार कहकर ब्रह्मा ने विश्वकर्मा से कहा—तुम मार्त्तण्ड के रूप को मनोहर बना दो ॥ ६ ॥ तब ब्रह्मा के आदेशवश सूर्य को यंत्र पर चढ़ाकर विश्वकर्मा ने धीरे धीरे उनका रूप सम्पादित किया ॥७॥ तब समस्त देवगणों के साथ ब्रह्मा ने वेद सम्मत नाना प्रकार की रहस्यात्मक स्तुतियों से सूर्य को प्रसन्न किया ॥८॥

हे जगन्नाथ ! वर्षा, घाम और शीत देने वाले ! हे देव देव ! हे दिवाकर ! तुम्हारा कल्याण, हो लोकों को शान्ति प्रदान करो ॥९॥ इसके बाद रूद्र और विष्णु ने भक्तिपूर्वक सूर्य की वन्दना की है ॥ हे दिवस्पते ! हे देव ! तुम्हारा काटा छाँटा गया तेज वृद्धि को प्राप्ति हो ॥१०॥ इसके बाद खरादे जाते हुए उन सूर्य देवता की स्तुति इन्द्र ने आकर की हे देव ! हे जगत्पते ! तुम्हारी निरन्तर जय हो ! जय हो ॥११॥ इसके पश्चात् सातों ऋषि विश्वामित्र को आगे करके 'स्वस्ति स्वस्ति' इस प्रकार कहते हुए

विविध स्तुतियों से वन्दना करने लगे ॥१२॥ बालखिल्यों ने वेदों में कही गयी ऋचाओं से और आशीर्वचनों से सूर्य को प्रसन्न किया—हे नाथ ! मोक्ष चाहने वालों के तुम मोक्ष हो, ध्यान चाहने वालों के तुम सदैव ध्यान-बिन्दु हो ॥१३॥ तुम्ही समस्त प्राणियों के स्वर्गलोक हो । तुम्हीं में सब कुछ प्रतिष्ठित है । हे देवेश ! हे जगत्पते ! आप प्रसन्न हों । प्रजाओं का कल्याण हो ॥१४॥ इसी प्रकार विद्याधर, नाग, राक्षस, सर्प सब हाथ जोडकर सिर झुकाकर सूर्य से ॥१५॥ मन और कानों को अच्छे लगने वाली विविध प्रकार की वाणी बोले । हे भूत भावन ! प्राणियों के लिए तुम्हारा तेज सहने योग्य हो ॥ १६ ॥

इसके बाद हा हा और हू हू नामक गन्धर्वों ने तथा नारद ने सूर्य को संतुष्ट किया और कुशल गन्धर्वों ने सूर्य का गुण गान करना प्रारंभ किया ॥१७॥ षडज, मध्यम और गन्धार घाटों में प्रवीण मूर्च्छनाओं तालों आदि के द्वारा ॥१८॥ विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सुजन्या और रम्भा अप्सराओं में श्रेष्ठ ये ॥१९॥ खरादे जाते हुए सूर्य को प्रसन्न करने के लिए नाचने लगी ॥ हावभाव और विलासो से अनेक प्रकार का अभिनय करने लगी ॥२०॥ इसके पश्चात् समस्त देवताओं के मन और कानों को सुख देने वाली अत्यंत मधुर और मादक गीत ध्वनि उठने लगी ॥२१॥ इसके पश्चात् एकतारा, वीणा, वेणु, दुर्दर, नगाड़ा, ढोरी, मृदंग, तासा ॥ २२ ॥ देव, दुन्दभी, शंख सैकड़ो और हजारो की संख्याओं में बजने लगे ॥ गाते हुए गन्धर्वों और नाचती हुए अप्सराओ के समूह द्वारा सूर्य और बाजों के घोष से सारा वातावरण कोलाहल से भर गया ॥२४॥

इसके पश्चात् समस्त पुष्पों के परागों से युक्त अन्जलियों को मस्तक पर स्थापित करके समस्त देवताओं ने प्रणाम किया ॥२५॥ इसके पश्चात् देवताओ की गमनागमन से युक्त उस कोलाहल के बीच विश्वकर्मा ने धीरे-

धीरे सूर्य के तेज की काट छाँट की ॥२६। इस प्रकार शीत, वर्षा और ग्रीष्म ऋतु के कारण बनने वाले रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु द्वारा स्तुत किये गये सूर्य देवता के स्वरूप की काट छाँट का वृतान्त पढता हुआ व्यक्ति आयु के समाप्त होने पर सूर्य-लोक जाता है ॥२७॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में बारहवाँ अध्याय[1] समाप्त होता है।

१. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.१२१., **ब्रह्म-पुराण**, ३२.८६, ९०,९३, **स्कन्द-पुराण**, ७-११.

अध्याय १३

साम्ब ने कहा—हे देवर्षि ! उस समय यंत्र के ऊपर रूप का कर्तन किये जाने पर दिवस्पति सूर्यदेव जिस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा स्तवन किये गये उसे मुझे बताइये ॥१॥ नारद बोले इसके पश्चात् विश्वकर्मा प्रसन्न अन्तरात्मा से इस स्तोत्र के द्वारा स्तुति करते हुए कर्तन करने के लिए उद्यत हुए ॥ २ ॥ विश्वकर्मा ने कहा—प्रयत्न पूर्वक शरणागतों के हितों पर अनुकम्पा करने वाले, पवन के समान स्फूर्ति वाले, सात अश्वों वाले कमलसमूहों को प्रफुल्लित करने वाले, अंधकार समूह के पर्दे को फाड़ देने वाले ऐसे सूर्य को नमस्कार है ॥ ३ ॥ पवित्र, निष्पाप, पुण्यकर्म करने वाले अनेक इच्छाओं को परिपूर्ण करने वाले, कान्ति युक्त निर्मल किरणों की माला वाले तथा समस्त लोकों का हित करने वाले सूर्य को नमस्कार है। अजन्मा, त्रैलोक्य के कारणभूत, जीवों के आत्मस्वरूप, किरणों के स्वामी 'वृष' करुणा करने वालों में अत्यंत श्रेष्ठ, सबके जन्मदाता सूर्य को नमस्कार है। ज्ञानियों के अन्तरात्मा स्वरूप, संसार की प्रतिष्ठा स्वरूप, संसार के हितैषी स्वयं समग्र लोकों के नेत्रस्वरूप, अपरिमेय तेज वाले श्रेष्ठ देवता विवस्वान को नमस्कार है। हे देव ! उदयाचल ने मौलिमणि देव समूह द्वारा वन्दनीय, संसार के कल्याणकर्त्ता विशाल हजारों किरणों से युक्त शरीर वाले आप अन्धकार का भेदन करते हुए सुशोभित होते हैं। अंधकार रूपी मदिरा पान के मद से तुम्हारे शरीर में लाली छा जाती है। हे सूर्य ! इसी कारण से त्रैलोक्य पर कृपा करने वाली तीखी किरणों से तुम अत्यधिक सुशोभित होते हो ॥८॥

हे भगवन ! आप विधिपूर्वक कल्पित की गई भूमि के कारण रमणीय रथ पर बैठकर सुडौल अंगों वाले तथा कभी न थकने वाले अश्वों द्वारा जगत के कल्याणार्थ पर्यटन करते रहते हैं ॥६॥ अमृत और सुधा आदि के रस के साथ सुरगणों और भूतगणों के साथ शुक्र के समान वर्ण वाले अश्वों से युक्त आपका रथ एक ही साथ तीनों लोकों में पर्यटन करता है ॥१०॥ हे त्रिभुवन पावन ! हे सूर्य ! पवित्रतम तुम्हारे चरणों की धूलि शरण में आए हुए मुझको रक्षित करे जिससे कि मैं विविध रोगों के कष्टों से निरन्तर मुक्त हो जाऊँ ॥११॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में १३वाँ अध्याय[1] समाप्त होता है।

---

१. तुलना कीजिए, **भविष्य-पुराण**, १.१२२; **स्कन्द-पुराण** (प्रभास खण्ड) १ ११ और १२

अध्याय १४

साम्ब ने कहा कि हे देवर्षि ! सूर्य से संबंधित कथा आप मुझे फिर बताएं, इस पवित्र कथा को सुनते हुए मैं तृप्ति नहीं प्राप्त कर पा रहा हूं । ॥१॥ नारद बोले— हे साम्ब ! समस्त पापों को विनष्ट करने वाले सूर्य की दिव्य कथा को तुमसे कहूंगा जो लोकों को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा द्वारा पहले कभी कही गई थी ॥२॥ सूर्य की किरणों से संतप्त होकर अज्ञान के कारण मूढ़ बनकर ऋषियों ने ब्रह्म-लोक में पितामह ब्रह्मा से पूछा ॥३॥ ऋषियों ने कहा—हे प्रभो ! दीप्तिमान महातेजस्वी अग्नि-ज्वाला के समान प्रभावाला यह कौन है और इसका जन्म किससे हुआ है हम यह जानना चाहते हैं ॥४॥ ब्रह्मा बोले—हे ऋषिगण ! (प्रलय काल में) चराचरमय समस्त जीवों के विनष्ट हो जाने पर गुणों का वैषम्य होने पर सर्वप्रथम बुद्धि तत्त्व उत्पन्न हुआ।[1] ॥५॥ उस बुद्धि से पंचमहाभूतों को प्रवर्तित करने वाला अहंकार तत्त्व पैदा हुआ । वे पांच तत्त्व थे वायु, अग्नि, जल, आकाश और पृथ्वी । इन पंचमहाभूतों से अण्डा पैदा हुआ, उसी अंडे में यह सातों लोक सम्प्रतिष्ठित है, सातों द्वीपों से और सातों समुद्रों से युक्त पृथ्वी उसी में विद्यमान थी ॥७॥ उसी अण्डे में मैं, विष्णु और शंकर सबके सब अंधकार राशि से विमूढ़ बनकर परमेश्वर का ध्यान करते हुए अवस्थित थे ॥८॥

इसके पश्चात् अंधकार को फाड़ देने वाला एक अचिन्तनीय महान् तेज प्रादुर्भूत हुआ । हम लोगों ने तब ध्यान-योग से समझा कि यही सविता देवता

---

१. यहाँ सृष्टि की उत्पत्ति सांख्य सिद्धान्त के आधार पर बतलाई गई है द्रष्टव्य चटर्जी एवं दत्त, **भारतीय दर्शन**, पृ० २६.

है ॥१०॥ हम सबने उन्हें परमात्मा जानकर दिव्य स्तुतियों से अलग अलग वन्दनाएं की। हे सूर्यदेव ! आप देवताओं में प्रथम देवता है, ऐश्वर्य के कारण आप ईश्वर हैं। प्राणियों के आदि कर्त्ता हैं, देवताओं के देव और दिन उत्पन्न करने वाले हैं ॥११॥ आप देव, गन्धर्व, राक्षस, मुनि, किन्नर, सिद्ध, सर्प, पक्षी, समस्त प्राणियों के जीवन है ॥१२॥ हे प्रभो ! आप ब्रह्मा है, शंकर है, जगत्पति विष्णु हैं। आप वायु, इन्द्र, सोम, विवस्वान और अरुण हैं ॥१३॥ हे प्रभो ! आप काल है, सृष्टि के विनाशक हैं, सृष्टि कर्त्ता हैं, सृष्टि के पालक तथा उसके स्वामी हैं। नदियां, समुद्र, पर्वत विद्युत, इन्द्रधनुष ॥१४॥ प्रलय, सृष्टि व्यक्त, अव्यक्त, सनातन और ईश्वर से भी श्रेष्ठ विद्या और विद्या से भी श्रेष्ठ शिव ॥१५॥ शिव से भी अधिक श्रेष्ठ देवता परमेश्वर आप ही हैं ॥१६॥

हे नाथ ! आप चतुर्दिक हाथ पैर से युक्त हैं, चतुर्दिक आँख, शिर और मुख से युक्त हैं, चतुर्दिक कानों से युक्त हैं और सब कुछ समेटकर इस लोक मे आप विद्यमान है ॥१७॥ आप सहस्र किरणों वाले, मुखों वाले, सहस्र चरणों और नेत्रों वाले, जीवों के उद्गम-बिन्दु, भूलोक, भुवलोंक, स्वर्लोक, महा लोक, सत्यलोक, तपोलोक और जनलोक सब कुछ हैं ॥ १८॥ हे नाथ ! प्रदीप्त प्रकाशित करने वाला, समस्त लोकों को उद्भासित करने वाला, श्रेष्ठ देवताओं द्वारा भी न देखा जा सकने योग्य अथवा आपका जो दिव्य रूप है उस रूप वाले आपको नमस्कार है ॥१९॥ हे प्रभो ! देवताओं और सिद्धगणों द्वारा प्रसन्न किया गया भृगु, अत्रि और पुलह आदि ऋषियों द्वारा स्तवन किया हुआ आपका जो श्रेष्ठ अव्यक्त रूप है उस रूप को नमस्कार है ॥२०॥ हे प्रभो ! जो निरन्तर वेदज्ञानियों द्वारा जानने योग्य है, समस्त ज्ञानों से समन्वित है, ऐसे समस्त देवता आपको नमस्कार है ॥२१॥ हे सूर्य ! विश्व की सृष्टि करने वाला, विश्व का वैभव स्वरूप, अग्नि और देवताओं द्वारा समर्चित ऐसा जो अचिन्तनीय आपका विश्वरूप है उस रूप वाले आपको नमस्कार है ॥२२॥ जो वेदों से श्रेष्ठ है, जो यज्ञों से श्रेष्ठ है,

जो द्युलोक से श्रेष्ठ है जो परमात्मा के नाम से विख्यात है, ऐसे रूप वाले आपको नमस्कार है ॥२३॥ जो जानने योग्य नहीं है जो दिखाई पड़ने योग्य नही है, जो आत्मा द्वारा ही प्राप्त करने योग्य है, जो अविनश्वर है और आदि-अन्त से विहीन है ऐसे रूप वाले आपको नमस्कार है ॥२४॥

कारणों के भी कारण, पापनाशक, वन्दना किये गये व्यक्तियों द्वारा भी वन्दित, दुखनाशक आपको नमस्कार है ॥२५॥ समस्त अभीष्ट धन-सम्पत्ति को प्रदान करने वाले, समस्त सुखों और समस्त वृद्धियों को प्रदान करने वाले, आपको वारम्बार नमस्कार है ॥२६॥ इस प्रकार तेजस्वी रूप में अवस्थित भगवान सूर्य इन स्तुतियों को सुनकर कल्याणमयी बात बोले—आप लोगों को कौन वर दूँ ॥२७॥ ब्रह्मा बोले—हे प्रभो! आपका अत्यन्त तेजस्वी रूप कोई व्यक्ति नहीं सह पाता है ॥ अतएव संसार के कल्याणार्थ यह तेज सहने योग्य हो जाये ॥२८॥ भगवान भास्कर भी 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर संसार की कार्य सिद्धि के लिए ग्रीष्म, वर्षा और शीत दाता बन गये ॥२९॥ इसीलिए सांख्य के ज्ञानी, योगी और अन्य मोक्ष की आकांक्षा करने वाले ध्यानी लोग निरन्तर हृदय में विद्यमान सूर्य का ध्यान करते हैं ॥३०॥ समस्त लक्षणों से हीन होने पर भी समस्त पापों से युक्त होने पर भी सूर्य देवता का आश्रय लेकर सभी पाप पार कर लेते हैं ॥३१॥ यज्ञ, याग, चारों वेद और प्रभूत दक्षिणा वाले यज्ञ सूर्य की भक्ति से और उन्हें नमस्कार करने मात्र से उसके सोलहवें भाग की भी बराबरी नहीं कर पाते ॥३२॥

जो तीर्थों से भी सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है, जो मंगलों का भी मंगल है, जो पवित्रों का भी पवित्र है, ऐसे सूर्य की शरण में मैं जाता हूँ ॥३३॥ इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा स्तवन किये गये सूर्य को जो नमस्कार

करते है वे समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक को जाते हैं ॥३४॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में ब्रह्मभाषितस्तवनामक चौदहवाँ अध्याय[1] समाप्त हो गया ।

---

१. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.१२३. १-१९, २१ ब, २२, २३ ब-३४.

अध्याय १५

साम्ब ने कहा—हे देवर्षि ! देवताओं अथवा ऋषियों द्वारा सूर्य के शरीर को काट छाँट की क्रिया कैसे प्रस्तावित की गई यह आप मुझे बतायें ॥१॥ नारद बोले —ब्रह्मलोक में सुखपूर्वक बैठे हुए ब्रह्मा से देवताओं और राक्षसों को साथ लिए हुये ऋषियों ने सावधान होकर कहा ॥२॥ हे भगवन ! यह जो अदिति का पुत्र महान तपस्वी, तीव्र तेज वाला, मार्त्तण्ड नाम से विख्यात अन्तरिक्ष लोक में विद्यमान है। ३॥ इसके तेज से चराचरमय सम्पूर्ण संसार क्लेश पा रहा है, आक्रन्दन कर रहा है, हे प्रभो ! इसकी उपेक्षा आप कैसे कर रहे हैं ? ॥४॥ हम लोग भी उस सूर्य के तेज से सम्प्रमोहित होकर शंकाग्रस्त बनकर द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में शान्ति नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं ॥५॥ ऐसा कहे जाने पर भगवान ब्रह्मा ने कहा—हम सब एक साथ मिलकर उसी देवता की शरण में चलें ॥६॥ इसके पश्चात् उदय-बिन्दु बनने वाले पर्वतराज (सुमेरु) के अलंकारस्वरूप उन सूर्य की प्रजापतियों के साथ सब देवता स्तुति करने लगे ॥७॥ ब्रह्मा[1] बोले—सुरों में श्रेष्ठ, तीक्ष्ण तेज वाले, भक्तों के कल्याणार्थ कृपा करने वाले, सूर्य को नमस्कार है। त्रैलोक्य के प्राणियों पर कृपा करने वाले, यज्ञ-कर्मों के शुभ फलों को प्रदान करने वाले, सूर्य को बारम्बार नमस्कार है ॥८॥

शुभ और अशुभ समस्त करणीय कार्यों के साक्षीभूत, सहस्त्र किरणों वाले सूर्य देवता को नमस्कार है। श्रेष्ठ सात अश्वों से युक्त पक्षिस्वरूप

---

१ ब्रह्मा द्वारा सूर्य के स्तुति की कथा अन्य पुराणों में भी आती है दृष्टव्य **मारकण्डेय पुराण**, १०३.६ तुलना कीजिए **भविष्य पु०** १.१२३.

और अटल रश्मियों से सम्बद्ध ऐसे तुम्हें नमस्कार है ।।९।। बालखिल्यो अप्सराओं, किन्नरों, सर्पो, सिद्धों, गंधर्वों, पिशाचो, गुह्यको, यक्षों, राक्षसो और श्रेष्ठ चारणों से संचालित सत्कारपूर्वक वन्दित ऐसे तुम सूर्य देवता को नमस्कार है ।।१०।। हे प्रभो । जो आप ताप, शीत और जल की सृष्टि द्वारा प्राणियों के शरीर में रसों की सृष्टि करते हैं और जो आप समुद्रो सहित समूचे संसार का शोषण करते हैं ऐसे श्रेष्ठ वेदों के द्वारा नमन किए गए आप भास्कर को नमस्कार है ।।११।। अंधों, गूगों, बहरों, दाद, कोढ से युक्त और कीड़ों से बिलबिलाते हुए घाव वाले मनुष्यों को जो आप पुन: नवीन बना देते हैं ऐसे न दी हुई वस्तु को देने वाले महाकारुणिक आपको नमस्कार है ।।१२।। हे प्रभो ! जो उदर में आपकी कोमल ज्योति विद्यमान है जो जलराशियों में तेज है और जो नेत्रों में ज्योति के अग्नि में तथा आकाश में जो गर्मी है यह सब आपका ही एक रूप अनेक रूपों से विद्यमान है ।।१३।। हे नाथ ! सागर जल में निवास करने वाले भंयकर पशु, तलवार, परशु आदि आयुधो वाले तथा पापमय चित्त वाले जो सुर-द्रोही उठ खड़े होते हैं आपके दर्शन मात्र से विनष्ट हो जाते हैं ।।१४।। इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा वन्दित होने पर और उनके मन की बात जान बूझकर भगवान सूर्य ने यह बात कही ।।१५।। हे देवगणों ! जो कल्याण करने वाली है, जो रहस्यमय हो, और जो श्रेष्ठ गायत्री वचन के समान हो, ऐसी बात मुझे बताओ मैं अपने आप शीघ्रतापूर्वक क्या करू ? ।।१६।।

इसके पश्चात वे देवगण आज्ञा प्राप्त करके प्रसन्न मन होकर मन, वचन और कर्म से त्वष्टा की पूजा करने लगे ।।१७।। इसके पश्चात् समस्त लोकविधान को जानने वाले विश्वकर्मा[1] ने तेजोराशि विभावसु सूर्य को खराद यन्त्र के ऊपर स्थापित किया ।।१८।। विश्वकर्मा ने धीरे धीरे अमृत

१. अन्य पुराणों में भी यह आख्यान आता है देखिए **मारकण्डेय-पुराण**, ७७, **विष्णु-पुराण**, ३.२.

से नहलाए जाते हुए वैतालिकों द्वारा स्तुति किये जाते हुए सूर्य के तेज का कर्तन किया ॥१९॥ देवताओं, राक्षसों और महासर्पों द्वारा घुटने पर्यन्त खरादे जाने पर सूर्य ने उस कर्तन-कर्म को पसन्द नहीं किया इसलिए यन्त्र से नीचे उतर आये ॥२०॥ उसी समय से सूर्य देवता के दोनों चरण[1] निरन्तर संवृत हो गए और उनका हृदय तेज से युक्त हो गया ॥२१॥ उन सूर्य देवता के काटे गए तेज से ही चक्र का निर्माण किया गया। उसी चक्र से विष्णु ने अत्यन्त तेजस्वी आततायी दानवों को मारा ॥२२॥ सूर्य के उसी काटे गए तेज से शूल, शक्ति, गदा, चक्र, धनु और फावड़ा इत्यादि बनाकर महामति विश्वकर्मा ने देवताओं को दिया ॥२३॥ ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए स्तोत्र को दोनों संध्याओं में जपता हुआ व्यक्ति अपने वंश को पवित्र करता है और रोगों से पीड़ित नहीं होता ॥२४॥

ऐसा व्यक्ति संततियुक्त, सिद्धकर्मा, पुण्यवान, धनवान और सर्वत्र अपराजित बनकर १०० वर्ष से भी आगे जीवित रहता है ॥२५॥ और प्राण-संघात नष्ट होने पर पवित्रलोक प्राप्त करता है। इस प्रकार श्री साम्बपुराण में ब्रह्मकृत स्तोत्र नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त होता है।

१. ईरानियन प्रभाव के कारण सूर्य देवता के चरणों को उपानत-युक्त बनाया जाता था इसी ऐतिहासिक तथ्य को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने के दृष्टिकोण से यह आख्यान बनाया गया था। देखिए बनर्जी जे० एन०, मिथ्स एकसप्लेनिंग सम एलियन ट्रेट्स आफ दी नार्थ इण्डिन सन आइकन्स, **इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली**, भाग २८.

अध्याय १६

नारद बोले—अब इसके बाद मैं दण्डनायक, पिंगल, दोनों द्वारपाल और दिण्डि-सहित अन्यान्य पास रहने वाले अनुचरों[1] की बात बताऊँगा ॥१॥ प्राचीन काल में ब्रह्मा के साथ मिलकर देवताओं ने विचार किया कि करुण स्वभाव वाले सूर्य अकेले ही दैत्यों को वर प्रदान कर देते हैं ॥२॥ वे दैत्य वर प्राप्त करके स्वर्गवासी देवों को कष्ट देते हैं अस्तु उनके विनाशार्थ हम सूर्य से प्रार्थना करेंगे ॥३॥ हम लोगों द्वारा रोके जाने पर वे राक्षस सूर्य को नहीं देख पाएंगे। इस प्रकार परामर्श करके इन्द्र सूर्य की बाईं ओर स्थित हो गया ॥४॥ उसका नाम दण्डनायक हुआ, वह समस्त लोकों का स्वामी हुआ और सूर्य ने उससे कहा—तुम प्रजाओं के दण्डनायक हो ॥५॥ चूँकि तुम दण्डनीति का निर्माण करने वाले हो इसलिए तुम दण्डनायक हो। वही दण्डनायक प्राणियों के पुण्य और पाप का लेखा-जोखा रखता है ॥६॥ सूर्य के दक्षिण भाग में अग्नि खड़े हो गए और पीतवर्ण होने के कारण उनका नाम पिंगल हुआ। दोनों अश्विनीकुमार भी सूर्य के दोनों बगल खड़े हो गए चूँकि वे अश्व के रूप में उत्पन्न हुए थे इसलिए उन्हें अश्विन कहा गया ॥७॥ उन राजा सूर्य के पूर्वी द्वार पर दो महाबलशाली तथा राजा को प्रसन्न करने वाले द्वारपाल खड़े हुए[2]। एक तो कार्त्तिकेय थे और दूसरे शंकर ॥८॥

---

१. सूर्य के अनुचरों के विवरण के लिए देखिए **विष्णुधर्मोत्तर-पुराण**, ३.६७.२-६. **भविष्य-पुराण**, १.१२४।

'राज्' धातु दीप्ति के अर्थ में प्रयुक्त होती है और नकार इसका प्रत्यय है चूँकि यह देवताओं का सेनापति है और प्रकाश करता है इसलिए वह कार्त्तिकेय नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।९।। 'तुम्' गमन के अर्थ में प्रयुक्त होती है और स उसका प्रत्यय है चूँकि यह गमन करता है, दौडता रहता है इसलिए इसे 'तोष' कहा गया ।।१०।। ये दोनों द्वारपाल द्वार को जटिल और अनुल्लंघनीय बनाकर खड़े रहते है । पक्षियों के प्रेताधिप नाम से कल्माष पक्षी कहे गए ।।११।। रंग चितकबरा होने के कारण वह कल्माष कहा जाता है चूँकि उसके और पंख है इसलिए वह पक्षी है गरुड नाम से विख्यात है ।।१२।। सूर्य की दाहिनी दिशा में माठर सहित जान्दकार अवस्थित रहता है । जान्दकार ही चित्रगुप्त है और माठर को ही काल कहा जाता है ।।१३।। महामति चित्र-गुप्त निरन्तर यम देवता का कार्य करने वाला है अर्थ को ही 'जान्द' कहा गया है इसीलिए चित्रगुप्त का दूसरा नाम जान्दकार है ।।१४।। चूँकि इसका निवास निरन्तर दक्षिण दिशा में ही होता है और 'मठ्' धातु का प्रयोग निवास के अर्थ में होता है इसीलिए काल को 'माठर' कहते है ।।१५।। सूर्य के पश्चिम और 'प्राप्नुयान' और 'क्षुताप्' विद्यमान रहते है । क्षुताप को ही वरुण समझना चाहिए और प्राप्नुयान को सागर ।।१६।।

सूर्य के उत्तर और विनायक सहित कुबेर रहते हैं । कुबेर को धन समझना चाहिए और हाथी के आकार वाले विनायक है ।।१७।। सूर्य की पूर्व और रेवन्त और दिण्डि दोनों रहते हैं । उन दोनों में से दिण्डि को ही रुद्र मानना चाहिए और रेवन्त सूर्य के पुत्र हैं ।।१८।। इस प्रकार ये सूर्य के सेवक वर्णित किए गए । अब इनकी संख्या मुझसे समझ लो माठर, जान्दकार धनद , विनायक ।।१९।। प्राप्नुयान्, क्षुताप्, दो कल्माप पक्षी, दो अश्विनी कुमार, दण्डनायक, पिंगल ।।२०।। दो द्वारपाल, रेवन्त, दिण्डि इस प्रकार कुल इतने सूर्य के अनुचर बताए गए हैं ।।२१।। संक्षेप में इनकी संख्या १८ बताई गई है । इस प्रकार वे स्तवन करने योग्य नामों से युक्त दानवों के विनाशार्थ नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होकर सूर्य को घेर कर खड़े

रहते हैं।।२२।। इसी प्रकार सुन्दर रुप वाले, अन्य रूप वाले, बिगड़े हुए रूप वाले, मनचाहा रूप धारण करने वाले और सूर्य के रूप वाले देवगण सूर्य को घेरकर स्थित रहते है ।।२३।। ऋचाएं यजुष्, और साम जो वाङ्मय में कही गई हैं वे सबकी सब नाना रूपों से सूर्य के चारों ओर खड़ी रहती हैं ।।२४।।

नारद बोले, "अब इसके बाद मैं एक बार फिर सूर्य के समस्त अनुचरो में प्रधान दिण्डि के विषय में बताऊँगा जो कि नग्नरूप में ही आकाश मे रहता है। यहाँ पर रुद्र ही दिण्डी कहे जाते हैं ।।२५।। प्राचीन काल में ब्रह्मा के शिर को काटकर शंकर उस शिरः कपाल को लेकर नग्न रूप में ही प्रभूत जल वाले फूलों और फलों से भरे ऋषियों के दारुवन में पहुँचे ।।२६।। भगवान शंकर को उस भिक्षुक के रूप में देखकर क्षुब्ध हुई स्त्रियाँ विकल होकर भाग गईं और अपनी उन स्त्रियों के क्षुब्ध हो जाने पर अत्यधिक क्रुद्ध होकर मुनियों ने शंकर पर प्रहार करना प्रारम्भ किया ।।२७।। हाथ में ढेला और डन्डा लिए हुये उन समस्त ऋषियों द्वारा मारे जाते हुए भगवान शंकर उस देश को छोड़कर सूर्यलोक में चले आए ।।२८।। उन्हें आता हुआ देखकर सूर्यलोक के प्रवरों ने कहा—स्वामी। आप किस लिए निरन्तर भ्रमण कर रहे हैं? शंकर ने कहा—मारे गए लोगों के द्वारा प्राप्त पाप मिटाने के लिए तीर्थों और देवताओं के लोकों में पर्यटन कर रहा हूँ ।।२९।। सूर्य के उन सेवकों ने पुनः शंकर से कहा—आप यहीं सूर्य के समक्ष खड़े हो जाय। भगवान सूर्य आपको यहाँ शुद्धि कर देंगे और तब निष्पाप होकर आप रुद्रलोक चले जाइयेगा। सूर्य के सेवकों द्वारा इस प्रकार समझाए जाने पर नग्न, जटायुक्त हाथ में यष्टि और कपाल लिये हुए इस प्रकार त्रिलोक में अद्वितीय रूप वाले रुद्र[1] वहाँ लोकनाथ सूर्य के समक्ष खड़े हो गए ।।३१।। उन्होंने

---

१. यहाँ पर कापालिक रूप में शिव का उल्लेख किया गया है। दृष्टव्य डैविड एन० लोरेन्जन, **दी कापालिकाज ऐन्ड कालामुखाज** १९७२. पृ० ७७-८०, **मत्स्य-पुराण**, १८३.८३-१०८ में यह पौराणिक कथा पाई जाती है तथा अन्य पुराणों में भी यह कथा सुरक्षित है।

सूर्य देवता को प्रसन्न किया। तब सूर्य देव ने कहा—तुम्हारे वचनामृत से मैं प्रसन्न हूं। मेरे दर्शनमात्र से आप विशुद्ध हैं और अब संसार में आप दिण्डि नाम से प्रसिद्ध होंगे ॥३२॥

अब आप अत्यन्त पवित्र पापनाशक लौकिक नाम वाले अपने स्थान को जायें। कपाल का त्याग करके वहाँ आप निरन्तर विशुद्ध मूर्त्ति होकर मेरे साथ रहेंगे ॥३३॥ इस प्रकार ये सूर्य के १८ मुखियाँ हैं और अन्य १४ सेवक अधोलोक में हैं उनमें से दो देवता हैं, दो मुख्य ऋषि हैं, दो अनन्त प्रभाव वाले गन्धर्व और सर्प हैं, दो यक्ष हैं, दो राक्षस हैं और दो वरिष्ठ अप्सराएं हैं जो कि इस लोक में, आकाश मे, जल में और सूर्य मे निवास करते हैं। इनका समूह १४ का है। इस प्रकार श्री साम्बपुराण में सोलहवाँ अध्याय[1] समाप्त होता है।

[1]. प्रथम अध्याय से लेकर इस अध्याय तक की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य मानी जाती है देखिए हाजरा, आर० सी०, दी साम्ब-पुराण थ्रू दी एजेस्, **जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी, लेटर्स**, भाग १८ (२)

अध्याय १७

नारद बोले—हे साम्ब ! उदयाचलवासी भगवान सूर्य को शिर से प्रणाम करके अब तुम दिण्डि द्वारा प्रस्तुत किये गये सूर्य के इस महास्तव को सुनो[1] ॥१॥ (दिण्डि ने सूर्य की स्तुति की) मैं भक्तिपूर्वक समस्त पापों का नाश करने वाले भगवान सूर्य की शरण में जाता हूँ, मैं देवताओं, दानवों, यक्षों, ग्रहों और नक्षत्रों ॥२॥ के तेज से भी अधिक तेज वाले सूर्य की शरण मे जाता हूँ । इस प्रकार कहकर भगवान शकर ध्यान-मग्न हो गये॥३॥ ध्यान के सहारे मन ही मन अपनी वास्तविक मूर्ति का स्मरण करके शंकर ने अंधकार नाश करने वाले रश्मिमाली भगवान सूर्य को वचनों से संतुष्ट किया ॥४॥ (मैं इन भगवान प्रभाकर की शरण में जाता हूँ) जो द्युलोक में स्थित है। किरणों के अग्रभाग से दसों दिशाओं को प्रकाशित कर रहे है, जो अपनी मरीचियों से पृथ्वी और अंतरिक्ष को व्याप्त कर रहे हैं, जो आदित्य, भास्कर, सूर्य, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा स्वरभानु, और प्रदीप तेज वाले हैं ॥६॥ जो चारों युगों का अंत करने वाले कालाग्नि हैं दुप्रेक्ष्य हैं, प्रलय मचाने वाले हैं, योगेश्वर, अनन्त, लाल पीले वर्ण वाले और श्वत कृष्ण वर्ण वाले हैं ॥७॥ जो ऋषिओ के अग्निहोत्रो में, यज्ञों में, और वेदों में संरक्षित है, जो अविनाशी है, परम गोपनीय हैं, मोक्षद्वार और श्रेष्ठ देवता हैं ॥८॥

---

१. यह अध्याय ६५० ई० के उपरान्त प्रक्षिप्त किया गया, हजारा, वही

जो अश्व रूप धारण करने वाले आकाशचारी छन्दों द्वारा एक ही बार जुड़कर उदय और अस्त क्रिया में युक्त हैं और सदैव सुमेरु की प्रदक्षिणा में रत है ॥९॥ जो अमृत तुल्य सत्य है, पवित्र तीर्थ हैं, अपने ढंग के अकेले हैं, विश्व की स्थिति और अचिन्तनीय है ॥१०॥ हे सूर्य देव ! तुम ब्रह्मा हो, तुम महादेव हो तुम विष्णु हो, तुम प्रजापति हो, तुम्हीं वायु आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत और समस्त समुद्र हो ॥११॥ हे देव ! तुम्ही नवग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और महौषधि हो, व्यक्त जीवों में तुम्ही धर्म के प्रवर्तक हो ॥१२॥ हे देव ! तुम्हारे दर्शन मात्र से मैं ब्रह्म-हत्या से मुक्त हो गया और अब अपनी ज्ञान-चक्षु से तुम्हारे प्रकाशमय दिव्यरूप को देख रहा हूं ॥१३॥ बढ़ती हुई सी प्रदीप्त किरणों से लोगों को प्रकाशित करते हुए और ईश्वरीय विभूति को धारण करते तुम दिखाई पड़ रहे हो ॥१४॥ इस प्रकार वन्दना किये जाने पर देवर्षि देव सूर्य ने संतुष्ट होकर उन शंकर से कहा—ज्ञान ऐश्वर्य मोह नश्वर और अनश्वर कल्पनाएँ ॥१५॥ महातत्त्व, सूक्ष्मतत्त्व समस्त प्राणियों में निवास से सबके सब तत्त्व मुझमें और आप में बराबर है जो मैं हूं वही आप भी हैं ॥१६॥

ब्रह्मा, शंकर और विष्णु की जो मूर्ति है वह एक ही पुरुष के रूप में परिवर्तित होकर जगत कल्याण करती है ॥१७॥ इस महाज्ञान को जान कर और मुझको अपना ही शरीर समझकर हे देव ! आप अब यहीं रहे ब्रह्म हत्या से आप मुक्त हो गये हैं ॥१८॥ अविमुक्त होकर यहां पहुँचकर जो आप पाप से मुक्त हो गये हैं इसलिये यह क्षेत्र अविमुक्त क्षेत्र के नाम से पुकारा जायेगा ॥१९॥ इस क्षेत्र में एक कोस के इर्द गिर्द जो मनुष्य है, उनमें जो हम दोनों को प्रणाम करेंगे वे निष्पाप हो जायेंगे ॥२०॥ हमारे और आपके

---

१. अविमुक्त (वाराणसी) की महत्ता के लिए देखिए **मत्स्य० पु०** १८३-१८४.

इस पवित्र वार्तालाप को पढते और सुनते हुए व्यक्ति पाप से और महान संकट से मुक्त हो जायेंगे ॥२१॥ उनकी आँख की पीड़ा, मन की पीड़ा, ग्रहों की पीड़ा एक ही जप करने से शान्त हो जायेगी और दुःस्वप्नों का शमन होगा ॥२२॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में माहेश्वर-स्तोत्र[1] नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त होता है।

---

१. यहाँ पर सूर्य और शिव की एकात्मकता प्रकट की गई है। द्रष्टव्य श्रीवास्तव, विनोद चन्द्र, सन-वरशिप इन बालि-ए हाइपोथीसिस, **पुराणम**, (जनवरी १९७५) भाग १७-१. पृ० ६७-६८.

अध्याय १८

नारद बोले अब मैं तुम्हें आकाश के विषय में बताऊँगा जहाँ और जैसे यह उत्पन्न हुआ, हिरण्यगर्भ के अण्डे में जो छोटा सा गर्भ नाम वाला स्थान था ॥१॥ उसी में यह दिव्य आकाश उत्पन्न हुआ इसके पश्चात् विशाल स्वर्णमय चतुर्मुख विशाल आकार वाला ॥२॥ चार शृंगों वाला और देवताओं का आश्रयभूत यह सुमेरु पर्वत उत्पन्न हुआ ॥ (पद्मरूपी कमलपत्र) के समान पृथ्वी उत्पन्न हुई और उसका अवलम्ब यह चार सींगों (शिखर) वाला मेरु पर्वत हुआ ॥३॥ उसी पर दोनों शृंगों के अग्रभाग को रखकर सूर्य ने रथ अभिमुख किया और समस्त देवताओं से घिरा हुआ इस पर्वत की परिक्रमा करने लगा ॥४॥ उस मेरु पर्वत पर यज्ञ करने वाले तैंतीस देवता रहते हैं उनमें से ग्यारह रुद्र समझना चाहिए और बारह आदित्य उसी प्रकार आठ वसु हैं और दो अश्विनीकुमार। वसुओं को ही पिता कहते हैं, रुद्रों को ही पितामह कहते हैं ॥६॥ और आदित्यों को प्रपितामह और अश्विनीकुमारों को ही सूर्य का शरीर कहते हैं। ऋतुओं, संवत्सरों और ऋतुओं के अनुकूल उत्पन्न होने वाले पितरों को पुनः मैं आगे बताऊँगा ॥७॥ अब इसके उपरान्त हव्य खाने वाले इन देवताओं के नाम मुझसे अलग अलग सुनो। अजएकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा, वीर्यवान् रुद्र ॥८॥

हर, सर्व, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत ॥९॥ और ईश्वर ये ग्यारह रुद्र बताए हैं। आदित्यों के नाम दस प्रकार हैं, कि विष्णु, वीर्यवान शक्र ॥१०॥ अर्यमान धाता, मित्र, वरुण विवस्वान् सविता, पूषा,

त्वष्टा, ॥११॥ अंशु, भग और अत्यन्त तेजस्वी आदित्य ये बारह हैं ॥ धर, ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, ॥१२॥ प्रत्यूष और प्रभाल ये आठ वसु बनाए गए हैं। नासत्य और दस्र ये दो अश्विनी देवता बताए गए हैं। अब विश्वदेवों को बता रहा हूँ, नाम से उनको मुझसे समझ लो-क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धुरि, लोचन, आर्द्रव और पुरूरव ये दस हैं ॥१४॥ ये देवगण मन्वन्तरों में वर्तमान हैं इसे सुन लो-याम्य, तुषित तथा वशवर्ती ॥१५॥ सत्य, भृत, रजस और तदन्तर साध्य पहले कहे हुए मन्वन्तरों में ही ये बारह बारह देवता होंगे ॥१६॥

पारावत तथा अन्य साध्य और तुषित सहित। साध्य देवों को अब मैं कहूँगा और नाम से उन्हें जान लो ॥१७॥ मनु, अनुमन्ता, प्राण, नर, नारायण, वृत्ति, तपोहय, हंस, धर्म, ॥१८॥ वीर्यवान, विभु, प्रभु—ये बारह साध्य[1] देवता कहे जाते हैं ॥ इस प्रकार यज्ञ खाने वाले देवगण निरन्तर यज्ञ में प्रतिष्ठित होते हैं ॥१९॥ अब अतीत और वर्तमान देवों को पुनः मुझसे समझ लो। आदित्य, मरुत और रुद्र कश्यप की संताने बताई गई हैं ॥२०॥ विश्व में (आठों) वसु और (बारहों) साध्य देवता ये धर्म के पुत्र बताये गये हैं। इसी प्रकार धर्म का पुत्र सोम तीसरा वसु कहा जाता है ॥२१॥ पुराणों में धर्म को भी ब्रह्मा का पुत्र बताया गया है अब इसके बाद इन्द्रों और मनुओं की जानकारी नामतः मुझसे कर लो ॥२२॥ पहले स्वायम्भुव मनु हुए, इसके बाद स्वारोचिष और इसके बाद उत्तम का पुत्र, तामस, रेवत का पुत्र और चाक्षुष ॥२३॥ इस प्रकार ये छः मनु पहले व्यतीत हो चुके हैं, इस समय सातवें मनु का समय है जिनका कि नाम

१. दिव्य प्राणियों का एक विशेष वर्ग तुलना कीजिए **मनुस्मृति**, १.२२, ३.१५.

वैवस्वत[1] है अभी और सात आगे होंगे ॥२४॥

इन सातों में से प्रथम होंगे सूर्यसावर्णि, इसके बाद ब्रह्मसावर्णि, फिर भवसावर्णि और उसके बाद धर्मसावर्णि ॥२५॥ पाँचवे मनु दक्षसावर्णि होंगे। इस प्रकार यह पाँच मनुसावर्णि कहे गये हैं और सबसे अंत में रौच्य तथा भौत्य नाम वाले दो मनु और होंगे ॥२६॥ इन्द्र को विष्णु समझना चाहिए। उसके बाद विपश्चित, अद्भुत, और त्रिदिव इन्द्र कहे जाते हे ॥२७॥ सुशान्ति, सुकीर्ति, ऋतुधामा और दिवस्पति इस प्रकार भूत और भविष्य के चौदह इन्द्र हैं। कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि ये सात सप्तर्षि कहे गए हैं। अब इसके बाद मरुतों, अग्नियों पितृों और ग्रहों को बताऊँगा। प्रवह, आवह, उद्वह, सुवह ॥३०॥ विवाह, निवह, और परिवाह ये भिन्न भिन्न मार्गों में विचरण करने वाले अन्तरिक्षगामी मरुत हैं ॥३१॥ ये सात पवन इन्द्र द्वारा छिन्न भिन्न अंगों वाले बना दिये गए ऐसा सुना जाता है ॥३२॥

सूर्य की अग्नि शुचि नाम से, विद्युत की अग्नि पावक के नाम से और मन्थन करने से उत्पन्न अग्नि पवम नाम से इस प्रकार ये तीन अग्नि बताई गई हैं ॥३३॥ अग्नियों के पुत्र-पौत्र चालीस बताए गए हैं और समस्त मरुतों की संख्या उन्चास बताई गई है ॥३४॥ इसी प्रकार संवत्सर भी अग्नि है और उस संवत्सर से ऋतुएँ उत्पन्न हुई हैं, ऋतुओं के पुत्र आर्तव कहे जाते हैं जो

---

१. यही जीवधारी प्राणियों की वर्तमान जाति का प्रजापति समझा जाता है। जल-प्रलय के समय मत्स्यावतार के रूप में विष्णु ने इसी वैवस्वत मनु की रक्षा की थी। अयोध्या के सूर्यवंशी राजाओं का यही प्रवर्तक था। इसकी तिथि ३१०० ई० पू० निश्चित की गई है। परम्परागत इतिहास के लिए देखिए **दी वेदिक एज**, पृ० २७५-३१३. तथा घोषाल, यू० एन०, **स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर**, पृ० ३७-४८.

पाँच हैं यही सनातन सृष्टि है, १--संवत्सर २—परिवत्सर ३—इड्वत्सर ४—अनुवत्सर ॥३६॥ ५—वत्सर। इनमें संवत्सर अग्नि परिवत्सर सूर्य है ॥३७॥ इड्वत्सर सोम है, अनुवत्सर वायु है, वत्सर रुद्र है ॥३८॥ ऋतुओं के पुत्र जो आर्तव उत्पन्न हुए वही पितर हैं और सोम के पुत्र 'मास' पितामह हैं ॥३९॥ और ऋतुयें जो कि ब्रह्मा के पुत्र हैं प्रपितामह हैं ॥४०॥

आदित्य, सोम, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र, शनिश्चर, ॥४१॥ राहु और धूम्रकेतु ये नव ग्रह है, ये सब त्रैलोक्य के भाव और अभाव को निरन्तर निवेदित करते हैं ॥४२॥ सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों मण्डल ग्रह कहे गए है, राहु को छायाग्रह और शेप को ताराग्रह कहा जाता है ॥४३॥ चन्द्रमा नक्षत्रो का अधिपति है और सूर्य ग्रहों का राजा है अथवा अग्नि को ही आदित्य और भव को चन्द्रमा कहा गया है, आदित्य को ग्रहों का ब्रह्मा, चन्द्रमा को विष्णु और मंगल को रुद्र कहा गया है ॥४५॥ सूर्य कश्यप के पुत्र है और सोम धर्म के। देवताओं और असुरों के दोनों गुरू दो महान ग्रह हे ॥४६॥ शुक्र और बृहस्पति—ये दोनों ही ब्रह्मा के पुत्र हैं, बुध चन्द्रमा का पुत्र है और शनैश्चर सूर्य का ॥४७॥ सिंहिका के पुत्र को ही राहु कहा गया है और ब्रह्मा का पुत्र केतु है, इन समस्त ग्रहों के नीचे सूर्य संचरण करता है ॥४८॥

सूर्य के ऊपर सोम है, सोम के ऊपर नक्षत्र-मण्डल है, नक्षत्रों से ऊपर बुध है और बुध के ऊपर शुक्र है ॥४९॥ शुक्र के ऊपर मंगल है और मंगल के ऊपर बृहस्पति, बृहस्पति से ऊपर शनैश्चर और उसके भी ऊपर सप्तर्षि मंडल ॥५०॥ सप्तर्षियों के भी ऊपर विद्वानों ने ध्रुव नक्षत्र का स्थान बताया है। कभी कभी आदित्य के स्थान में सोममार्गगामी राहु पहुँचता है ॥५१॥ और सूर्य-मण्डल में विद्यमान केतु निरन्तर आगे बढ़ता है, सूर्य का विस्तार ९००० योजन है ॥५२॥ इस विस्तार का तिगुना उसके मण्डल का घेरा है। सूर्य के विस्तार से दुगना विस्तार चन्द्रमा[1] का है और उसका भी

१. ज्योतिष सम्बन्धी अज्ञान का यह प्रमाण प्रस्तुत करता है।

तिगुना अधिक विस्तार चन्द्रमा के मण्डल का है। चन्द्रमा के विस्तार का सोलहवां भाग शुक्र का विस्तार है और शुक्र के विस्तार से एक चौथाई कम बृहस्पति का विस्तार है, बृहस्पति के विस्तार से एक चौथाई कम मंगल और बुध का विस्तार बताया गया है ॥५५॥ इन दोनों के भी विस्तार-मण्डल से एक चौथाई कम बुध है और बुध के ही समान अन्य छोटे नक्षत्र हैं ॥५६॥

ये आधे योजन विस्तार के हैं, इनसे छोटा और कोई नहीं है। कभी कभी राहु भी सूर्य के बराबर हो जाता है और इसी प्रकार केतु का भी प्रमाण नियन्त्रित नहीं है ॥५७॥ भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ये सात लोक प्रसिद्ध हैं ॥५८॥ पृथ्वी को ही पार्थिव लोक कहते हैं और अन्तरिक्ष को ही भुवर्लोक कहा गया है, स्वर्ग को ही स्वर्लोक कहते हैं इसी प्रकार से अन्य क्रमशः उनके ऊपर हैं। जीवों का अधिपति अग्नि है इसीलिए उसे भूतपति कहते हैं। आकाश का स्वामी होने के कारण वायु को नभस्पति कहते हैं। अन्तरिक्ष का अधिपति होने के कारण सूर्य को दिवस्पति कहते हैं। गन्धर्व, अप्सराएं, गुह्यक और राक्षस ये भूलोकवासी हैं, अब अन्तरिक्षचरों को सुनो ॥६१॥ ४९ मरुत, ११ रुद्र, २ अश्विनीकुमार, १२ आदित्य और आठ वसु ये सब अन्तरिक्षवासी हैं। ॥६२॥ चौथे महर्लोक में कल्प भर निवास करने वाले जीव रहते है और पांचवा जनलोक समस्त प्रजापतियों द्वारा सेवित होता है ॥६३॥ मनु और सनत्कुमारादि तपोलोक में है और ७वां सत्यलोक है जो इनसे ऊपर है ॥६४॥

प्रतिघात लक्षण से विहीन ब्रह्मलोक है और महीतल से लाखों योजन ऊपर सूर्य है ॥६५॥ भूमि से १० करोड़ योजन ध्रुव बताया गया है ॥६६॥ त्रैलोक्य का विस्तार २३ लाख योजन बताया गया है ॥६७॥ देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, भूत, विद्याधर ये आठ देवयोनियाँ हैं ॥६८॥ इसी व्योम में ये सात तो संप्रतिष्ठित हैं, मरुत के पितर संवत्सर है जिसमें कि अग्नि-

ग्रह हैं ।।६९।। अभी जो आठ देवयोनियाँ मैंने बताई हैं जो मूर्त या अमूर्त है वे सब आकाश में ही अवस्थित हैं ।।७०।। इस प्रकार आकाश को सर्वदेवमय बताया गया है, सर्वभूतमय बताया गया है और सर्वश्रुतिमय बताया गया है, इसलिये जो आकाश की अर्चना करता है वह समस्त देवताओं की अर्चना कर लेता है। अतः कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को सारे प्रयत्नों से आकाश की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार श्री साम्बपुराण में देवताख्यापन नामक १८वाँ अध्याय[1] समाप्त होता है।

१. तुलना कीजिये **भविष्य-पुराण**, १.१२५.। इस अध्याय का रचना काल ५००-८०० ई० के मध्य निश्चित किया गया है देखिए हाजरा, आर० सी०, दी साम्ब-पुराण थ्रू दी एजेस, **जर्नल आफ ऐशियाटिक सोसाइटी, लेटर्स**, भाग १८ (२), पृ० ६१ आदि।

अध्याय १६

नारद बोले—आकाश, रव, वियत् व्योम, अन्तरिक्ष, नभ, अम्बर, पुष्कर और गगन ये आकाश के नाम हैं ।।१।। पृथ्वी के मध्य में मेरु[1] पर्वत है उसके चारों ओर पृथ्वी है । अब मैं पृथ्वी के द्वीप-विभाजनों को बताऊँगा ।।२।। जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, गोमेदक, शाल्मली, पुष्कर ये क्रमशः सात द्वीप हैं ।।३।। लवण, क्षीर, दधि, जल, घृत, इक्षु, रसोदक और स्वादूदक ये सात समुद्र बताए गए हैं । हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत और शृंगवान ये छः वर्षपर्वत[2] हैं ।। ५ ।। मानस सातवाँ वर्षपर्वत है जहाँ पर कि आठ नगरियाँ स्थित हैं—इन्द्रपुरी, अग्निपुरी, यमपुरी, नैऋत्यपुरी, ।।६।। वरुण, वायु, सोम और शंकर की पुरी । इनके पश्चात् लोकालोक पर्वत हैं ।।७।। उस पर्वत के भी ऊपर अण्डकपाल और उससे भी ऊपर तमस है । उसके ऊपर अग्नि, वायु और आकाश और तब भूत इत्यादि हैं ।।८।।

उससे भी महान प्रधान प्रकृति है, प्रकृति से महान पुरुष और पुरुष से महान ईश्वर, ईश्वर से सम्पूर्ण संसार आवृत है ।।९।। अभी मैंने ऊपर नीचे

---

१. उपाख्यानों में वर्णित एक पर्वत का नाम । पौराणिक विवरण के अनुसार समस्तग्रह इसके चारो ओर घूमते हैं और वह स्वर्णों एवं रत्नों से परिपूर्ण है ।

२. वह पर्वत-श्रृंखला जो सृष्टि के भिन्न-भिन्न प्रभागों को एक दूसरे से पृथक करती है ।

और बीच में जिन लोगों की चर्चा की एक बार पुनः उन्हें बताऊँगा-भूलोक भुवलोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक-ये सातलोक कहे गये हैं ।।११।। इसके पश्चात अण्डकपाल और उससे भी आगे अन्धकार है, उससे भी ऊपर अग्नि, वायु और आकाश है और तब पंचमहाभूत कहे जाते हैं ।।१२।। महाभूतों से महान प्रधान प्रकृति है, उससे महान पुरुष है और पुरुष से महान ईश्वर है जिससे यह संसार आवृत है। भूमि के नीचे भी जो सात लोक हैं उन्हें भी नाम से सुन लो--तल, सुतल, पाताल, तमस्ताल, सुशाल, विशाल और सातवाँ रसातल ।।१४।। इसके बाद अण्डकपाल है और उसके बाद अग्नि, वायु, आकाश है। तब भूतादि है ।।१५।। भूतों से महान प्रधान प्रकृति है, प्रकृति से महान पुरुष और पुरुष से महान ईश्वर और ईश्वर से यह संसार व्याप्त है ।।१६।।

इस प्रकार मेरु के चारो ओर यह सब बताया गया। शुद्ध कंचन का चार शिखरों वाला वह सुमेरु गिरि उत्पन्न हुआ है ।।१७।। सिद्धों और गन्धर्वों से सेवित चार सुनहरे शिखरों से युक्त वह पृथ्वी के बीचों बीच विद्यमान है।।१८।। वह चौरासी हजार योजन ऊँचा है। सोलह हजार योजन पृथ्वी मे धंसा हुआ है, अट्ठाइस हजार योजन विस्तृत है ।।१९।। इसका घेरा चारो ओर विस्तार का तिगुना है। सौमनस नाम वाला इसका एक शिखर सोने का है। इसका दूसरा शिखर पद्मराग से बना हुआ ज्योतिष्क नाम वाला है और तीसरा पवित्र शिखर समस्त धातुओं से युक्त चित्र नाम वाला है ।।२१।। इसका चौथा श्वेत चाँदी से युक्त शिखर चान्द्रमास कहा गया है, इस पर्वत का जो सौमनस नाम वाला शिखर है वह जाम्बूनद भी कहा जाता है ।।२२।। यही वह शिखर है जहाँ पर उदित होता हुआ रवि दिखाई पड़ता है। सूर्य जम्बूद्वीप में उत्तर की ओर से परिक्रमा करके ।।२३।। उस शिखर पर आश्रित होकर समस्त जीवों को दिखाई पड़ता है। उस पर्वत के सुनहरे शिखर के सूर्य से ढक जाने पर ।।२४।।

दोनों संध्याएँ कुछ कुछ लाल होकर पूर्व-पश्चिम में दिखाई पड़ती हैं। सौमनस शिखर पर सूर्य के उगने पर उत्तरायण ।।२५।। और ज्योतिष्क शिखर पर पहुँचने पर दक्षिणायन होता है ।।२६।। उस पर्वत के ईशान शिखर पर शंकर और पूर्व-दक्षिण शिखर पर अग्नि, नैऋत्य पर पितर, वायव्य शिखर पर मेरु और मध्य शिखर पर साक्षात नारायण आदित्य रूप में प्रतिष्ठित हैं[1] ।।२७।। इस प्रकार श्री साम्बपुराण में व्योमोत्पत्ति नामक उन्नीसवाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

१. पुराणों में भौगोलिक विवरण के लिये देखिए त्रिपाठी, मायाप्रसाद **डेवलपमेंट आफ जियागरफिक नालेज इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**

२. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १. १२६। इस अध्याय की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य मानी जाती है देखिए हाजरा, वही।

अध्याय २०

नारद बोले—अब इस स्वर्णमय सुमेरु पर्वत के चारों ओर विद्यमान चारों लोकपालों की नगरियों का वर्णन नाम से सुन लो ॥१॥ सुमेरु की पूर्व दिशा में इन्द्र की अमरावती पुरी है और दक्षिण दिशा में यमराज की यमनी-पुरी ॥२॥ पश्चिम दिशा में वरुण देवता की सुखापुरी और उत्तर में सोम देवता की विभापुरी ॥३॥ मध्यान्ह, मध्य रात्रि, उदय और अस्त बेला में यह सूर्य चारों दिशाओं में तपता है ॥४॥ जब यह सूर्य अमरावती पुरी के मध्यगामी होता है तो वैवस्वत और संयमन में यह उदित होता हुआ दिखाई पड़ता है[1] ॥५॥ सुखापुरी में अर्धरात्रि होती है और विभापुरी में अस्तगमन। जब यह सूर्य वैवस्वत और संयमन स्थानों का मध्यगामी होता है ॥६॥ तब यह सुखापुरी और वरुणपुरी में उदित होता हुआ दिखाई पड़ता है ॥ तब विभापुरी में अर्धरात्रि और अमरावतीपुरी में अस्तंगमन होता है ॥७॥ जब सूर्य सुखापुरी और वरुणपुरी में मध्यान्ह बेला में रहता है तब उसका उदय विभापुरी और सोमपुरी में होता है ॥८॥

तब इसकी अर्धरात्रि अमरावती पुरी में और अस्तंगमन यमपुरी में होता है ॥ जब सूर्य मध्यान्ह बेला में सोमपुरी विभा में रहता है ॥९॥ तब उसका उदय इन्द्र की अमरावती पुरी में होता है ॥ आधी रात यमपुरी में होती है और अस्तंगमन वरुणपुरी में ॥१०॥ इस प्रकार मेरु पर्वत के चारों

---

१. तुलना कीजिये **भविष्य-पुराण** १.५३।

भागों में परिक्रमा करता हुआ उदय और अस्त प्रक्रिया में सूर्य बारम्बार उठता है ॥११॥ पूर्वान्ह् और अपरान्ह् में दो दो देवपुरियों में अपनी उन्हीं किरणों से सूर्य तपता है ॥१२॥ सूर्य मध्यान्ह् वेला तक निरन्तर बढ़ती हुई किरणों से उदित होता है और इसके बाद निरन्तर ह्रास को प्राप्त होती हुई किरणों से अस्त होता है ॥१३॥ जहाँ यह उदित होता हुआ दिखाई पड़ता है वही इसका उदय कहा जाता है और जहाँ यह अदृश हो जाता है वही उन किरणों का अस्त कहा जाता है ॥१४॥ सूर्य के बहुत दूर होने के कारण इसकी रश्मियाँ विलीन हो जाती हैं अस्तु यह रात्रि को नहीं दिखाई पड़ता ॥१५॥ देव स्थिति में विद्यमान सूर्य जहाँ जहाँ दिखाई पड़ता है वह स्थान एक लाख योजनों से भी ऊपर का है ॥१६॥

इसी प्रकार जब सूर्य पुष्कर द्वीप के मध्य में होता है तब एक मुहूर्त में उसका तीसवां भाग पृथ्वी पर आ जाता है ॥१७॥ एक ही निमेष के भीतर सूर्य अन्तरिक्ष में पूरे एक लाख और एक सौ इकत्तीस योजन आगे बढ़ता है ॥१८॥ सूर्य की एक मुहूर्त की गति एक हजार पचास योजन बताई गई है ॥१९॥ एक निमेष के भीतर सूर्य अन्तरिक्ष में पूरे दो हजार दो सौ योजन आगे बढ़ता है ॥२०॥ बवण्डर की भांति चक्कर काटता हुआ नक्षत्रों में यह विहार करता है ॥२१॥ उदित होते हुए सूर्य को इन्द्र प्रतिदिन समर्पित करता है ॥ मध्यान्ह् में यमराज और अस्त वेला में वरुण देवता पूजा करते हैं ॥२२॥ आधी रात में कुबेर और सोम तथा प्रातः बेला में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इसकी पूजा करते हैं ॥२३॥ इसी प्रकार पर्यटन करते हुए सूर्य को क्रमशः अग्नि, निऋति[1] वायु और ईशान देवता समर्पित करते हैं ॥२४॥

इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में बीसवाँ अध्याय समाप्त होता है।

---

१. दक्षिण-पश्चिम कोण की अधिष्ठात्री देवी। दृष्टव्य **मनुस्मृति**, ११.११९.

अध्याय २१

नारद बोले—अब सूर्य के रथ की बनावट[1] मुझसे समझो जो कि एक चक्र, पाँच तीलियों और तीन धुरों से चलता है ।।१।। सुवर्णमय देदीप्यमान अष्ट चर्म से युक्त नेमि वाले चमकदार चक्के से आकाश में आगे बढ़ता है ।।२।। इस रथ का विस्तार नौ हजार योजन बताया गया है ।। और प्रमाण में इस रथ के तख्ते से इसका ईषा-दण्ड दूना बनाया गया हैं ।।३।। इसी रथ की विस्तीर्ण धुरा पर अरुण नाम वाला सारथी रहता है। इस प्रकार का सूर्य का रथ ब्रह्मा द्वारा संवत्सरात्मक बनाया गया है ।।४।। यह रथ सुदृढ़, स्वर्ण निर्मित, दिव्य अश्वरूपधारी छन्दों तथा शीघ्रगामी अश्वों से युक्त है[2] ।।५।। इस प्रकार के देदीप्यमान रथ के द्वारा दिनपथ सूर्य आगे बढ़ता है ।।६।। संवत्सर के अवयवों को लेकर सूर्य के इस रथ के समस्त अंग क्रमशः कल्पित किये गए हैं।।७।। उदाहरणार्थ इस चक्र की तीन नाभियाँ हैं जो कि भूत, भविष्य और वर्तमान तीन काल हैं। इसकी तीलियाँ पांच ऋतुएँ हैं और नेमियाँ छः ऋतुएँ हैं ।।८।।

उत्तरायण और दक्षिणायन यही दोनों उस रथ की दो ऊर्वि हैं और मुहूर्त उस रथ की बन्धुरा है ।। और कला सव्या कही गई है ।।९।। काष्ठा को ही रथ का घोणा कहा गया है और क्षण को ही अक्षदण्ड बताया गया है ।। निमेष रथ की अनुकक्षा है और लव ईषा है ।।१०।। रथ के ऊपर फहराने

---

१. सूर्य-रथ का विवरण पुराणों का प्रिय विषय है द्रष्टव्य **विष्णु-पुराण**, २०.८ ।

२. तुलना कीजिये **भविष्य पु०**, १.५२ ।

वाली पताका धर्म है तथा अर्थ और नाम उसके दो अक्ष बताये गये है ॥११॥ अश्व का रूप धारण किये हुए छन्द ही क्रमशः धुरा का वहन करते हैं। यह छन्द हैं गायत्री, त्रिष्टुभ, जगती, अनुष्टुप ॥१२॥ पंक्ति, वृहती और सातवां उष्णिका। रथ का चक्का अक्ष में निबद्ध है॥ और अक्ष ध्रुव से संयुक्त है ॥१३॥ चक्र के साथ अक्ष घूमता है, अक्ष के साथ ध्रुव घूमता है॥ और ध्रुव से प्रेरित होकर चक्र के साथ ही साथ पूरा अक्ष घूमता है ॥१४॥ इस प्रकार प्रसंगतः सूर्य के रथ का वर्णन किया गया। इसी प्रकार यह सुदृढ़ रथ आकाश में पर्यटन करता है ॥१५॥ जब विजयशील वह सूर्य द्युलोक से आकाश मण्डल में पर्यटन करने लगता है तो उसके रथ की सुदृढ़ रूप से बंधे हुए ॥१६॥

वे दोनों चक्र तेजी से चक्कर काटते हैं। इस प्रकार आकाशचारी उस रथ के घेरे घूमते समय ऐसे लगते हैं॥ १७॥ जैसे कुम्हार का चक्का घूम रहा हो उसी प्रकार रस्सियों से जकड़े हुए वे दोनों अटल चक्के भी मण्डलाकार चारों ओर भ्रमण करते हैं और उत्तरायण होने पर वृद्धि को ॥१९॥ इसी प्रकार सूर्य के मण्डल बाहर की ओर भी आठ हजार बार एक एक काष्ठा के बीच मे घूमते हैं ॥२०॥ संचरण करता हुआ सूर्य का वह रथ देवो, आदित्यों, ऋषियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, सर्पो और राक्षसों द्वारा अधिष्ठित होता है[1] ॥२१॥ क्रमशः दो दो महीने, सूर्य के रथ पर अधिष्ठित होते है। धाता, अर्यमा, पुलस्त्य पुल, प्रजापति ॥२२॥ सर्प, वासुकि, तुम्बरु, नारद और गायकों में श्रेष्ठ दो गन्धर्व ॥२३॥ क्रतस्थली पुन्जिकस्थला, ये दो अप्सराएँ. रथ गृत्सन और रथौजा ये दोनों ग्रामणी ॥२४॥

और रक्षोहेति, प्रहेति नाम वाले दो राक्षस तथा मधु माधव के समूह भी सूर्य के साथ रहते हैं ॥२५॥ इसी प्रकार वसन्त और ग्रीष्म मास मित्र

---

१. द्वादश सूर्यों के नाम और अधिकारियों का वर्णन **विष्णु-पुराण** २ १० में भी किया गया है।

ौर वरुण देवता, अत्रि और वशिष्ठ ऋषि, तक्षक और अनन्त नाग ॥२६॥ ेनका और सहजन्या अप्सराएँ, हा हा और हु हू गन्धर्व, रथस्वन् और थचित्र नामक ग्रामणी ॥२७॥ पौरुषेय और वध नामक राक्षस, शुचि ौर शुक्र ये दो मास सूर्य के साथ निवास करते हैं ॥२८॥ अब इसके बाद ौर भी अन्य देवता सूर्य के रथ पर रहते हैं। इन्द्र और विवस्वान देवता गिरा और भृगु महर्षि ॥२९॥ एलापत्र और शंखपाल, सर्प, विश्वावसु और उग्रसेन, गन्धर्व, प्रमलाचन्ती और अनुम्लाचन्ती अप्सराएँ, सर्प और याघ्र नामक राक्षस ॥३१॥ ये सब सूर्य के साथ रहते हैं। इसी प्रकार ारदऋतु में अन्य देवता सूर्य के साथ निवास करते हैं ॥३२॥

पर्जन्य और पूषा देवता, भारद्वाज और गौतम ऋषि, चित्रसेन और वसूरुचि गन्धर्व ॥३३॥ विश्वाची और घृताची अप्सराएँ, ऐरावत और धनन्जय नाग ॥३४॥ सेनजित और सुषेण नामक ग्रामणी, आप और वात ये दो राक्षस-ये सब सूर्य के साथ वसन्त ऋतु में साथ रहते हैं। हेमन्त ऋतु के दो मास में ३६॥ अंशु और भाग नामक देवता कश्यप और ऋतु नामक ऋषि, महापद्म और कर्कोटक नामक सर्प ॥३७॥ चित्रांगद और ऊर्णायु नामक गन्धर्व, पूर्वचित्ति तथा उर्वशी नामक अप्सराएं ॥३८॥ तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि नामक ग्रामणी, अवस्फूर्ज्ज और विद्युत नामक राक्षस ये सब दो महीने दिवाकर के साथ रहते हैं ॥३९॥ इसी प्रकार शिशिर ऋतु के दो महीनों में ॥४०॥

त्वष्टा और विष्णु नामक देवता, जमदग्नि और विश्वामित्र ऋषि, कम्बल और अश्वतर नामक दो कद्रू पुत्र नाग ॥४१॥ धृतराष्ट्र और सूर्यवर्चा ये दोनों गन्धर्व, ये सब दो मास तक सूर्य के साथ रहते हैं ॥४२॥ इसी प्रकार तिलोत्तमा और रम्भा ये दो सुन्दरी अप्सराएँ ॥४३॥ ऋतुजित् और सप्तजित् ये दोनों महायशस्वी ग्रामणी, ब्रह्मप्रेत और यक्षप्रेत ये दोनों राक्षस ॥४४॥ उत्तम तेज वाले सूर्य का अनुगमन करते हैं ॥ ऋषिगण

अपनी सुप्रसिद्ध वाणी से सूर्य की स्तुति करते हैं ॥४५॥ गन्धर्व और अप्सराएं गीत और नृत्य से सूर्य की उपासना करते है और विद्युत, ग्रामणी तथा यक्षगण प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ४६ ॥ सर्प सूर्य का वहन करते हैं और राक्षस अनुगमन। बालखिल्य उदयकाल से ही सूर्य को घेरकर अस्ताचल की ओर ले जाते हैं ॥४७॥ इन देवताओं का जैसे वीर्य है, जैसा तप है, जैसा योग है, जैसा सत्य है, जैसा बल है ॥४८॥

उनकी तेजस्विता का केन्द्र बिन्दु सूर्य उसी प्रकार तपता है। इस प्रकार सूर्य के बल से ये भी तपते हैं, वर्षा करते है, भ्रमण करते हैं, प्रकाश करते हैं, सृष्टि करते हैं ॥४९॥ जीवों के अशुभ कर्म को नष्ट करते है और सूर्य के साथ पर्यटन करते है ॥५०॥ ये तपते हुए और प्रजाओं को आल्हादित करते हुए समस्त जीवों की कृपापूर्वक रक्षा करते हैं ॥५१॥ अपने स्थानाभिमानी इन देवताओं के स्थान अतीत, वर्तमान और भविष्य के मन्वन्तरों में हैं ॥५२॥ इस प्रकार सूर्य ग्रीष्म, शीत, और वर्षा ऋतु में घाम, शीतलता और वर्षा रात दिन करता हुआ ऋतुओं के प्रभाव वश किरणों को निवर्तित करके पितरों और मनुष्यों को सन्तुष्ट करता हुआ चलता रहता है ॥५३॥ देवों को अमृत से प्रसन्न करता है और चन्द्रमा को तेज से प्रबुद्ध करता है। शुक्लपक्ष में दिन के क्रम से चन्द्रमा बढ़ता है और कृष्ण-पक्ष में देवगण उसका पान करते हैं ॥५४॥ इस प्रकार कृष्ण-पक्ष में अमृत पिये गए चन्द्रमा को कलामात्र अवशिष्ट रह जाने पर किरणों से निर्गलित होते हुए स्वधामृत को पितृगण, सर्प, सौम्य, और काव्य पीते हैं ॥५५॥ सूर्य के द्वारा अपनी किरणों से सोखे गए जलों द्वारा और पुनः जलों को छोड़ने से उत्पन्न वृद्धि द्वारा बढ़ी हुई औषधियों से मनुष्य गण अन्नरस के आश्रय से अमृत प्राप्त करते हैं ॥५६॥

अमृत से देवताओं की आधे माह तक तृप्ति होती है और स्वधा से पितरों की मास भर और इसी प्रकार अन्न से मनुष्यों की शाश्वत तृप्ति

होती है। सूर्य अपनी किरणों द्वारा सर्वत्र पहुँचता है ॥५७॥ इस प्रकार यह सविता हरे रंग वाले अपने अश्वों से और जल सोखने वाली अपनी हरित रश्मियों[1] से सृष्टि वेला में चराचर का निर्माण करता हुआ पोषण करता है ॥५८॥ एक चक्के वाले रथ से रात दिन भ्रमण करता हुआ सूर्य सात द्वीपों और सात समुद्रों से युक्त पृथ्वी को किरणों से पार करता है ॥५९॥ चक्के में जुते हुए अश्वरूपधारी छन्दों द्वारा कि जो कामरूप हैं, एक ही बार जुते हुए हैं, मन की तरह वेगगामी हैं ॥६०॥ हरे तथा जो पिङ्गल वर्ण के (श्वेताओं) ईश्वर तथा ब्रह्मवादी हैं, उनके द्वारा आधे दिन में आठ हजार तीन सौ मण्डल आगे बढ़ता है ॥६१॥ इस प्रकार दिन के क्रम से ये अश्व सूर्यमण्डल का वहन करते हैं कल्प के प्रारम्भ में जुते हुए महाप्रलय वेला तक जुते रहते हैं ॥६२॥ रात दिन बालखिल्यों से आवृत और महर्षियों के संस्तवनों से ग्रथित ॥६३॥ यह सूर्य गन्धर्वों और अप्सराओं द्वारा गीतों और नृत्यों से तथा पक्षी एवं अश्वों से सेवित होता ॥६४॥

और इस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्रों से अनुगत होकर वीथी के सहारे चलता रहता है। इस प्रकार श्री साम्बपुराण में आदित्यरथवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त होता है।

१. सूर्य के सप्ताश्वों और रश्मियों का समीकरण वैदिक साहित्य में किया गया है; दृष्टव्य ऋग्वेद, १.५०.१.८,९; १.११५.३,४;१०.३७.३; ५.४५.९ ७.६०.३; ४.१३.३; ५.२९.५; ७.६३.२.

अध्याय २२

साम्ब ने कहा—हे देवर्षि ! सूर्य और चन्द्र के समागम से युक्त सूर्य लोक को आपने देखा है । यह बताएँ कि चन्द्रमा कैसे क्षीण होता है और क्षीण होकर बढ़ता कैसे है ॥१॥ हे सुव्रत ! कृष्ण-पक्ष में अमृतपानकर्त्ता देवता एवं पितर जिस प्रकार सोम पीते हैं वह मुझे बताएँ ॥२॥ नारद बोले—हे साम्ब ! दो प्रकार की पूर्णिमा बताई गई है—राका और अनुमति । इसी प्रकार अमावस्या दो प्रकार की बताई गई है सिनीवाली और कुहू ॥३॥ सूर्य का नाम अमा है जो कि उस चन्द्रलोक में प्रतिष्ठित है चूँकि उसमें चन्द्र रहता है इसलिये उसे अमावस्या कहा गया है ॥४॥ पूर्णिमा के दिन पहले उदित हुए चन्द्रमा के कलाहीन होने पर पूर्णिमा को अनुमति समझना चाहिए चूँकि सूर्य उसके पीछे चलता है ॥५॥ इसलिए देवताओं सहित पितरगण उसे पीछे मानते हैं और इसीलिए पूर्णिमा पहले अनुमति कही जाती है ॥६॥ एक ही साथ जब सूर्य अस्त होता है और पूर्ण चन्द्र का उदय होता है तो उसी को राका कहते हैं ॥७॥ पितरों सहित देवगण उसी पूर्णिमा को राका कहते हैं, कवियों ने सूर्य का रक्षण होने के कारण इसे राका कहा है[1] ॥८॥

सिनीवाली का प्रमाण (आकार) यह है कि चन्द्रमा पूर्णतया क्षीण हो जाता है और सूर्य अमावस्या में प्रवेश कर जाता है । इसीलिए उसे सिनीवाली कहा गया है ॥९॥ कोयल की बोली को 'कुहू' कहा जाता है । जितनी

---

१. अध्याय २२ का रचना-काल ९५० ई० के उपरान्त स्वीकार किया गया है देखिए हाजरा, वही ।

देर में यह बोली समाप्त होती है उतनी ही अवधि के बराबर अमावस्या कुह कही जाती है ।।१०।। राका सहित अनुमति में और कुहू के बिना सिनी-वाली में इनके आगे का जो समय है कोयल की बोली के बराबर वही कुहू है ।।११।। शुक्ल-पक्ष में चन्द्रमा की सोलह कलाओं को सूर्य बढाता हे। इसीलिए कृष्ण-पक्ष में देवताओं द्वारा अमृत क्रमशः पिया जाता है ।। १२ ।। कृष्ण-पक्ष की प्रथम कला को अग्नि पीती है, दूसरी कला के अमृत को सूर्य, तीसरी को विश्वदेव, चौथी को प्रजापति, ।।१३।। पाँचवी को वरुण, छठी को इन्द्र, सातवी को ऋषिगण, आँठवी को आठों दिव्य वसु, ।।१४। नवी को यमराज, दसवीं को मरुत, ग्यारहवीं को रुद्र ।।१५।। बारहवी को विष्णु तेरहवीं को कुबेर, चौदहवीं को पशुपति ।।१६।।

पन्द्रहवीं कला को पितृगण पीते है। और पूर्णत: पी चुकने के बाद कला से अवशिष्ट चन्द्रमा सूर्यमण्डल अर्थात् अमा में प्रवेश कर जाता है इसीलिए सोलहवीं कला अमावस्या[1] कही जाती है ।।१७।। चन्द्रमा पूर्वान्ह में सूर्य मे मध्यान्ह काल में वनस्पति में और अपरान्ह काल में जलराशि में जो कि उसका उत्पत्ति स्थान है, प्रवेश करता है ।।१८।। चन्द्रमा के वनस्पतियों में विलीन हो जाने पर अर्थात् मध्यान्ह में जो पेड़ पौधे काटता है अथवा तोड़ता है वह ब्रह्महत्या से युक्त होता है ।।१९।। बची हुयी अपनी एक कला से युक्त चन्द्रमा जलराशि मे प्रवेश करके तृणों, कुंजों, लताओं, वृक्षो और औषधियो को उत्पन्न करता है ।।२०।। इस प्रकार औषधियों में विलीन उस चन्द्रमा को जब गाएँ चरती हैं और उसके अंगों से अनुगत जल को पीती है तो उसी से दूध का निर्माण होता हे ।।२१।। वही दुग्ध अमृत बनकर और ब्राह्मणों द्वारा मंत्रों से पवित्र किया जाकर तथा स्वाहा और वषट्कार आहु-तियों के क्रम से ।।२२।। हविष्य रूप में देवताओं के लिए अग्नि में दिया जाकर पुनः चन्द्रमा को बढ़ाता है इस प्रकार चन्द्रमा क्षीण होता है और

---

१. "सूर्यचन्द्रमसोः यः परः संनिकर्षः साऽमावस्या" **गोभिल-गृहसूत्र**

क्षीण होकर पुनः आगे बढ़ता है ॥२३॥ इस प्रकार सूर्य अपनी किरणों के द्वारा चन्द्रमा की वृद्धि करता है । इसीलिए यह महातेजस्विन सूर्य परमात्मा देवताओं द्वारा पूजित होता है ॥२४॥

हे साम्ब ! तुम भी मित्रवन में जाकर भास्कर की आराधना करो । देखो पापी व्यक्ति को सूर्य में भक्ति नहीं होती, इसीलिए तुम अत्यधिक भक्तिपूर्वक सूर्य की शरण[1] में जाओ ॥२५॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण का सोमवृद्धिक्षय नामक बाइसवाँ अध्याय समाप्त होता है ।

१. ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण भक्तिवाद का मूल-मन्त्र है । दृष्टव्य **नारद-भक्ति-सूक्त,** १.१६, मैकनिकल, एन०, **इण्डियन थीइज्म,** पृ० ३०-४२.

अध्याय २३

साम्ब ने कहा— हे विप्र ! हे ऋषि-श्रेष्ठ ! सूर्यलोक मे जाकर आपने बहुतेरे विचित्र आश्चर्य देखे हैं ।।१।। जो कि मनुष्यों द्वारा विस्मय को उत्पन्न करने वाले एवं दुर्विज्ञेय हैं इसलिए चिरकाल से ही मेरे हृदय में विद्यमान इस संदेह को ।।२।। यदि आप सुनाने लायक मानते हैं तो मुझसे कहें क्योंकि सूर्य का ग्रहण देखकर मेरा मन व्याकुल हो उठा था ।।३।। राहु तो अंधकारराशि है और सूर्य तेजोराशि तो फिर हे मुनि ! वह सूर्य राहु द्वारा कैसे ग्रसा जाता है ।।४।। जिसके सम्पूर्ण तेज से जगत प्रकाशित होता है उसके विषय में जो वास्तविक तथ्य है वह आप बताने की कृपा करें ।।५।। नारद बोले—हे साम्ब ! जो अविज्ञेय है, जो अदृश है, महात्माओं के लिए जो ज्ञान मात्र से जानने योग्य है, ऐसे सूर्य के ग्रहण संयोग को कहा जाता हुआ मुझसे सुनो ।।६।। राहु के द्वारा सूर्यग्रस्त नहीं किया जाता[1] है, तुम मन से चिन्ता को दूर कर दो । तेजोराशि दिवाकर को ग्रस्त करने की भला किसमें शक्ति है ? ।।७।। हे साम्ब ! मूर्ख व्यक्तियों के लिए यह बात जानने सुनने लायक नहीं है । अब मैं तुम्हें जो रहस्य बता रहा हूँ वह सुनो ।।८।।

---

१. पौराणिक मिथिकशास्त्र के अनुसार समुद्र-मन्थन के उपरान्त अमृतपान के सम्बन्ध में सूर्य राहु द्वारा ग्रस लिया गया था यही सूर्यग्रहण है परन्तु यह दृष्टव्य है कि यहाँ पर सूर्य-ग्रहण का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है । दृष्टव्य त्रिपाठी माया प्रसाद, **डेवलेपमेन्ट आफ जियागर-फिक नालेज इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**, पृ० ३८-३९.

इस श्रेष्ठ ज्ञान को जानकर कोई व्यक्ति संदेह नहीं करेगा। यदि सच मुच तेजोराशि सूर्य राहु द्वारा ग्रस्त कर लिया गया होता ॥९॥ तो फिर उदर के भीतर विद्यमान सूर्य द्वारा क्षण मात्र में वह भस्म क्यों न हो जाता और यदि आक्रमण करके राहु द्वारा सूर्य मुंह में निगल लिया जाता ॥१०॥ तो फिर क्यों नहीं तीखे दांतों से सैकड़ों खण्ड कर दिया गया॥ परन्तु निर्मुक्त होने पर तो सूर्य पुनः अखण्ड मण्डल के रूप में दिखाई पड़ता है ॥११॥ न तो इसका तेज अपहृत होता है, न ही यह अपने स्थान से च्युत होता है और यदि सूर्य राहु द्वारा निगला जाता तो फिर वह इतना दीप्तिमान कैसे रहता॥ इसलिए निश्चित है कि तेजोराशि सूर्य राहु के मुख में कभी नहीं जायेगा। समस्त जीवों के भक्षण के लिए तो ब्रह्मा ने सोम की सृष्टि की है ॥१३॥ उस चन्द्रमा में विद्यमान अमृत भी सूर्य के ही तेज से परिपूर्ण है॥ उस जलमय अमृत को देवता और स्वधामय अमृत को पितृगण पीते हैं ॥१४॥ तैंतीस करोड़ देवता उसी सोम का पान करते हैं ॥१५॥ प्राचीन काल में ब्रह्मा ने अमृत का जो भाग राहु के लिए रख छोड़ा था उसी अमृत को पूर्ण तिथियों में पास पहुँचकर राहु पीना चाहता है ॥१६॥

पृथ्वी के प्रतिबिम्ब को साथ लेकर अंधकारमय और अमलाकार वह राहु अमृत पीने की इच्छा से अपने प्रतिबिम्ब से चन्द्रमा को ढक लेता है ॥१७॥ शुक्लपक्ष में वह चन्द्रमा पर और कृष्ण पक्ष में सूर्य पर आक्रमण करता है[1]। सूर्यमण्डल में विद्यमान चन्द्रमा को नष्ट करने की इच्छा से उसके शरीर को विनष्ट न करता हुआ राहु उसी प्रकार अमृत पीता है जैसे भ्रमर कमल को हानि न पहुचाता हुआ उसका मधुरस पीता है ॥१९॥ ठीक उसी

---

१. **विष्णु-धर्मोत्तर-पुराण**, ४२. ४२-४३ में सूर्य एवं चन्द्र-ग्रहण का वैज्ञानिक सिद्धान्त दिया गया है। तुलना कीजिए **सूर्य-सिद्धान्त**, अध्याय ४ और ५.

प्रकार चन्द्रमा के अमृत को भी राहु ग्रहण करता है ।। जैसे चन्द्रकान्त-मणि चन्द्रमा के सम्पर्क से ।।२०।। न अपने तेज से मुक्त होती है और न उसका तुषारकण ही नष्ट हो पाता है और जैसे सूर्यमणि सूर्य के सम्पर्क से अग्नि उत्पन्न करके ।।२१।। तेज से मुक्त नहीं होती है उसी प्रकार चन्द्रमा और सूर्य भी राहु से आच्छादित होने पर भी न अंगहीन होते हैं ।।२२।। और न तेज से विमुक्त होते हैं। पूर्णिमा तिथियों में चन्द्रमा के साथ चन्द्रकान्त-मणि का सम्पर्क होने पर ।।२३।। सोम देवता के संयोग से और उनके पार्थिव प्रतिबिम्ब के योग से अथवा राहु के वरदान से चन्द्रमा अमृत का स्राव करता है ।।२४।।

जैसे दुहने की वेला में प्रसन्न होकर गाय अपने अंग से दूध का स्राव करने लगती है उसी प्रकार चन्द्रमा भी अमृत प्रकट करता है ।। सूर्य देवताओं के पिता की तरह और चन्द्रमा माता की तरह देखा जाता है ।।२५।। जैसे माँ का स्तन पीकर समस्त जीव तृप्त हो जाते हैं उसी प्रकार चन्द्रमा के अमृत को पीकर पितर और देवता तृप्त होते हैं ।।२६।। इकट्ठे हुए अमृत को पर्व-योग होने पर चन्द्रमा निर्गलित करता है और झरते हुये उस अमृत को देवगण अपने अपने भागानुसार प्रयोग में लाते हैं ।।२७।। उसी अवसर पर पहुँचकर राहु भी अमृत के सम्पूर्ण आधे तिहाई अथवा चौथाई अथवा फिर चौथाई के भी आधे भाग को छीनता है ।।२८।। चन्द्र-मण्डल के जितने भाग को सूर्य अपनी पृथ्वी छाया से युक्त करता है वही भाग राहु का कहा जाता है और शेष देवताओं का ।।२९।। इस प्रकार देवताओं की तृप्ति करके और पर्वगत राहु को भी संतुष्ट करके चन्द्रमा न क्षीण होता है और न तेजविहीन ।।३०।। इसके पश्चात् पुनः सूर्य के प्रमाण से तिथियों का विभाजन होता है ।।३१।। नीचे राहु उसके ऊपर चन्द्रमा और चन्द्रमा के भी ऊपर सूर्य ही पर्वकाल में इनकी स्थिति है और बाद में पुनः इनकी स्थिति विपरीत हो जाती है ।।३२।।

इस प्रकार राहु चन्द्रमा और सूर्य को केवल मेघ की तरह ढकता है ॥३३॥ पार्थिवी छाया को ग्रहण करके धुएँ और मेघ की तरह उठा हुआ यह राहु चन्द्रमा अथवा सूर्य का जो भाग छूता है ॥३४॥ उससे सूर्य और चन्द्रमा का वह भाग केवल श्यामल हो जाता है जैसे कि कीचड़ लग जाने से वस्त्र की सफेदी नष्ट हो जाती है ॥३५॥ चन्द्रमा अपने एक भाग में अथवा समस्त भाग में राहु द्वारा ग्रसित होने पर भी धुले हुए वस्त्र की भाँति पुनः अत्यधिक श्वेत हो जाता है ॥३६॥ वस्त्र की ही भाँति राहु से मुक्त चन्द्रमण्डल भी निर्मल हो जाता है। राहु के द्वारा चन्द्रमा और सूर्य को आच्छादित देखकर ॥३७॥ विप्रगण शांति करने में विरत होकर यत्न करने लगते हैं। इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा ग्रस्त होते हैं ॥३८॥ जो अज्ञानी लोग हैं वे इसी को सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण मानते हैं और उसी रूप में देखते हैं ॥३९॥ स्नान, दान और जप में, इस ग्रहण का माहात्म्य जानने से सब देवताओं का सान्निध्य प्राप्त होता है। इसका ध्यान कर, सुनकर और पढ़कर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥४०॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण का राहु-ग्रहण-विचार नामक तेइसवाँ अध्याय[1] समाप्त होता है।

१. इस अध्याय को ९५० ई० के उपरान्त प्रक्षिप्त माना जाता है दृष्टव्य हाजरा, आर० सी०, **स्टडीज इन द उपपुराणाज,** भाग १, पृ० ५७. यह तथ्य विचारणीय है कि बाइसवें और तेइसवें अध्याय का कोई भी अंश **भविष्य-पुराण** में ग्रहण नहीं किया गया है।

अध्याय २४

वशिष्ठ ने कहा—हे महाराज ! इस प्रकार हर्ष बढ़ाने वाला सूर्य का माहात्म्य कहा गया और उस माहात्म्य को नारद से सुनकर साम्ब अत्यन्त प्रसन्न हुए[1] ॥१॥ तब साम्ब विनयपूर्वक देव के समक्ष पहुँचकर अत्यन्त दीनवाणी से पिता से बोले ॥२॥ साम्ब ने कहा—हे देव ! अगों को नष्ट करने वाले कलंक से मैं अभिभूत हो गया हूँ ॥ और मैं जानता हूँ कि मेरी मुक्ति वैद्यों और औषधियों से नहीं होने की ॥३॥ हे गोविन्द ! अब मुझे आज्ञा दीजिए, मैं वन चला जाऊँगा ॥ हे कमलनयन पुरुषोत्तम ! मेरा कल्याण कीजिए ॥४॥ इसके पश्चात पिता कृष्ण द्वारा आज्ञा पाकर समुद्र के उत्तरी तट पर महानदी चन्द्रभागा को उन्होंने तैर कर पार किया ॥५॥ इसके पश्चात तीनों लोकों में प्रसिद्ध मित्रवन[2] में जाकर साम्ब उपवास के कारण अत्यंत कृशांग और निस्तर सूखी हुयी धमनियों वाले हो गये ॥६॥ सूर्य की आराधना के लिए यही रहस्यमय स्तोत्र जपने लगे जो कि चारों वदों से सम्मत और पौराणिक अर्थ से समर्थित था ॥७॥ यह जो अजर, अव्यय, शुक्ल, दिव्य तथा ब्रह्मवादी हरित वर्ण वाले मन के समान वेगगामी अश्वों से युक्त सूर्यमण्डल है ॥८॥

---

१. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.१२६.

२. इस मित्रवन की स्थिति पंजाब में मुल्तान में बतायी गई है । दृष्टव्य हाजरा आर० सी०, दी साम्ब पुराण थ्रू दी एजेस, **जर्नल एशियाटिक सोसाइटी, लेटर्स**, भाग १८.

यह जो जीवों का उदगम-विन्दु होने के कारण आदित्य नाम से प्रसिद्ध है। यही त्रैलोक्य का नेत्र है, परमात्मा है और प्रजापति है ॥९॥ इस मण्डल मे यह जो महान पुरुष देदीप्यमान हो रहा है यही अचिन्त्य रूप वाला विष्णु है, यही प्रजापति है ॥१०॥ यही रुद्र, महेन्द्र, वरुण, आकाश, जल, वायु, चन्द्रमा, पर्जन्य और कुबेर है ॥११॥ इस मण्डल में यह जो अग्नि के समान तेजस्वी प्रकाशित हो रहा है यही सहस्र रश्मियों वाला, बारह रूपों वाला दिवाकर है ॥१२॥ इस मण्डल में यह जो महान पुरुष देदीप्यमान हो रहा है यही साक्षात महादेव है। वह मण्डलाकार कुंभ रूपी प्रकाश कल्याणकारी है ॥१३॥ संहार और उत्पत्ति का कारण यही महायोगी काल है जो कि इस मण्डल में अपने तेजोराशि से पृथ्वी को पूर्ण करता हुआ विद्यमान है ॥१४॥ जन्म-मरण से मुक्त लक्षण वाला यह स्वयं धाता है जो कि स्वतन्त्र होकर पर्यटन कर रहा है। इससे श्रेष्ठतम देवता तेज की दृष्टि से और कहीं नहीं है ॥१५॥ यही अपने स्वधामृत से समस्त जीवों का पोषण करता है, यही निम्न म्लेच्छ जातियों और पशु-योनि में उत्पन्न जीवों का पोषण करता है ॥१६॥

हे देव ! विभावसु ! अपनी करुणा से तुम समस्त जीवों की रक्षा करते हो, आपत्तियों में मुक्ति देने के लिए तुम्हीं भक्तों की रक्षा करते हो ॥१७॥ अनेक प्रकार के कोढ़ियों, अन्धों, बहरों, लंगड़ों, पंगुओं और अंग-भग वाले मनुष्यों को, हे देव ! वात्सल्यपूर्वक तुमही निरोग करते हो ॥१८॥ हे

---

१. सूर्य का रोग-मुक्तिकारक स्वरूप वैदिक-काल से चला आ रहा था देखिए **ऋग्वेद**, १.५०.१२, १०.३७ ४ और ७. **तैत्तिरीय-संहिता** ४.४.३, २.३.७. **अथर्ववेद**, १.२२ दृष्टव्य करमबेलकर, **अथर्ववेद ऐन्ड आयुर्वेद**, **पंचविंश-ब्राह्मण**, २३.१६.१२. के अनुसार उग्रदेव ने कोढ़ से मुक्त होने के लिए २१ दिन का सूर्य-अनुष्ठान किया था। मयूर (७वीं शताब्दी ई०) ने भी इसी रोग से मुक्ति हेतु सूर्यशतक की रचना की थी।

प्रत्यक्षदर्शी देव ! दाद और फोड़े-फुंसी से ग्रस्त व्यक्तियों को तुम व्रणविहीन बना कर केवल खेल खेल में ही उद्धार करते हो ॥१९॥ हे देव ! मेरी भला क्या शक्ति है कि मैं तुम्हारी पूजा कर सकूँ, मैं तो आर्त हूँ और रोग से पीड़ित हूँ । तुम्हारी तो स्तुति ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि भी करते है ॥२०॥ तुम तो महेन्द्र, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराओं और गुह्यकों द्वारा स्तवन किये जाते हो, वायु द्वारा पवित्र स्तुतियों के माध्यम से पूजित तुम कौन देव हो ॥२१॥ जिसके मण्डल में ऋक, यजुष् और साम-इन तीनों का समूह स्थित है ? ॥ वही तुम्हारा मण्डल ध्यानियों के लिए सर्वश्रेष्ठ ध्यान है और मोक्ष चाहने वाले के लिए मोक्ष का द्वार है ॥२२॥ हे जगत्पति ! तेजों का अनन्त अचिन्त्य, अव्यक्त और निर्मल तेज जो कुछ भी इस स्तोत्र मे सन्निहित कर सका हूँ ॥२३॥ मुझ दुखी को भक्ति वाला समझ करके वह सब क्षमा करने की कृपा करें । तब जाम्बवती पुत्र साम्ब पर प्रसन्न होकर सूर्य देवता ने कहा—हे वत्स ! तेरी तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ जो वर चाहता है माँग ले ॥२४॥

साम्ब ने कहा—हे भगवान ! यदि आप प्रसन्न है तो मेरा वर यही है कि आप जैसे सनातन देवता में मेरी भक्ति-भावना नित्य बनी रहे ॥२५॥ सूर्य ने कहा—हे सुव्रत ! तेरा कल्याण हो । मैं तुझसे और भी अधिक प्रसन्न हूँ, तू वर का वरण कर ले ।२६। तब साम्ब ने वर देने वाले उस पवित्र देवता से दूसरा वर माँग लिया । हे देव ! आपकी कृपा से मेरे शरीर में विद्यमान यह रोग[1] नष्ट हो जाये, महात्मा भास्कर ने ज्योंहि यह कहा कि तथास्तु ॥२७॥ वैसे ही वह रोग शरीर से दूर हो गया और साम्ब उसी प्रकार पुन. वर प्राप्त कर रूपवान हो गया जैसे कोई सर्प केचुल छोड़ सुन्दर हो

---

१. व्लाच, जे०, डी०, एम०, जी०, १९११ पृ० २३ का विचार कि सूर्य द्वारा कोढ़ से मुक्ति दिलाने का सिद्धान्त परशियन उत्पति का है समीचीन नहीं लगता ।

जाता है ॥२८॥ सूर्य बोले—हे साम्ब ! मैं तुझसे संतुष्ट हूँ । मैं फिर तुमसे कुछ कह रहा हूँ उसे सुनो-आज से तेरे नाम से जो मेरा मन्दिर बनवायेंगे ॥२९॥ पृथ्वी में स्थापना करेंगे उन्हें सनातन लोक मिलेगा ॥३०॥ हे साम्ब ! तुम मुझे इस चन्द्रभागा नदी के पवित्र तट पर स्थापित करो ॥ और हे साम्ब ! यह नगर भी तुम्हारे नाम से ही प्रसिद्ध होगा जब तक यह भूमि रहेगी तब तक अक्षय कीर्ति संसार में होगी और मैं पुनः तुम्हें प्रति दिन स्वप्न मे दर्शन देता रहूँगा ॥३२॥

इस प्रकार कृष्णवंश में उत्पन्न उन साम्ब को सूर्य देवता वर प्रदान करके और प्रत्यक्ष दर्शन देकर वहीं पर अन्तर्ध्यान हो गये ॥३३॥ जो भक्ति मान मनुष्य, द्विजरथ-स्तोत्र[1] को तीनों समय में पढ़ता है अथवा दुख-शोक से आर्त होकर जो नारी इसका पाठ करती है वह शोक सागर से मुक्त हो जाती है ॥३४॥ आँख की पीड़ा, मन की पीड़ा, और कारागार में भयंकर जंजीरों के बधन से इन सबसे वह मुक्त हो जाता है ॥३५॥ वह भक्ति-वत्सल सूर्य अन्तरिक्ष के नीचे सर्वथा समर्थ है ॥३६॥ राज्य चाहने वाला व्यक्ति राज्य, धन चाहने वाला धन, रोग से मुक्ति चाहने वाला व्यक्ति रोग-मुक्ति प्राप्त करता है जैसे कि साम्ब को मुक्ति मिली ॥३७॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण का रोगापनयन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त होता है ।

---

१. आदित्यहृदयस्तोत्र (**रामायण**, ६.१०५) को भी इसी प्रकार पापनाशक, कष्टहारक, आयु-वर्धक आदि कहा गया है ।

अध्याय २५

वशिष्ठ बोले—हे राजन ! इसके पश्चात सूखी हुयी नसों वाले (निर्बल) साम्ब सहस्त्र नाम स्तोत्र द्वारा सहस्त्र किरणों वाले दिवाकर का स्तवन करते रहे[1] ॥१॥ तब कृष्ण-पुत्र उन साम्ब को दुखी होता हुआ देखकर सूर्य ने स्वप्न में दर्शन देकर पुनः यह बात कही ॥ २ ॥ सूर्य बोले—हे साम्ब ! हे महाबाहु ! हे जाम्बवती पुत्र ! सुनो नाम-सहस्त्र के द्वारा इस पवित्र स्तवन का पाठ करने से बहुत हो चुका ॥३॥ जो अत्यन्त पवित्र, कल्याणकारी, गोपनीय नाम हैं मैं उनका वर्णन करता हूँ सुनकर तुम उन्हें समझो ॥ ४ ॥ वे नाम हैं विकर्तन, विवस्वान, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान, लोक-चक्षु, ग्रहेश्वर ॥५॥ लोकसाक्षी; त्रिलोकेश, कर्त्ता, हर्ता, तमिस्त्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन ॥६॥ गभस्तिहस्त, ब्रह्मा, सर्वदेव-नमस्कृत, इस प्रकार यह इक्कीस नाम वाला स्तवन मुझे सदा सदा अत्यन्त प्रिय है ॥७॥ यह तीनों लोकों में स्तवराज के नाम से विख्यात है जो कि शरीर को आरोग्य देने वाला, धनवृद्धि और यशवृद्धि करने वाला है[1] ॥८॥

हे महाबाहो ! सायं प्रातः दोनों संध्याओं में विनयपूर्वक जो मुझे इस स्तव से समर्चित करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥९॥ शरीर, वाणी अथवा मन से किया गया जो पाप है एक जप करने मात्र से वह मेरे समक्ष नष्ट हो जाता है ॥१०॥ यह महामंत्र जप करने योग्य होम सन्ध्यो-

---

१. इस अध्याय की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य में रखी गई है देखिए हाजरा, वही.

पासना, वलिमंत्र, अर्घ्यमन्त्र और धूपमंत्र ॥११॥ अन्नदान, स्नान, प्रणिपात और प्रदक्षिणावेला में समर्पित होने पर समस्त व्याधियों को हरने वाला है ॥१२॥ इस प्रकार कहकर जगत के स्वामी भगवान सूर्य कृष्ण-पुत्र को मंत्र प्रदान करके वहीं अन्तर्ध्यान हो गये ॥१३॥ कुमार साम्ब भी इस स्तवराज द्वारा सप्ताश्ववाहन सूर्य को समर्चित करके पवित्रात्मा, निरोग और लक्ष्मी सम्पन्न होकर उस रोग से मुक्त हो गये ॥१४॥ इस प्रकार साम्बपुराण के रोगोपशमन में श्री सूर्य द्वारा प्रतिपादित 'स्तवराज वर्णन'[1] नामक पचीसवाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. तुलना कीजिए आदित्यहृदयस्तोत्र, **रामायण**, ६.१०५.

२. तुलना कीजिए **भविष्य पुराण**, १.१२८.

अध्याय २६

इसके पश्चात वर प्राप्त करके कुमार साम्ब अपने पूर्व रूप को प्राप्त करके प्रसन्न अन्तरात्मा से उस आश्चर्य को स्वीकार करते हुए ।।१।। अपने उसी पूर्वाभ्यास से अन्य तपस्वियों के साथ स्नान करने के लिए समीपवर्तिनी चन्द्रभागा[1] नदी तक गये ।।२।। स्नान के उपरान्त वहाँ पर उन्होंने अकस्मात सूर्य की देदीप्यमान मूर्त्ति को देखा जो मानों जलसमूह द्वारा उठाई जा रही थी ।।३।। उसे जल से बाहर निकालकर कुमार साम्ब ने आश्रम में ले आकर विधिपूर्वक उसी मित्रवन में स्थापित किया ।।४।। इसके पश्चात उन्होंने प्रणाम करके उसी सूर्य-प्रतिमा से पूछा—हे देव ! आपकी यह कल्याणकारी आकृति किसके द्वारा बनाई गई ? ।।५।। इसके पश्चात प्रतिमा ने कहा—हे साम्ब ! जहाँ से यह मूर्ति उत्पन्न हुई है और जिस पुरुष द्वारा यह मेरी आकृति बनाई गई है उसे सुनो ! मेरा पुरातन रूप अत्यंत तेज से युक्त था, सामान्य जीवों के लिए असह्य था, इसलिए मैं समस्त देवताओं द्वारा प्रार्थित किया गया ।।७।। हे प्रभो ! आपका रूप समस्त प्राणियों के लिए सह्य हो । तब मैंने महातपस्वी विश्वकर्मा को आदेश दिया ।।८।।

---

१. पंजाब में सिन्धु नदी की एक सहायक नदी चुनाब जिसके तट पर मुल्तान स्थित था दृष्टव्य हाजरा, **स्टडीज**, १; **साम्ब-पुराण**, ३.२, ४.१-२अ, ४.२०,२३. २४.५-६, २४-३१; **भविष्य-पुराण**, १.७२-६१, १.७४.१-२ अ, १.७४.२२,२४, १.१२७.६-७ आदि । एच० वान स्टेटेनक्रान **इन्डिश्च सोनिनप्रीस्टर साम्ब अण्ड देई शाकद्वीपीय ब्रह्मण**, साराश, पृ० २७९-८० ने यह मत प्रतिपादित किया है कि प्राचीन काल मे चन्द्रभागा मुल्तान से लगभग ३५ मील दूर प्रवाहित होती थी, मुल्तान चन्द्रभागा की सहायक नदी रावी पर स्थित था ।

कि मेरे तेज का कर्तन करते हुए रूप-सम्पादन करो, तब मेरी ही आज्ञा से उस विश्वकर्मा ने ही बड़ी कुशलता से ।।९।। शाकद्वीप में मुझे खरादकर रूप सम्पादित कर दिया ।। तुम्हारे प्रति प्रीति होने के कारण इस समय मैंने पुन उसी विश्वकर्मा का स्मरण किया ।।१०।। उस विश्वकर्मा[1] ने ही मेरी यह प्रतिमा कल्पवृक्ष से निर्मित की और पवित्र सिद्धों द्वारा सेवित हिमालय के ऊपर इसका निर्माण करके ।।११।। तुम्हारे लिए चन्द्रभागा नदी में उतार दिया । तुम्हारे मोक्ष के ही लिए मेरा यह स्थान उत्पन्न हुआ है ।।१२।। मेरा मनोरम सामीप्य सदैव यहाँ रहेगा ।।१३।। मेरा सान्निध्य पूर्वान्ह में और समय बीतने पर मध्यान्ह और साय को भी यहाँ निरन्तर रहेगा ।।१४।। वशिष्ठ बोले सूर्य देवता के इस वाक्य को सुनकर और प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाले उन्हें देखकर मन्दिर निर्माण करके साम्ब ने तब नारद से कहा साम्ब ने कहा—हे देवर्षि ! आपकी कृपा से मैंने यह सनातन रूप प्राप्त कर लिया और महात्मा भास्कर (सूर्य) का प्रत्यक्ष दर्शन भी ।।१६।।

यह सब कुछ प्राप्त करके भी मेरा मन चिन्तातुर है कि इस देवता की उपासना का पालन कौन करेगा ।।१७।। हे ब्रह्मन ! गुणों से युक्त जो भी ब्राह्मण सेवा-पालन करने में समर्थ हो मेरे कल्याणर्थ सोचकर आप उसे बताने का कष्ट करें ।।१८।। साम्ब द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर नारद ने उन्हें उत्तर दिया ।।१९।। नारद बोले—हे साम्ब ! सूर्य के सेवार्थ स्वीकृत धन को ब्राह्मण ग्रहण नहीं करेंगे[2] यह भी विदित है कि यहाँ पर धन है, यहाँ

---

१. देवों के शिल्पी, इनके स्वरुप के लिए मैकडानल ए० ए०, **वैदिक माइथालाजी**, पृ० ११८.

२. ब्राह्मण के जीवन का आदर्श ब्रह्मज्ञान था, मन्दिर एवं मूर्ति की परम्परा मूलतः अवैदिक थी अस्तु ब्राह्मण के लिए मन्दिर और मूर्ति एवं इसके धन से संबन्धित होना निन्दनीय समझा जाता था । सौरोपासना में मन्दिर एव मूर्ति परम्परा के लिए देखिए श्रीवास्तव, **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**, पृ० २२०-२२४.

भी अत्यधिक हैं ॥२०॥ देवता की उपासना में आये हुए द्रव्य से ब्राह्मी क्रियायें नहीं सम्पन्न होती हैं। लोभ से मोहित लोग ही अज्ञान वश इस प्रकार की पूजा करते हैं ॥२१॥ जो ब्राह्मण लोभ से मोहित होकर शास्त्र-विपरीत विधान करते हैं। वे देवलक ब्राह्मण पंक्ति से बाहर अर्थात निम्न कोटि के हो जाते हैं ॥२२॥ देवता के धन का जो उपभोग करते हैं वे पतित हो जाते हैं। ऐसे गर्हित व्यक्ति और शास्त्र की कोई प्रशंसा नहीं करता ॥२३॥ इसी प्रकार जो व्यक्ति देवता और ब्राह्मण के धन[1] को लोभ के कारण खाता है वह पापात्मा परलोक[2] में गृद्ध के खाने से बचे हुए जूठन को खाकर जीवित रहता है ॥२४॥

इसलिए कोई अन्य ब्राह्मण ही देवोपासना करेगा। हे साम्ब ! तुम उन्हीं भगवान सूर्य की शरण में जाओ वही तुम्हें कोई ब्राह्मण बताएँगे जो विधि जानने वाला हो, ज्ञानवान हो और देवोपासना करने में समर्थ हो ॥२५॥ देवर्षि नारद द्वारा इस प्रकार उपदेश पाकर सूर्य को प्रणाम कर साम्ब ने अपना संदेह पूछा आपकी पूजा कौन करेगा ? ॥२६॥ साम्ब द्वारा इस प्रकार सम्बोधित किये जाने पर उस मूर्ति ने कहा—हे निष्पाप जम्बू-द्वीप में कोई व्यक्ति मेरी पूजा करने योग्य नहीं है ॥२७॥ तुम शाकद्वीप से मेरी पूजा में दत्तचित्त ब्राह्मणों को जम्बू-द्वीप में ले आओ। लवण-सागर के उस,

---

१. ब्राह्मण के शरीर एवं सम्पत्ति को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता था द्रष्टव्य **वशिष्ठधर्मसूत्र**, पृ० ५.३७. घुरे जी० एस०, **कास्ट, क्लास ऐण्ड, अकूपेशन** पृ० ५७.

२. इस काल में स्वर्ग और नरक तथा पुनर्जन्म का सिद्धांत समाज में प्रतिष्ठित हो चुका था। ब्राह्मणों की सर्वोच्च सामाजिक स्थिति के लिये यह तथ्य उत्तरदायी था देखिए घुरे, जी० एस०, **कास्ट, क्लास ऐण्ड अकूपेशन** पृ० ८७.

पार और क्षीर सागर से घिरा हुआ ऐसा वह शाकद्वीप[1] इस जम्बूद्वीप की अपेक्षा श्रेष्ठतर सुना जाता है। वहाँ पर चार वर्णों का आश्रय लेने वाले पवित्र जनपद सुने जाते हैं ॥२९॥ वहाँ मग, मामग मानस और मन्दग[2] हैं ॥ मग तो अधिकतर ब्राह्मण हैं और मामग क्षत्रिय हैं ॥३०॥ वहाँ के वैश्य मानस कहे जाते हैं और शूद्र मन्दक कहे जाते हैं ॥ वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले उन लोगों में कहीं वर्ण-संकर नहीं हैं ॥३१॥ धर्म का अटूट पालन करने के कारण वहाँ की प्रजा परम सुखी है ॥ वे प्रजाएं प्राचीन काल मे मेरे ही द्वारा अपने ही तेज से निर्मित की गई थीं ॥३२॥

वहाँ के निवासियों को मैंने ही रहस्यों सहित चारों वेदों का उपदेश दिया है और स्वयं निर्मित परम गोपनीय वेदों में कहे गये विविध स्तोत्रों से वे प्रजाएँ युक्त हैं ॥३३॥ वे प्रजाएँ मेरा ही ध्यान करती हैं। निरन्तर मेरा ही जप करती हैं। मेरी ही भावना में समाधिस्थ है। मेरी भक्त है और मत्परायण है ॥३४॥ वे मेरी ही सेवा करती हैं और मेरे ही व्रत का पालन करती हैं। सब शास्त्रों में उपदिष्ट क्रियायों द्वारा अव्यगंधारी[3]

---

१. शाकद्वीप की स्थिति सामान्यतः ईरान में बताई जाती है—द्रष्टव्य श्रीवास्तव, **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**, पृ० २४४.

२. तुलना कीजिए **महाभारत** ६.११.३६-३८ **विष्णु-पुराण**, २.४.६९-७०,

३. एक ईरानियन वस्त्र विशेष मेखला, कमरबन्द । सूर्य-मूर्तियों को इससे सुशोभित किया जाता था **विष्णुधर्मोत्तर-पुराण**, ३.६७.२-११, **बृहत्संहिता**, ५७.४६-४८. बनर्जी, जे० एन०, मिथ्स एक्सप्लेनिंग सम एलियन ट्रेट्स आफ दी नार्थ इण्डियन सन आइकन्स, **इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली**, भाग २८.

॥३५॥ वे प्रजाएँ वहाँ सदैव मेरी मनोनुकूल पूजा करती हैं ॥ उस द्वीप में गन्धर्वों, सिद्धों और चारणों सहित देवगण ॥३६॥ उन सबके साथ प्रत्यक्ष विहार करते हैं और रमण करते हैं ॥ श्वेतद्वीप में मैं ही विष्णु हूँ और कुशद्वीप में महेश्वर हूँ ॥३७॥ पुष्करद्वीप में ब्रह्मा और शाकद्वीप मे भास्कर[1] । इसलिए हे साम्ब ! मेरी पूजा करने के लिए तुम उन मगों को शाकद्वीप से यहाँ ले आओ ॥३८॥ हे साम्ब ! गरुड पर आरुढ होकर शीघ्र चले जाओ ॥३९॥ वशिष्ठ बोले—जैसी प्रभु की आज्ञा ! इस प्रकार सूर्य की आज्ञा लेकर जाम्बवती-पुत्र साम्ब अत्यन्त क्रान्ति से समावृत होकर पुनः द्वारवती (अर्थात द्वारका) पहुँचे ॥४०॥

पिता से अपना देवदर्शन का सम्पूर्ण वृतांत बताया । उनसे वाहन गरुड को लेकर और उस पर आसीन होकर साम्ब चल पड़े ॥४१॥ इसके पश्चात पुलकित रोमावली वाले साम्ब शाकद्वीप में पहुँचकर वहाँ सूर्य देवता द्वारा बताए हुए तेजस्वी मग-ब्राह्मणों को देखा ॥४२॥ जो कि पवित्र धूप और गन्ध आदि से सूर्य की पूजा कर रहे थे । उन सबको प्रणाम करके और उनकी प्रदक्षिणा करके ॥४३॥ उनका कुशल वृतान्त पूछकर साम्ब ने उन सबकी प्रशंसा की ॥ और कहा—आप लोग बड़े पुण्यकर्मा हैं, और कल्याण-इच्छुक व्यक्तियों द्वारा ही देखे जाने योग्य हैं ॥४४॥ जो कि आप लोग सूर्य को पूजा में निरन्तर रत है और उन्हीं का वर प्रदान करने में समर्थ है । मैं विष्णु का पुत्र हूँ, मेरा नाम साम्ब है ॥ ४५ ॥ चन्द्रभागा नदी के तट पर मैंने सूर्य की स्थापना की है और उन्हीं द्वारा मैं आप लोगों

---

१. समन्वयवादी प्रवृत्ति भारतीय धर्म-साधना की विशेषता रही है । यहाँ पर विष्णु, शंकर, ब्रह्मा और सूर्य की एकात्मकता प्रकट की गई है । गुजरात तथा राजस्थान से सूर्य, विष्णु, शंकर और ब्रह्मा की संयुक्त मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं देखिए संकलिया, एच०, डी०, **आरक्यालाजी आफ गुजरात**, पृ० १६३ तथा शर्मा दशरथ, **राजस्थान थ्रू दी एजेस**, पृ० ३८१.

के समीप भेजा गया हूँ। आप लोग उठें और वहीं चला जाये ॥४६॥ उन मग-ब्राह्मणों ने साम्ब से कहा—ऐसा ही होगा इसमें कोई संशय नहीं है। भगवान सूर्य ने भी हम लोगों से पहले ही यह कहा था ॥४७॥ वेदवादी[1] मगब्राह्मणों के यहाँ पर अट्ठारह कुल हैं वे सबके सब तुम्हारे साथ वहीं चलेंगे जहाँ सूर्य-देवता हैं ॥४८॥

तब उन साम्ब ने उन अट्ठारह परिवारों को गरुड पर बैठाकर वेग-पूर्वक पुनः प्रस्थान किया ॥ ४९ ॥ पुत्रों और पत्नियों से युक्त पूजा और यज्ञ करने के लिए आये हुए वे थोड़े ही समय में पुनः मित्रवन पहुँच गये ॥५०॥ सूर्य की उस आज्ञा को पूर्ण करके साम्ब ने जो कुछ किया सब सूर्य को निवेदित कर दिया और सूर्य ने भी 'अच्छा किया' इस प्रकार कहकर प्रसन्न होकर साम्ब से बोले ॥५१॥ अब यह ब्राह्मण प्रजाओं की शान्ति करने वाले शास्त्रीय रीति से मेरी मनोनुकूल (अथवा मानसी) पूजा करेंगे और हे साम्ब! अब मेरे लिए तुम्हें कोई चिन्ता नहीं होगी ॥ ५२ ॥ इस प्रकार साम्बपुराण में मगानयन नामक २६ वाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. यह दृष्टव्य है कि मगों को वैदिक-परम्परा से सम्बद्ध किया गया है जब कि इसी पुराण के उत्तरकालीन अध्यायों में वर्णित भोजकों को जरथुष्ट्र धर्म से सम्बन्धित बताया गया है, मगों और भोजकों की स्वतन्त्र स्थिति के लिये देखिए स्टेटनक्रान, **इन्डिश सोनन्प्रीस्ट्र र साम्ब अण्ड वेर्ई शाकद्वीपीय-ब्राह्मण**, सारांश, पृ० २७७.

२. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.१२६.१-२, ४,६ अ, ७ब-१७अ, १.१३६.१-९अ, १०ब. ७०-८१,८३-९७. **ब्रह्म-पुराण** । २० । **वराह-पुराण**. १७७ में साम्ब के अख्यान के संदर्भ में मगों को लाने का उल्लेख नहीं किया गया है।

अध्याय २७

बृहद्बल ने कहा— वे बड़े सौभाग्यशाली हैं, प्रशंसनीय हैं, पुण्य कर चुके हैं जो कि सूर्य की पूजा में लगे हुए हैं और सूर्य जिनके लिए वरप्रद हैं ॥ १॥ परन्तु मनुष्य जाति तो अनित्य है अतएव जो लोग देवपूजा में निरत हैं उनके लिए तो सब कुछ यहीं पर्याप्त है॥ तब उन्हें परलोक में क्या फल मिलता है ? ॥२॥ सूर्य की चिन्ता करते हुए और भोजकों[1] के ज्ञान के प्रति विचार करते हुए मेरे हृदय में यह सन्देह है ॥३॥ कि यह कैसे पूजा करते हैं ? यह मग[2] कौन हैं ? तथा यह याजक कौन हैं ? इनका श्रेष्ठ ज्ञान क्या है और कौन उनका इष्ट देवता है ? ॥४॥ इन सारी बातों को मुझे यथोचित रूप से बताने की कृपा करें ॥५॥ वशिष्ठ बोले— यह (मग-ब्राह्मण) मोक्ष-वादी हैं, कर्मयोग के आश्रित हैं और मनोरम पुष्पों और फलों से भगवान सूर्य का यज्ञ करते हैं ॥६॥ इसी प्रकार अन्नों, औषधियों और घी के होमों से यह लोग मंत्रोच्चारण सहित यज्ञ करके परम होम का पान करते हैं ॥७॥ उस परम होम का पान करने के कारण वह पवित्र आत्मा वाले और निष्पाप

---

१. एच० वी०, स्टेटिनकान, वही, पृ० २७६ के अनुसार यहाँ पर भोजक शब्द मूलरूप में नहीं था।

२. मगों की उत्पत्ति, स्वरूप एवं प्रभाव के लिए देखिए श्रीवास्तव विनोद चन्द्र, ऐन्टीक्यूटी आफ मगाज इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, **प्रोसीडिंग्स, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस**, भागलपुर सत्र, तथा **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**, पृ० २४१-२६४.

होकर परम दिव्य सूर्य की बीसवीं तेजस्विनी कला को प्राप्त कर लेते हैं ॥८॥

यज्ञकर्म के साधन में सूर्य की एक मूर्ति तो अग्नि में विद्यमान है और दूसरी प्रकाश करने वाली मूर्ति आकाश में वायुमार्ग में विद्यमान है ॥९॥ उससे ऊपर तीसरी मूर्ति है जो कि सूर्य का मण्डल कही जाती है वह मण्डल ऋचाओं से युक्त है, दिव्य है, अमर है और अव्यय है ॥१०॥ इसी मण्डल के बीच में सत और असत आत्मा वाला वह पुरुष सूर्य बीच मे विद्यमान है जो कि क्षर भी है और अक्षर भी है, स्थूल[1] है और महासूक्ष्म भी ॥११॥ वह कला-विहीन भी है और कलाओं से युक्त भी है। इस प्रकार दो रूपों में वह समस्त जीवों में व्यवस्थित दृष्टिगोचर होता है ॥१२॥ वह सूर्य तृणों, कुंजों, लताओं, वृक्षों, मृगों, सिंहों, गजों, पक्षियों, देवताओ, ब्राह्मणों, मनुष्यों, स्थल पर उत्पन्न होने वाले तथा जल में उत्पन्न होने वाले समस्त जीवों को व्याप्त करके ॥१३॥ सर्वत्र सबकी अन्तरात्मा में निवास करता है ॥ जब वह सूर्य कालात्मक बनकर दूसरा शरीर धारण करता है ॥१४॥ तब वह तेजसी कला का आश्रय लेकर निष्कल[2] कहा जाता है ॥ यह सदैव शीत, ग्रीष्म और वर्षा तीनों कालों का सृजन करता है ॥१५॥ सूर्य की तीसरी मूर्ति में वह परम-पद निहित है। कर्मयोग से प्राप्य देवयान नामक मार्ग भी उस मूर्ति में निहित है ॥१६॥

---

१. विशेष का अनुवाद स्थूल से किया है, विज्ञान का एक अर्थ सांसारिक ज्ञान से भी होता है उसी से स्थूल अर्थ निकाला जा सकता है। आप्टे, **संस्कृत-हिन्दी कोश**, ९३१.

२. यहाँ सूर्य की अवधारणा सकल और निष्कल दोनों रूपों मे की गई है दृष्टव्य हाजरा, **स्टडीज**, भाग १ पृ० ५६-५७ तथा **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**, पृ० २३९-४०.

जिसे कि सूर्यसिद्धान्त एवं साँख्य-योग को जानने वाले प्राप्त करते हैं और वही मोक्ष कहा जाता है ॥१७॥ वह स्थान निर्द्वन्द्व है, निर्मल है, वेदों में यह कहा गया है कि त्रैधर्म यहीं पर विद्यमान है। यहाँ पहुँचकर कोई व्यक्ति चिन्ता नहीं करता ॥१८॥ गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षर बताए गए हैं, तत्त्वज्ञ लोग पच्चीसवें तत्त्व में विद्यमान इस मंत्र का जप करते हैं ॥१९॥ जो वेदवादी लोग हैं वे ओंकार में विद्यमान सूर्य का ध्यान करते हैं जो कि ढाई मात्रा मे विद्यमान है ॥२०॥ जो व्यंजनात्मक 'मकार' है वह अर्धमात्रा में गुप्त है, इसलिए जो 'मकार' का ध्यान करते हैं उनका ज्ञान मदात्मक होता है ॥२१॥ इस प्रकार मैंने मकारक ध्यान के संबंध में यह बातें बताई ॥२२॥ धूप, मालाओं, जपों और उपहारों से जो सूर्य का यजन करते हैं इसीलिए, वे याजक[1] कहे जाते हैं ॥२३॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में सत्ताइसवाँ अध्याय[2] समाप्त होता हैं।

●

---

१. याजकों और मगों में भेद के लिए देखिए श्रीवास्तव, **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**, पृ० २६२ तथा स्टेटिनकान, वही, पृ० २७६-२८१.

२. श्लोक सँख्या ५ और १६ अ के अतिरिक्त यह पूरा अध्याय **भविष्य-पुराण**, १.१४०.२०-२३ तथा १.१४४. ९ब-१६अ, १७-२४ तथा २५ब तथा २६, में संग्रहीत है। अस्तु इस अध्याय को साम्ब-पुराण के मूल भाग में माना जाता है और इसकी तिथि ५००-८०० ई० के मध्य स्वीकार की गई हैं देखिए हाजरा, वही.

अध्याय २८

वशिष्ठ बोले—हे राजन ! इस सूर्य-ज्ञान की उपलब्धि को मेरे द्वारा कही जाती हुई सुनो। मनुष्य को चाहिए कि हड्डी-स्नायु से युक्त, माँस और रक्त से उपलिप्त ॥१॥ चमड़े से ढकी हुई, मल और मूत्र की दुर्गन्ध से परिपूर्ण, वृद्धावस्था और शोक से समाविष्ट, रोगों का घर, जर्जर, ॥२॥ संवेगपूर्ण, अनित्य इस शरीर का मोह छोड़ दे ॥ कृपालुता, क्षमा, सत्य, सरलता, पवित्रता ॥३॥ समस्त जीवों के लिए कल्याणकारी भाव—ये ही मुक्त-पुरुष के लक्षण हैं ॥ जैसे तिल में तेल, दूध में दधि और काष्ठ में अग्नि की संगति होती है ॥४॥ धीर पुरुष को चाहिए कि दत्तचित्त होकर चंचल और मन्थनशील होने पर भी संयत मन से उपाय सोचे ॥५॥ शरीर मे बुद्धि और इन्द्रियों को पिजरे में पक्षियों की भांति संयमित करके मनुष्य साधना करे क्योंकि इन्द्रियों के नियंत्रित हो जाने पर आत्मा तृप्त हो जाती है ॥६॥ प्राणायाम[1] से दोषों को, धारणाओं से दुष्कर्मों को जला देना चाहिये,

१. योगियों के अनुसार तत्त्वज्ञान के लिये चित्त-शुद्धि आवश्यक है। योग के अष्टांग साधन है जिसमें प्राणायाम, धारणा और प्रत्याहार का उल्लेख यहाँ पर किया गया है। प्राणायाम से अभिप्राय है श्वासनियन्त्रण, प्रत्याहार का अर्थ है इन्द्रियों को अपने-अपने बाह्य विषयों से खींचकर हटाना और उन्हें मन के वश में करना, धारण से अभिप्राय है चित्त को अभीष्ट विषय पर केन्द्रित करना। यहाँ पर योग-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। इन यौगिक साधनों के विस्तार के लिए देखिए चटर्जी एवं दत्त, **भारतीय दर्शन**, पृ० १९३-१९४.

प्रत्याहार से इन्द्रिय-विषयों को शान्त कर देना चाहिए और ध्यान से अनीश्वर गुणों (बुराइयों) को नष्ट कर देना चाहिये ॥७॥ जैसे पर्वत धातुओं के दोष धाम्यता को नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार इन्द्रियों से किए गए दोष चित्त-निग्रह से विनष्ट हो जाते हैं ॥८॥

चित्त को चित्त से शुद्ध करके, मन को मन से शुद्ध करके, भावनाओ को भाव से शुद्ध करके, बुद्धि को बुद्धि से शुद्ध करना चाहिए ॥९॥ चित्त के निर्मल हो जाने से शुभ और अशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं और शुभाशुभ कर्मों से निर्मुक्त व्यक्ति निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह हो जाता है ॥१०॥ निर्मोही और निरहंकारी बनकर परम-गति को प्राप्त करता है। सूर्य का प्रात-काल में प्रथम लोहित रूप ऋक्‌मय कहा गया है ॥११॥ दूसरा मध्याह्न वेला का रूप शुक्ल यजुर्मय कहा गया है ॥१२॥ सायंकाल में तीसरा कृष्ण रूप साममय कहा जाता है प्रथम रूप राजस है, दूसरा सात्विक रूप है, ॥१३॥ तीसरा तामस रूप है और इसी को त्रिगुण कहा जाता है, इन्ही तीनों के व्यतिरेक से चौथा सूर्यमण्डल होता है ॥१४॥ उस सूर्यमण्डल को तीन वेदविद्या में पारंगत सूर्य-सिद्धान्तवादी निर्विकार, सूक्ष्म और ज्योति प्रकाशक बताते हैं ॥१५॥ ओंकार प्रणव से युक्त योगी लोग ध्यान से पापो को नष्ट करके धीर भाव से पद्मासन[1] पर बैठकर नाभिस्थल पर हाथों को रखकर ॥१६॥

सुषुम्ना नाभि के मार्ग को कुम्भक, रेचक और पूरक[2] इन तीनो

---

१. योग-दर्शन के अष्टांग साधन में आसन भी एक है जिसके अनेक प्रकार हैं जैसे पद्मासन, वीरासन, भद्रासन शीर्षासन आदि दृष्टव्य चटर्जी और दत्त, **भारतीय-दर्शन**, पृ० १९३.

२. प्राणायाम के तीन अंग हैं—पूरक अर्थात पूरा श्वास भीतर खींचना, कुंभक अर्थात श्वास को भीतर रोकना और रेचक अर्थात नियमित विधि से श्वास छोड़ना।

प्राणायामों से शुद्ध करके देह में विद्यमान पांचों वायुओं[1] को शुद्ध करके ॥१७॥ पैर के अंगूठे से प्रारम्भ करके क्रमशः ऊपर की ओर उठाते हुए नाभि प्रदेश में इन्धनविहीन अग्निदेवता को देखते हैं ॥१८॥ हृदय में सोम देवता को, मस्तक में पुनः अग्निशिखा को और इसके बाद वायु और रश्मि को न सहते हुए उसे भी भेद करके आदित्य-मण्डल तक पहुँचते हैं। ॥१९॥ योग में लगा हुआ साधक व्यक्ति उससे भी आगे सूर्यमण्डल में जा पहुँचता है और वहाँ पहुँचकर फिर उसे कोई चिन्ता नहीं होती, वही सूर्य का परम-पद है ॥२०॥ इस सूर्य-साधना के क्रम में पहला स्थान हृदय है, दूसरा अग्नि स्थित है, तीसरा सूर्य और चौथा सूर्यमण्डल ॥२१॥ चौथे स्थान को ज्ञानी लोग देवताओं के स्वामी परमात्मा सूर्य का स्थान बताते हैं। और द्वितीय स्थान को भी ज्ञानी लोग देवताओं के स्वामी परमात्मा सूर्य का स्थान बताते हैं ॥२२॥ वही सूर्यमण्डल मनुष्यों का मोक्ष कहा जाता है, वह स्थान मनुष्य को संसार से बिच्छिन्न कर देने वाला है। हे राजन ! याजकों के शास्त्रों की संगतिवश मैंने यह ऋषियों का चरित्र तुम्हे बताया जिसे जानकर मोक्षतत्त्व जानने वाले व्यक्ति प्रवीण हो जाते हैं और सूर्यलोक को प्राप्त कर लेते हैं ॥२३॥ यह सहस्त्र किरणों वाले सूर्यदेवता का अमृत के समान श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा जानने योग्य तत्त्व का सारभूत चरित है, जिसे जानकर मोह-बुद्धि-विहीन व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥२४॥

महापुरुषों द्वारा प्रतिपादित यह ज्ञान श्रद्धावान पुरुषों को ही देना चाहिए। जो अपना कल्याण चाहे वह इस ज्ञान को नास्तिकों और मूर्खों को कभी न दे ॥२५॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण का मोक्षज्ञान नामक २८वाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. ये पांच वायु हैं प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान।

२. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.१४५.२-७, ८ब-२१, २२ब-२४, २५-२७.

अध्याय २६

वशिष्ठ बोले—अब इसके बाद मैं क्रम से प्रतिमा का लक्षण बताऊँगा। जैसा कि साम्ब पर कृपा करने वाले नारद ने बताया था ॥१॥ प्राचीन काल में सूर्य की प्रतिमा नहीं थी। उसकी पूजा उसके मण्डल[1] द्वारा ही होती थी जैसा कि सूर्य का यह मण्डल आकाश में रहता है ॥२॥ ठीक इसी प्रकार प्राचीन काल में भी भक्तों द्वारा मण्डलाकार सूर्य पूजे जाते थे परन्तु जिस दिन से विश्वकर्मा[2] द्वारा ॥३॥ समस्त संसार के कल्याणार्थ सूर्य की पुरुषाकार प्रतिमा बना दी गई, प्रतिमा की स्थापना हो गई और विधि-विधान पूर्वक उसका प्रमाण निश्चित हो गया तभी से प्रतिमा की पूजा चल पड़ी ॥४॥ नारद ने कहा—हे साम्ब ! मेरे द्वारा कहे जाते हुए समस्त संसार

---

१. प्रारम्भ में सूर्य की पूजा उसके नैसर्गिक रूप में होती थी। दृष्टव्य श्रीवास्तव, विनोद चन्द्र, **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया** पृ० २७३-७४ तथा पाण्डेय, लालता प्रसाद, **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**। सत्राजित के आख्यान में भी सूर्य प्रारम्भ में मण्डलाकार रूप में ही प्रकट हुए तदुपरान्त मानव रूप में दृश्यमान हुये देखिए **विष्णु-पुराण** ४.१३.१२-१५. तुलना कीजिए **मार्कण्डेय-पुराण** १०५. १-३ ; **शतपथ-ब्राह्मण** ७ ४. १.१०

२. यह दृष्टव्य है कि यहाँ सूर्य की प्रतिमा-परम्परा का श्रेय विश्वकर्मा को दिया गया है, मगों को नहीं। यह विदेशी परम्परा को देशीय बनाने की ओर संकेत करता है। देखिए श्रीवास्तव, वही, पृ० २५७ पाद टिप्पणी ३६६.

के कल्याण के लिए सुनो । घर में प्रतिमा की स्थापना का कोई नियम कहीं भी नहीं है ।।५।। मन से ही उन्हें स्थापित कर लेना चाहिए और वे सब कल्याणप्रद होती हैं किन्तु मन्दिर बनवाते समय भूमि की परीक्षा कर लेनी चाहिए ।।६।। बुद्धिमान व्यक्ति को भूमि के लक्षण की परीक्षा यत्नपूर्वक कर लेना चाहिए । पहले भूमि की परीक्षा कर लेनी चाहिए । तदुपरान्त मन्दिर बनवाना चाहिए ।।७।। सुगन्धित, नरम और चिकनी भूमि अच्छी मानी जाती है, जिसमें कंकड़, भूसी, बाल, हड्डी, शीशा अथवा अंगार हो ऐसी भूमि (में मन्दिर बनवाना) वर्जित है ।।८।।

जो भूमि मेघ और दुन्दुभि के समान स्वर उत्पन्न करे, समस्त बीजों को उगाने वाली हो, शुक्ल, रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण वाली हो (ऐसी भूमि में मन्दिर बनाना चाहिए) ।।९।। परीक्षा करके इन भूमियों में बीचो बीच क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को मन्दिर बनवाना चाहिए[2] । चारों ओर चार हाथ लीपकर और उसके ठीक बीच में एक हाथ दश अंगुल नीचे खोदकर ।।११।। पहले एक गड्ढा बना ले और फिर उसे मिट्टी से भर

---

१. गंध शब्द का प्रयोग पृथ्वी के संदर्भ में एक विशेष अर्थ में भी होता है । वैशेषिकों के २४ गुणों में एक गन्ध भी बताया गया है । यह पृथ्वी की एक विशेषता प्रकट करता है । **तैत्तिरीय संहिता** में गंधवती-पृथ्वी का उल्लेख आता है दृष्टव्य आप्टे, **दी स्टुडेन्ट संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी** पृ० १८०.

२. शूद्र द्वारा मन्दिर बनवाने का विधान भक्ति-परम्परा में अनुमोदित था । शुक्ल, रक्त, पीत और कृष्ण वर्णों को क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से संबंधित बताकर तत्कालीन समाज में प्रचलित सामाजिक स्तर-विन्यास का परिचय दिया गया है दृष्टव्य घुरे, **कास्ट, क्लास ऐन्ड अकूपेशन** पृ० ७४.

दे, यदि उतनी मिट्टी से वह गड्ढा भर जाए तो वह भूमि सामान्य गुण वाली मानी जाती है और यदि उतनी मिट्टी से वह गर्त न भरे तो वह भूमि हीन गुण वाली होती है और यदि खोदी हुई मिट्टी गड्ढे भरने से भी ज्यादा हो जाए तो वह भूमि बडी वृद्धिकारिणी होती है। मन्दिर की नींव सूर्य के समक्ष मुख करके और कभी कभी पीछे मुख करके भी स्थापित करनी चाहिए ॥१३॥ मन्दिर के दायीं ओर सूर्य का स्नानगृह होना चाहिए ॥१४॥ और मन्दिर के उत्तरी ओर कल्याणकारी अग्नि-होत्र गृह होना चाहिए। उत्तर की ओर ही शंकर और माताओं का स्थान होना चाहिए ॥१५॥ पश्चिम की ओर ब्रह्मा और उत्तर की ओर विष्णु की स्थापना करनी चाहिए। सूर्य के दाहिनी ओर निक्षुभा और बायीं ओर राज्ञी को होना चाहिए ॥१६॥

सूर्य के दाहिनी[1] ओर पिंगल और बायीं ओर दण्डनायक हो और अंशुमाली के ठीक सामने लक्ष्मी और सरस्वती का स्थान हो। पूजा-गृह के बाहर द्वार पर दोनों अश्विनीकुमारों को होना चाहिए। और दूसरी पंक्ति में राजा सूर्य के दोनों द्वारपालों को होना चाहिए ॥१८॥ तीसरी कक्षा में दोनों कल्माष पक्षियों को होना चाहिए और इसी प्रकार दाहिनी दिशा में जान्दक और माठर की स्थापना होनी चाहिए ॥१९॥ प्राप्नुयान और क्षुताप को पश्चिमी दिशा में होना चाहिए और उत्तरी भाग में कुबेर और सोम को होना चाहिए ॥२०॥ इनमें भी उत्तर की ओर विनायक के साथ रेवन्त को होना चाहिए और जो सूर्य का स्थान बचता है ॥२१॥ वहाँ दाहिनी बायीं ओर दो मण्डल अर्घ्य के लिए बनाना चाहिए। उदयवेला में सूर्य को दक्षिण भाग में अर्घ्य देना चाहिए ॥२२॥ और अस्त हो जाने पर उत्तरी मण्डल में अर्घ्य देना चाहिए। मन्दिर के अग्र भाग में चार अस्त्र और चार शृंग वाले व्योमदेव को रखना चाहिए ॥२३॥ रश्मिकिरण सूत्र से प्रतिमा के

---

१. सूर्य के अनुचरों की स्थिति के विषय में देखिए **साम्बपुराण**, १६

बीच का मण्डल बनाना चाहिए और आदित्य के ठीक समक्ष दिण्डि की स्थापना करनी चाहिए। इस प्रकार क्रमानुसार सूर्य-मन्दिर में यह देवताओं की स्थान-विधि बताई गई ॥२४॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण का २९वाँ अध्याय[1] समाप्त होता है।

१. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.१३०. ४२-५६, ५९-६०अ, और ६३ ब। इस अध्याय की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिए **हाजरा**, वही।

अध्याय 30

वशिष्ठ बोले—अब इसके बाद मूर्तिविधान को विस्तार पूर्वक बताता हूँ। भक्तजनों के कल्याण-वृद्धि के लिए सात प्रकार की मूर्तियाँ[1] बताई गई हैं ॥१॥ सोना, चाँदी, ताँबा, मिट्टी, शिला, वृक्ष और चित्र-ये सात वस्तुयें मूर्ति के लिये कही गई हैं ॥२॥ सूर्य की प्रतिमा बनाने के लिए श्रेष्ठ वृक्ष[2] इस प्रकार हैं—महुआ, देवदारु, राजवृक्ष, चन्दन, बेल, आंवला खैर और चम्पा ॥३॥ नीम, श्रीपर्ण, अशन, सरल, अर्जुन और लाल चन्दन ॥४॥ वर्णों के क्रम से दो वृक्ष एक साथ बताए गए हैं लेकिन नीम इत्यादि सभी वर्णों के लिए एक जैसे वृक्ष कहे गए हैं ॥५॥ दूध वाले वृक्ष मूर्ति बनाने योग्य नहीं होते, वे स्वभाव से ही दुर्बल होते हैं। जो वृक्ष चौराहों पर

---

१. **मत्स्य-पुराण**, २६२, १६-२१ में शिला, लकड़ी, और मिश्रित वस्तुओं की देव-प्रतिमाओं का उल्लेख किया गया है। अध्याय २६३.२४-२५ में रत्न, स्फटिक, मिट्टी, और लकड़ी की शिव-लिंग बनाने का विधान किया गया है। गोपाल भट्ट ने **हरिभक्तविलास** में मृण्मयी, दारूघटिता, लोहजा, रत्नजा, शैलजा, गन्धजा, तथा कौसुमी प्रकार की मूर्तियों का उल्लेख किया है। **शुक्रनीतिसार** (४.४.७२) में आठ प्रकार की मूर्तियों का उल्लेख किया है "प्रतिमा-सैकती पैष्टी-लेख्या-लेप्या च मृणमयी। वार्क्षी पाषाण-धातूत्थास्थिरा ज्ञेया यथोत्तरा"। भोजदेव ने **समरांगसूत्रधार** (भाग २) १.१. में **भविष्य** एवं **साम्ब-पुराणों** के ही सूची की पुनरावृत्ति की है—सुवर्ण, रूप्य, ताम्र, दारु, लेख्य, सिकता, चित्र ये सात द्रव्य मूर्तियों के लिए हैं यद्यपि यहाँ पर मृण्मयी मूर्तियों का उल्लेख नहीं किया गया है।

हों उन्हें भी प्रतिमा के लिए नहीं काटना चाहिये ।।६।। जो पेड़ मन्दिर मे हों या जो दीमक की बाँबी पर पैदा हुए हों, जो वृक्ष चैत्यों में विद्यमान हों अथवा जिन पर देवताओं की मूर्तियाँ उट्टंकित हों ।।७।। जो वृक्ष मरघट पर हों, जिन पर पक्षी बसेरा लेते हों, जिनमें अनेक कोटर हों अथवा जिनका अग्रभाग सूख गया हो, वे प्रतिमा के योग्य नहीं होते ।।८।।

जो सूख गए हों, वायु अथवा अग्नि द्वारा नष्ट कर दिए हों, हाथियों के खाने से दूषित हों, ग्राम मे हों, ग्राम की धूलि से धूसरित हों, गृद्धों की बीट से युक्त हों, बहुत छोटे हों, दुर्गन्ध वाले हों, वे प्रतिमा के योग्य नहीं होते ।।९।। जो अकाल में ही फल और फूल देने वाले हों और समय आने पर उनसे विहीन हों, जिन पर विद्युत गिर गई हो, जो रूखे हों और जिन पर कौए बैठते हों, वे मूर्ति के योग्य नहीं हैं ।।१०।। केवल एक, दो अथवा तीन शाखा वाले वृक्ष अधम कहे जाते हैं। जो पवित्र तथा सम स्थान में हों केश तथा अग्नि वाले स्थानों में न उगा हो ।।११।। जो वृक्ष जलमय प्रदेश में, कण्टक वर्जित सरोवर प्रदेश में, विस्तीर्ण स्कन्धों और डालियों वाला हो, पुष्पयुक्त हो, सीधा हो, गाँठ इत्यादि से विहीन हो ।।१२।। कुबड़ा न हो, छोटा न हो, भयंकर न हो, ऐसा पवित्र वृक्ष मूर्ति के लिए ग्रहण करना चाहिए और उसकी कटाई भी कार्त्तिकादि आठ महीनों में ही करनी

---

१. तुलना कीजिए **बृहत्संहिता**, ५८ (वनसंप्रवेशाध्याय) ५-६—देवदारु, चन्दन, शमी और मधुक ब्राह्मणों के लिये, अरिष्ट, अश्वत्थ, खदिर, और बिल्व क्षत्रियों के लिए, जीवक, खदिर, सिन्धुक तथा स्वन्दन वैश्यों के लिए और तिन्दुक, केशर, सर्ज, अर्जुन, आम्र और साल शूद्रों के लिये शुभ होते है। देखिए **विष्णुधर्मोत्तर-पुराण**, भाग ३, अध्याय-८९ (देवालयार्थ दारुपरीक्षणम) तथा **मानसार**, १५ (स्तम्भ-लक्षणाम्) २५१-२४७. पृ० १०३ आदि में दारुसंग्रहण के नियम दिये गये हैं। **मत्स्य-पुराण** २५७, में दार्वाहण विधि का सविस्तार वर्णन किया गया है।

चाहिए ॥१३॥ प्रशस्त पुण्य नक्षत्र में, गुणयुक्त पवित्र दिन में और शुभ शकुन[1] होने पर उपवास करके वृक्ष के नीचे शयन करना चाहिए ॥१४॥ उस वृक्ष के नीचे की भूमि को चारों ओर उपलिप्त करके गायत्री मंत्र से पवित्र किए गये जल से पोंछकर, पहले कभी न धारण किये गए ऊपर नीचे के दो श्वेत वस्त्रों को पहनकर, गन्ध माला, धूप और सम्यक बलि-कर्म द्वारा वृक्ष की पूजा करनी चाहिए ॥१६॥

इसके पश्चात उस वृक्ष के समीप ही बिछे हुए कुशों से युक्त हवन-कुंड में यज्ञ करके देवदारु की लकड़ियों से और इस मन्त्र द्वारा तत्त्व-ज्ञानी को यज्ञ करना चाहिए ॥१७॥ "सत्यसंध निरन्तर सृष्टि करने वाले चराचरात्मा प्रजापति विधाता को नमस्कार है । हे देव ! इस वृक्ष में अब आप निवास करें, सूर्य से घिरे हुए मण्डल में प्रवेश करें" स्वाहा[2]॥१८॥ इस प्रकार शान्ति के लिए इन वाक्यों से पूजा करके यह कहना चाहिए कि प्रकृति की शान्ति के लिए, हे वृक्ष ! अब तुम पवित्र देवालय में चलो ॥ १९॥ हे देव ! अब तुम काटने और जलाने से मुक्ति पाकर देव पदवी को प्राप्त करोगे । समय समय पर धूपदान, पुष्प और बलि-कर्म द्वारा ॥२०॥ संसार तुम्हारी पूजा करेगा जिससे कि तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे । इसी प्रकार धूप और पुष्प से वृक्ष की जड़ में कुल्हाड़ी की पूजा करनी चाहिए ॥२१॥ रात बीत जाने पर पुनः उस वृक्ष की पूजा करके, ब्राह्मणों और याजकों को दक्षिणा देकर ॥२२॥ स्वस्ति बचन करते हुए पेड़ को काटना चाहिए । वृक्ष का पात पूर्व अथवा ईशान दिशा में होना चाहिए ॥२३॥ अथवा ऐसा करें कि उत्तर की ओर गिरे, और दूसरे ढंग से नहीं काटना चाहिए, इन्हीं तीनों दिशाओं

---

१. **बृहत्संहिता** ५८ (वनप्रवेशाध्याय) में शकुनों आदि का विचार दिया गया है ।

२. तुलना कीजिए **बृहत्संहिता**, ५८.१०-११.

में वृक्ष का गिरना उत्तम माना जाता है ॥२४॥

नैऋत्य, आग्नेय और दक्षिण दिशाओं में वृक्ष का गिरना मध्यम है ॥२५॥ जिस रमणीय वृक्ष की शाखाएं अत्यधिक हों सबसे पहले उन्हीं को काटकर तब निचले भाग को काटना चाहिए ॥२६॥ बिना जड़ से लगे और बिना शब्द किए पेड़ का गिरना शुभ माना जाता है। जिस वृक्ष का द्विदल ऊपर उड़े, जिससे पानी बहने लगे, ॥२७॥ जिससे घी और तेल निकलने लगे ऐसे वृक्ष को छोड़ देना चाहिए और जिस में सूर्य-बिम्ब दिखाई पड़ जाए तत्काल उसे काट लेना चाहिए ॥२८॥ ऐसे वृक्ष को गर्भ युक्त समझना चाहिए, यदि वह गर्भ पीले वर्ण का हो तो उसके भीतर गोधा रहती है और गर्भ काले रंग का हो तो लम्बा सर्प रहता है। ॥२९॥ यदि गर्भ गुड़ के रंग का हो तो पत्थर रहता है और यदि कपिल वर्ण का हो तो गृह गोधिका रहती है। यदि गर्भ अग्नि के रंग का हो तो वहाँ जल समझना चाहिए और यदि मजीठी के रंग का हो तो कीड़े होना चाहिए ॥३०॥ इन सारे दोषों से जो बचा हुआ वृक्ष हो वही श्रेष्ठ माना जाता है। उसे पल्लवों से अच्छी तरह धोकर कुछ दिन संभालकर रखना चाहिए ॥३१॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में प्रतिष्ठापन-विधि[1] के संदर्भ में दारुपरीक्षा नामक तीसवाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. यह दृष्टव्य है कि इस अध्याय की एक भी पंक्ति **बृहत्संहिता** में नहीं पाई जाती जब कि **भविष्य-पुराण** में इसी विषय से सम्बन्धित पंक्तियाँ **बृहत्-संहिता** से संग्रहीत लगती हैं तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.१३१.४ = **बृहत्संहिता**, ५९-१; **भविष्य-पुराण**, १.१३१.१४-१८ = **बृहत्संहिता**, ५९.५-७, **भविष्य-पुराण**, १.१३१.४२ब-४५ = **बृहत्संहिता**, ५९.१२–१३.

२. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १,१३१ तथा १,१३२। यह अध्याय **साम्ब-पुराण** के मूल भाग का अंश है अस्तु इसकी तिथि ५००—८०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिये हाजरा, वही

अध्याय ३१

वशिष्ठ बोले—अब इसके उपरान्त मैं क्रम से प्रतिमा-लक्षण[1] बताऊँगा। प्रतिमा को एक, दो अथवा तीन हाथ का होना चाहिए ॥१॥ साथ ही साथ साढ़े तीन हाथ की भी सूर्य की मूर्ति शुभ मानी जाती है अथवा फिर राज-महल अर्थात मन्दिर अथवा द्वार का भी प्रमाण श्रेष्ठ माना जाता है ॥२॥ निरन्तर कल्याण की इच्छा करने वाले को उसी को प्रमाण बना लेना चाहिए। एक हाथ की सूर्य-मूर्ति सुन्दरता देने वाली होती है और दो हाथ की मूर्ति धनधान्य.देने वाली ॥३॥ सूर्य की तीन हाथ की मूर्ति समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली कही गई है[2] और साढ़े तीन हाथ की मूर्ति प्रचुर अन्न देने वाली और कल्याण करने वाली होती है ॥४॥ जो प्रतिमा ऊपर, नीचे और बीच में, चारों ओर कान्तियुक्त होती है ऐसी प्रतिमा को गान्धर्वी कहते हैं और वह प्रभूत धनधान्य देने वाली होती है ॥५॥ देव-मन्दिर का जो द्वार है उससे अष्टांग भर स्थान छोड़ देना चाहिए। तीसरे भाग में वेदी बनानी

---

१. प्रतिमा-माप-शास्त्र भारत में एक विकसित विज्ञान के रूप में स्थापित था दृष्टव्य बनर्जी, जे०, एन०, **डेवलेपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी**, अध्याय ८। मिस्र, यूनान तथा अन्य प्राचीन देशों में भी मूर्ति माप-शास्त्र का विकास किया गया था देखिए गार्डनर, इ०, ए०, **ए हैन्डबुक आफ ग्रीक स्कल्पचर**; तथा जीन कपार्ट, **इजिप्शियन आर्ट**।

२. तुलना कीजिए **बृहत्-संहिता**, ५७.४९-"सौम्यातु हस्तमात्रा वसुदा हस्तद्वयोच्छ्रता प्रतिमा क्षेमसुभिक्षाय भवेत् त्रिचतुर्हस्त प्रमाण या ॥"

चाहिए, दो भाग में प्रतिमा। अपने अंगुल[1] से ८४ अंगुल[2] मूर्ति होती है और बारह अंगुल का मुख का विस्तार[3] होना चाहिए ॥७॥ मुख के तीन भाग हों—चिबुक, ललाट और नासिका। दोनों कान नासिका की सिधाई में हों ॥८॥

नेत्र दो अंगुल के हों और उसका तृतीय अंश तारक हो, पुतली के तीसरे भाग, दृष्टि को विशेषज्ञ[4] को बनाना चाहिए ॥९॥ मस्तक

१. अंगुल भारत में नाप की एक प्राचीन इकाई थी द्रष्टव्य **ऋग्वेद**, १०.९०, **शतपथब्राह्मण**, १०.२.१.२.। मानांगुल, मात्रांगुल और देहलब्धांगुल—ये तीन प्रकार के अंगुल बताये गये हैं। मात्रांगुल और देहलब्धांगुल के आधार पर मूर्ति का निर्माण किया जाता था। देखिये बनर्जी, जे०, एन०, वही, पृ० ३१७-१८। 'अंगुलैः स्वैः'' के लिये तुलना कीजिए **बृहत्संहिता**, ५७.४. तथा **शुक्रनीतिसार**, ४-४-८२।

२. **बृहत्संहिता**, ६८.७ के अनुसार पांच प्रकार के मनुष्यों—हंस शश, रुचक, भद्र और मालव्य की ऊँचाई और चौड़ाई क्रमशः ९६, ९९, १०२, १०५ और १०८ अंगुल होना चाहिए। देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मुख्यतः प्रथम और अन्तिम प्रकार की बनाई जाती हैं। सूर्य की यह मूर्ति केवल ८४ अंगुल की बताई गई है। **बृहत्संहिता**, ६८.१८ में भद्र प्रकार की मूर्ति को ८४ अंगुल का बताया गया है। प्रस्तुत मूर्ति को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। **वैखानसागम** के अनुसार सूर्य की मूर्ति ११६ अंगुल की बनानी चाहिए।

३. **बृहत्संहिता**, ५७.९ में "विस्तार" का टेकनिकल अर्थ है--चौड़ाई की माप। इसके पर्याय हैं विस्तीर्ण, वितत, पृथुल, विपुल।

४. "विचक्षण" के अर्थ विशेषज्ञ के लिए देखिए **रघु०** १३.६९.

(परिणाह[1]) विस्तार ३२ अंगुल होना चाहिए। ललाट-मस्तक (उत्सेध[2]) उन्नत-शील बनाना चाहिए ॥१०॥ नासिका के ही बराबर ग्रीवा हो और मुख के बराबर हृदयान्तर, मुख के ही बराबर नाभि प्रदेश और उसके बाद लिङ्ग ॥११॥ वक्षस्थल मुख-विस्तार के बराबर हो और उसका आधा कटि प्रदेश। भुजाएं लम्बी हों और उसी की भाँति ऊरु और जंघे भी बराबर हों ॥१२॥ गुल्फों के बीच चरण हो जो कि ४ अंगुल ऊँचा हो। चरण का विस्तार ६ अंगुल हो और उसमें भी अंगूठा ३ अंगुल का ॥१३॥ प्रदेशिनी अंगुली भी उसी के बराबर हो और शेष अंगुलियाँ क्रम से छोटी हों। पैर का विस्तार चौदह अंगुल बताया गया है ॥१४॥ इस प्रकार लक्षण-युक्त प्रतिमा का पूज्य स्वरूप होता है। स्कन्ध-प्रदेश, भुजाएं, ऊरु, भौंहें, ललाट और नासिका ॥१५॥ तथा कपोल-प्रदेश समुन्नत बनाना चाहिए। धवलवर्ण कुछ कुछ लाल, बरौनियों से युक्त विस्तीर्ण नेत्र वाले ॥१६॥

मुस्कराते हुए मुखकमल वाला, रमणीय बिम्बाधर से युक्त, रत्नों से जगमगाते हुए मुकुट वाला, वलय, अंगद और हार से युक्त ॥१७॥ अव्यंग, पट्टबन्ध आदि समायोगों से सुशोभित सुन्दर भुजा-मण्डल वाला और विचित्र मणि कुण्डलवाला ॥१८॥ हाथों से कंचन वर्ण के हस्तकमल को धारण किए हुए-इस प्रकार के लक्षणों से युक्त सूर्यमूर्ति का आकार[3]

---

१. **बृहत्संहिता**, ५७.१४, १५, १८, २१,२२, २४,२६ के अनुसार "परिणाह" का टेकनिकल अर्थ है घेरा का माप। इसका पर्यायवाची है परिधि।

२. **बृहत्संहिता**, ५७.१६ में "उत्सेध" का टेकनिकल अर्थ है ऊचाई की माप, इसके पर्याय है आयाम, मान।

३. सूर्य-प्रतिमा का यह रुप **बृहत्संहिता**, ५७-४६-४८ में वर्णित सूर्य-प्रतिमा लक्षण से मिलता है तुलना कीजिए. **विष्णुधर्मोत्तर-पुराण**, ३.६७.२-११.

होना चाहिए ॥१६॥ ऐसा होने पर सूर्य प्रजाओं को कल्याण, आरोग्य और अभय देने वाले होते हैं। यदि प्रतिमा अधिक अंग वाली हुई तो राजभय होता है और हीन अंग वाली हुई तो विपत्ति आती है। ध्यात होने पर नेत्रपीड़ा, कृश होने पर दरिद्रता, खरोच होने पर शस्त्र-भय और फटने पर मृत्यु होती है ॥२१॥ दाहिनी ओर झुकी रहने पर निरन्तर आयु का संहार करने वाली होती है और उत्तर की ओर झुकने पर निश्चय ही प्रियजन का वियोग होता है ॥२२॥ जो न बहुत चमक दमक वाली हो और न द्युतिहीन हो ऐसी सरल मूर्ति प्रशंसित होती है इसलिए इहलोक और परलोक बनाने वाले सूर्यभक्त को चाहिए ॥२३॥ कि सुन्दर पवित्र मूर्तियों को बनवायें क्योंकि सम्पत्तियाँ उन्हीं के आधीन हैं। मस्तक, ऊरु, कपोल और वदन समस्त अंगावयवों से युक्त सूर्य की प्रतिमा मनुष्यों का कल्याण करती है। इस प्रकार साम्बपुराण में इकतीसवाँ[1] अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१ तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.१३२.१-२४.

२. यह अध्याय **साम्ब-पुराण** के मूल भाग में आता है अस्तु इसकी तिथि ५००-८०० ई० के मध्य निश्चित की गई है हाजरा, वही। यह भी स्मरणनीय है कि प्रतिमालक्षण में माप की इकाई अंगुल का ही उल्लेख किया है, ताल जो कि उत्तरकालीन शास्त्रों में प्रतिमा के माप की इकाई बताई गई है, का उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है।

अध्याय ३२

वशिष्ठ बोले–तदुपरान्त शास्त्रसमस्त कर्मकाण्ड से मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा[1] करनी चाहिए। समुद्र, गङ्गा, यमुना, ॥१॥ सरस्वती, चन्द्रभागा, सिन्धु, पुष्कर[2] और पर्वत से निकले हुए प्रपात से श्रेष्ठ जल ले आकर ॥२॥ और इसी प्रकार जो अन्याय नदी, नद तथा सरोवरों के जल हैं उन्हें यथाशक्ति स्वर्णादि के कलशों में ले आकर ॥३॥ तत्पश्चात मणिरत्नों, समस्त बीजौषधियों, सुगन्धित मालाओं, स्थल पर उगने वाले कमलों ॥४॥ चन्दनों और नाना प्रकार के अन्याय सुगन्ध, ब्राह्मी, सुवर्चला, नागरमोथा, विष्णुक्रान्ता, शतावरी ॥५॥ दूब, शंखपुष्पी, प्रियंगु (केसर कुंकम) एवं नील-इन सब आवश्यक वस्तुओं को विविध कर्मविधिवत एकत्र करके ॥६॥ बरगद, पीपल और

---

१. देवता-प्रतिष्ठा पुराणों एंव निबन्धों का प्रिय विषय है विस्तार एव तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखिए **मत्स्य-पुराण,** २६४-६६, **अग्नि-पुराण**; ६० तथा ६६; रघुनन्दन; **देवप्रतिष्ठातत्त्व**; पृ० ५०५; **धर्मसिन्धु,** ३. पृ० ३३३-३३४ **वैखानसस्मर्तिसूत्र** ४.१०-१५. यह दृष्टव्य है कि **मत्स्य-पुराण,** में प्राण-प्रतिष्ठा का उल्लेख नहीं किया गया है।

२. ये सरितायें उत्तर भारत से सम्बन्धित हैं अस्तु यह निष्कर्ष निकाला गया है कि **साम्ब-पुराण** की रचना मूलत: उत्तर भारत में की गई देखिए हाजरा, दी साम्ब-पुराण, ए सौर वर्क आफ डिफरेन्ट हैन्ड्स; **अनाल्स आफ भन्डारकर ओरियन्टल रिचर्स इन्सटीच्यूट**, भाग ३६, १९५५ पृ० ६२ आदि।

शिरीष के पल्लवों और कुशों से युक्त कलशों द्वारा प्रतिष्ठापित सूर्य को स्नान के लिए जल देना चाहिए ॥७॥ सोने, चाँदी, ताँबे, और मिट्टी के बने हुए कलशों द्वारा अक्षत, सोना और समस्त औषधियों के साथ ॥८॥

गायत्री मंत्रपाठ से पवित्र करके आठ बार सूर्य को स्नान कराना चाहिए, इसके बाद पके हुए ईटों से बनी वेदी को कुशयुक्त करके ॥९॥ उस वेदी पर मूर्ति को चढ़ा कर और वस्त्र पहनाकर। प्रयत्नपूर्वक उपवास करके प्रतिमा का अभिषेक करना चाहिए ॥१०॥ मस्तक पर समस्त औषधियाँ एवं आमलक चढ़ाकर सूर्य देवता के ऊपर जल छिड़कते हुए यह वाक्य कहना चाहिए-ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि देवता आपका अभिषेक करे। आकाश गंगा के जल से भरे प्रथम कलश से वे आपका अभिषेक करें ॥१२॥ हे दिवस्पति! भक्तिभाव से पूर्ण मरुत मेघ के जल से परिपूर्ण दूसरे कलश से आपका अभिषेक करें ॥१३॥ श्रेष्ठ देव लोकपाल विद्याधरगण आकर सारस्वत जल से परिपूर्ण (तृतीय) और ॥ १४ ॥ सागर जल से पूर्ण चौथे कलश से आपका अभिषेक करें ॥१५॥ नागगण कमल पराग से सुगन्धित जल से परिपूर्ण पांचवे कलश से आपका स्नान करें। हिमाचल और हैम-कूटादि पर्वत ॥ १६॥

प्रपातों के जल से परिपूर्ण छठे कलश से आपको स्नान कराएं। हे दिवस्पति! समस्त तीर्थों के जल से परिपूर्ण सातवें कलश से आकाशचारी सप्तर्षि[1] तुम्हें स्नान कराएं और आठो मंगल[2] से युक्त आठवें कलश से

१. सात ताराओं के सात ऋषि — मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ बतायें गयें हैं।

२. कुछ विद्वानों के अनुसार आठ मंगल ये हैं— मृगराज, वृष, नाग, कलश, व्यजन, वैजयन्ती, भेरी एवं दीप। अन्य विद्वानों के अनुसार ब्राह्मण, गऊ, हुताशन, हिरण्य, सर्पि, आदित्य, जल और राजा—ये आठ मंगल हैं। देखिए आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ० १३४.

वसुगण[1] आपको स्नान कराएँ ॥ १८ ॥ हे देवाधिदेव ! आपको बारम्बार नमस्कार है । इस प्रकार स्नान-कर्मविधि जाननेवाले व्यक्ति को स्नान कराने के बाद कहना चाहिए ॥१९॥ इसके पश्चात वर्धनिका[2] उठाकर जलधारा छोडनी चाहिये और 'आचमस्व' कहकर तीस बार सूर्य के सामने गिराना चाहिए ॥२०॥ इसके बाद किसी अन्य पवित्र स्थान में भली भाँति लेप करके चावल और पंचराग से चौक पूरना चाहिए ॥२१॥ पताका,तोरण, छत्र,ध्वज और माला आदि से उस स्थान को अलंकृत करना चाहिए । चित्र विचित्र मालाओं और बिखेरे गए पुष्प-समूहों से युक्त वह स्थान होना चाहिए ॥२२॥ उसके बीच में कुश के बिस्तरे पर विवस्वत अर्थात सूर्य की मूर्ति को स्थापित करके उसका आवाहन करके भक्तिपूर्वक अर्घ्य देना चाहिए ॥२३॥ सुवर्ण, मधुपर्क, पुष्पदीप और धूप आदि से सूर्य देवता की उपासना करके बछड़े सहित पवित्र लाल गाय को दान में देना चाहिए ॥ २४॥

ओम ! किरणों के स्वामी को प्रणाम है, हे सहस्रांशु ! आप मुझ पर प्रसन्न हों । इस प्रकार कहकर मन्त्र से पूजा करके वस्त्र पहनकर ॥२५॥ यज्ञोपवीत लपेटकर और चन्दन, अगुरु, कुंकुम आदि सभी गन्धों से उपलेपन करके ॥२६॥ सुगन्धित पुष्पालंकारों से अलंकृत करके और विविध प्रकार की मालाओं से अनेकशः आबद्ध करके ॥ २७ ॥ तब भक्तिपूर्वक धूप और नैवेद्य देना चाहिए ॥२८॥ अग्नि जलाकर विधिपूर्वक शान्ति करनी चाहिये और इसके बाद भलीभाँति स्नान कराई गई और मणिरत्न-विभूषित ॥२९॥ प्रतिष्ठित की गई प्रतिमा को देव-मन्दिर से ईशान दिग्भाग में अधिवासित करना चाहिए ॥ ३० ॥ बिछे हुए कुशों से युक्त और श्रेष्ठ बिछौने से ढके

---

१. वसु एक प्रकार के देवता हैं जिनकी संख्या आठ कही गई है-आप अथवा अह, ध्रुव, सोम, धर अथवा धव, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ।

२. 'वर्धनिका' से अभिप्राय एक विशेष स्वरूप के कलश से है ।

हुए भाग में पूर्व की ओर सिरहाना बनाकर पवित्र शय्या बनानी चाहिए जो अत्यधिक श्वेत वस्त्रों से ढकी हो ॥३१॥ उसी शय्या पर पहले कही गई महाश्वेता को भलीभाँति सुलाना चाहिए। दाहिने भाग में निक्षुभा को और बायें भाग में राज्ञी को स्थापित करना चाहिये ॥३२॥

दण्ड और पिंगल को पैर की ओर स्थापित करना चाहिए[1] इस प्रकार शंख के समान श्वेत उस शय्या पर सूर्य की प्रतिमा को सुलाना चाहिए ॥ ३३ ॥ रात भर चारों ओर से ब्राह्मणों, वन्दियों और गीतज्ञों द्वारा स्तवन होना चाहिए और सूर्य के प्रति भक्तिभाव से रात्रि जागरण करना चाहिए ॥३४॥ प्रभात होने पर पुन. जगाना चाहिए। विधिपूर्वक ब्राह्मणों, और याजकों को हविष्य खिलाना चाहिए ॥३५॥ स्वस्तिवाचन करने के बाद दक्षिणा इत्यादि से पूजा करके दीनों, अंधों, कृपणों, इन सबको अन्न से सन्तुष्ट करना चाहिए ॥३६॥ इसके पश्चात पिण्डिका को गर्भगृह स्थान के बीच में रखकर उसके खोखले भाग में स्वर्णनिर्मित सात घोड़ों वाला रथ स्थापित करके ॥३७॥ समस्त बीजौषधियों को विधानपूर्वक दान देकर अर्घ्य प्रदान कर मूर्ति को स्थापित करना चाहिए ॥३८॥ शंख-दुन्दुभि के घोष से और हाथ में अक्षत लेकर पुण्याहवाचन करके मन्दिर की प्रदक्षिणा करके शुभलग्न दिन मे, नक्षत्र दिन के पहले भाग, और सूर्यानुकूल क्षण में सूर्य की मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए ॥४०॥

---

१. इसी प्रकार की सूर्य-प्रतिमा का विधान **विश्वकर्मशिल्प**, उद्धरित टी०, ए० जी० राव, **ऐलीमेन्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी**, भाग १ (२) पृ० ३०२, में भी किया गया है।

२. यहाँ कृपण से अभिप्राय, असहाय दरिद्र से है जैसा कि **उत्तररामचरित**, ४.२५ में प्रयुक्त हुआ है—राजभपत्यं रामस्ते पाल्याश्च कृपणाः प्रजाः।"

प्रतिमा न अधोमुखी हो, न ऊर्ध्वमुखी, न करवट के बल हो, और न झुकी हुई हो। वह समरूप हो और सामने देख रही हो ॥४१॥ इसके बाद सूर्य की दोनों स्त्रियों को स्थापित करना चाहिये, निक्षुभा को दायीं ओर और राज्ञी को बायीं ओर ॥४२॥ पिंगल दाहिनी ओर, दण्डनायक बायीं ओर स्थापित किये जाएँ। इसके बाद पुनः विधिपूर्वक अग्नि-स्थापना करके ॥४३॥ यजमान की शान्ति के लिए शान्ति-कर्म-विधान को जानने वाला पण्डित समस्त देवताओं के लिए स्वाहा शब्द का उच्चारण करता हुआ होम कराए ॥ ४४ ॥ इसके पश्चात पहले से ही एकत्र किए गए उपहार देने की सामग्रियों द्वारा और स्तुतियों द्वारा सूर्य को सन्तुष्ट करना चाहिए। सामग्रियाँ इस प्रकार हैं—लड्डू, मालपुआ, बरा, ॥४५॥ खिचड़ी, खीर, दूध, मधु और घी-इन सामग्रियों को समस्त दिशाओं में फेंक देना चाहिए, स्तोत्रों द्वारा सूर्य की पूजा करते हुए दूध, मधु और पिघलाये हुये घी द्वारा तर्पण करना चाहिए ॥४६॥ इसके बाद विप्रों और याजकों को दक्षिणा देनी चाहिए। सूर्य का यज्ञ अत्यधिक पुण्य से प्राप्त होता है इसलिए दक्षिणा देनी चाहिए ॥४७॥ इस विधि से मेरे भक्तों द्वारा जो प्रतिमा स्थापित की जाती है वह निरन्तर वृद्धि करने वाली होती है और वहाँ मेरा सानिध्य निरन्तर रहता है ॥४८॥

चारों वर्णों[1] में जो भी सूर्य की स्थापना करता है वह सारे संसार को पार करके सूर्यलोक में आदर प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य सूर्य की

---

१. यह द्रष्टव्य है कि सौर मन्दिर बनवाने का आदेश चारो वर्णों के लिये था, शूद्र को मन्दिर आदि सार्वजनिक हित के कार्यों (अर्थात पूर्तधर्म) का अधिकार था देखिए **अत्रि**, ४६, **लघुशङ्ख**, ६, **अपरार्क** २४, काणे पी०, वी०, **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र**, भाग २ (२). पृ० १५७. । यह तथ्य मग-परम्परा के सूर्य-सम्प्रदाय की लोकप्रियता का कारण माना जा सकता है। देखिये हाजरा, **स्टडीज**, भाग, १.

स्थापना का दृश्य देखते हैं अगले सात जन्मों में वे निरोग ही पैदा होते है ॥५०॥ जो लोग गन्ध, माला और उपहार से तीन रात तक सूर्य की उपासना करते हैं वे श्रेष्ठ गति प्राप्त करते हैं ॥५१॥ सूर्य की प्रतिमा-स्थापना, अपनी हो या पराई, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देखता है वह पाप से मुक्त हो जाता है ॥५२॥ दस अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञों का फल मनुष्य सूर्य की स्थापना करके प्राप्त कर लेता है ॥ ५३ ॥ जितने दिन तक सूर्य-मन्दिर बनवाने से उस पुण्यात्मा की कीर्ति बनी रहती है, हे यज्ञ-श्रेष्ठ साम्ब ! उतने समय तक वह सूर्य-लोक में आदर प्राप्त करता है ॥५४॥ शास्त्रीय रीति से और भक्तिपूर्वक सूर्य की स्थापना करके मनुष्य प्रतिमास यज्ञ का फल प्राप्त करता है[1] इसमें कोई संशय नहीं ॥५५॥ सूर्य की एक दिन की भी पूजा से मनुष्य जो फल प्राप्त करता है वह फल न व्रत से, न उपवास से और न दान से प्राप्त कर सकता है ॥५६॥

पहले बड़े से बड़ा पाप करके भी बाद में जो सूर्य की पूजा करता है वह मनुष्य निष्पाप होकर सूर्य-लोक जा पहुँचता है ॥५७॥ जब तक वह सूर्यलोक मे रहता है तब तक सर्वसुख भोगता है ॥ ५८ ॥ इस प्रकार उस व्यक्ति को इतना सुख मिलता है। जीवों की स्थिति, संहार और जन्म का कारण बनने वाले उन सूर्य की जो सेवा करता है वह लक्ष्मी का भागीदार होता है और सौ कल्प भर सूर्य-लोक में रहता है ॥५९॥ जो व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक देवताओं का मन्दिर बनवाता है उसकी कीर्ति विशाल होती है और पीढ़ी दर पीढी बढ़ती जाती है ॥ वह दिव्य इच्छाओं को पूर्ण करता है और पृथ्वी में चक्रवर्ती होता है ॥६०॥ जो मनुष्य देवताओं की मूर्ति के लिए मंदिर बनवाते हैं मर जाने के बाद भी उनके अपरमार्थमय शरीर के नष्ट हो जाने पर भी उनका कीर्तिमय शरीर इस संसार में पर्यटन करता रहता है ॥ ६१ ॥ इस प्रकार

---

१. पूर्त-कृत्यों की महत्ता के लिये देखिये **कालिका-पुराण**, उद्धरित **कृत्यरत्नाकर**, पृ० १०.

…र्षि नारद विष्णु-पुत्र साम्ब को विधि का उपदेश देकर चले गये और साम्ब ने भी सूर्य देवता के इस श्रेष्ठ मन्दिर को अपने नाम से भक्तिपूर्वक बनवाया ॥६२॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में प्रतिमा-कल्प नामक बत्तीसवाँ अध्याय[1] समाप्त होता है।

---

१. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.१३३, १.१३५, १.१३६, १.१३७.। इस अध्याय की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिए हाजरा, वही।

अध्याय ३३

नारद बोले—अब इसके बाद श्रेष्ठ ध्वजारोपण वृतान्त[1] कह रहा हूँ। प्राचीन काल में देवासुर-युद्ध में जय चाहने वाले देवताओं ने युद्ध करने के लिए ॥१॥ अपने ऊपर चिन्ह बनाये और पवित्र वाहन बनाए जिसे कि लक्ष्म, चिन्ह, ध्वज और केतु इन पर्याय नामों से पुकारा गया ॥२॥ अब पहले कहे गये उस ध्वजा[2] का प्रमाण सुनो। पताका का बाँस वही बनाना चाहिए जो बिधा न हो, सीधा हो और चिन्हरहित हो ॥३॥ ध्वजवंश प्रमाण की दृष्टि से मन्दिर के बराबर ऊँचा होना चाहिए। ध्वजा के बांस से लटकती हुई पताका ध्वज से प्रयुक्त करनी चाहिए ॥४॥ देवमन्दिर के शिखर से तीन भाग ऊँची, उचित वस्त्र वाली, विचित्र घंटायुक्त और मनोहर होनी चाहिए ॥५॥ ध्वजा के अग्रभाग में देवता के लिंग की सूचना देने वाले उसके वाहन की आकृति सोने, चाँदी अथवा मणिरत्नों से युक्त ॥६॥ अथवा रंग से ही विचित्र होनी चाहिए जैसे विष्णु के ध्वजा पर गरुड का चिन्ह और

---

१. इस अध्याय को ७००—९५० ई० के मध्य प्रक्षिप्त किया गया माना जाता है देखिए हाजरा, आर०, सी०, **स्टडीज**, भाग १ पृ० ५७.

२. ध्वज-स्थापना की परम्परा प्राचीन भारत में अत्यधिक प्रचलित थी विस्तार के लिए देखिए बनर्जी, जे०, एन०, इन्डियन वोटिव ऐन्ड मेमोरियल कालम्स, **जर्नल आफ इण्डियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्ट (कुमारस्वामी वाल्यूम,)** भाग ५, पृ० १३-२०.

शंकर की ध्वजा पर बैल का चिन्ह ॥७॥ ब्रह्मा की ध्वजा पर कमल, सूर्य की ध्वजा पर व्योम, वरुण की ध्वजा पर हंस, कुबेर की ध्वजा पर मनुष्य ॥८॥

कार्त्तिकेय की ध्वजा पर मयूर, हेरम्ब की ध्वजा पर चूहा, इन्द्र की ध्वजा पर हाथी, यमराज की ध्वजा पर महिषा ॥ ९ ॥ दुर्गा की ध्वजा पर सिंह, इस प्रकार ध्वज की कल्पना की गई है। जो जिसका वाहन है वही उसकी ध्वजा कहा गया है ॥१०॥ इसके पश्चात विधिपूर्वक समस्त औषधियों से ध्वज को स्नान कराकर बीच में मंगल-सूत्र बाँधना चाहिए ॥११॥ पवित्र वेदी बनाकर मंगल कलशों से शोभित करके उसी वेदी पर ध्वजा को चढ़ाकर उस रात्रि में वहीं सोना चाहिए ॥ १२ ॥ नाना प्रकार के पुष्पों और रंग-विरंगी मालाओं को ध्वजा में लटका देना चाहिए और विधिपूर्वक अभ्यर्चना करके ध्वजा को धूप निवेदित करना चाहिए ॥१३॥ इसके पश्चात खिचड़ी, पुआ, माँस[1], और लप्सी, दधि, खीर और लड्डू से पूजा कार्य करना चाहिए ॥१४॥ लोकपालों को उदिष्ट करके पूजा वायु में फेंक देनी चाहिए॥ और इसी प्रकार पुण्यवाचन किये हुये ब्राह्मणों को भी भोजन कराना चाहिए ॥१५॥ बाजों की उठती हुयी ध्वनि से युक्त, जै-जैकार के शब्द से सकुल ऐसे शुभ लग्न, दिन और नक्षत्र में मन्दिर पर ध्वजा चढ़ाना चाहिये ॥१६॥

इस प्रकार जो व्यक्ति देव-मन्दिर के ऊपर ध्वजा चढ़ाता है वह निरन्तर लक्ष्मी की कृपा से बढ़ता है और श्रेष्ठ गति प्राप्त करता है ॥१७॥ ध्वज-

---

१. पूजा-कर्म में माँस का प्रयोग तान्त्रिक प्रभाव को प्रकट करता है। यह भी दृष्टव्य है कि ऊपर श्लोक ९ में गणेश का नाम हेरम्ब बताया गया है जो गणेशोपसना की तान्त्रिक परम्परा से मुख्यत: सम्बन्धित था, देखिए गेटे, अलिस, **गणेश**, ।

हीन मन्दिर में देवता कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करते हैं। ध्वज-स्थापन का मंत्र तो मूर्ति की स्थापना के प्रसंग में ही बता दिया गया है ॥१८॥ ध्वजा-रोपण का मंत्र यह है-शंकर द्वारा विनिर्मित वायु का अनुसरण करने वाले लक्ष्मी के बाहु-स्वरूप, विष्णु शत्रुओं का विनाश करने वाले है। भगवान आओ आओ निरन्तर सान्निध्य करो, मेरी शान्ति हो। मेरा कल्याण हो, मेरे समस्त विघ्न दूर हो जायें। स्वाहा..." इस प्रकार साम्ब-पुराण में ध्वजारोपण नामक तैंतीसवाँ अध्याय[1] समाप्त होता है।

---

१. तुलना कीजिए **भविष्य-पुराण**, १.१३८, १अ, २-४, २१ब-२२अ, ३४ अ, ३५-३६ अ, ३७-३८अ, ५३ अ, ४०ब, ४७, ३९अ, ४१ब, ६४-६६, ७० अ, ७१अ, ७२अ, ७३अ और ७६अ

अध्याय ३४

वशिष्ठ ने कहा—सूर्य की स्थापना के एक वर्ष पूरे हो जाने पर साम्ब ने पुनः ऋषि-श्रेष्ठ नारद से पूछा ॥१॥ साम्ब ने कहा—हे देवर्षि ! भगवान सूर्य को स्थापित किये हुए एक वर्ष पूरे हो गये, अब उनकी वार्षिक पूजा कैसे की जाये ॥२॥ नारद बोले—हे साम्ब ! जैसे पहले कहे गये विधान के अनुसार प्रतिमा-स्थापना कार्य हुआ था उसी प्रकार एक वर्ष पूरा हो जाने पर स्नान-कर्म-विधान को जानने वाला व्यक्ति तीर्थों से जल को ले आकर और अन्यान्य पवित्र जलों को भी लाकर पूर्वोक्त विधान के अनुसार प्रतिमा को स्नान कराये ॥४॥ तीर्थों के नाम जप करे और बाद में मनसा स्मरण करे कि पुष्कर, नैमिष, कुरुक्षेत्र, पृथूदक[1], ॥५॥ गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्र-भागा, नर्मदा, पयोष्णी[2], यमुना, ताम्रा, क्षिप्रा, वेत्रवती[3] ॥६॥ तथा सभी

---

१. सरस्वती के दक्षिण तट पर, एक पवित्र तीर्थ; आधुनिक पिहोवा (जिला करनाल, पंजाब) **महाभारत**, वनपर्व, ८३.१४७ के अनुसार "पृथूदका तीर्थतमं नान्यतीर्थं कुरूद्ध ।" देखिए **वामन-पुराण**, २२.४४.

२. विन्ध्यपर्वत से निकलने वाली एक नदी ताप्ती, आप्टे **संस्कृत-हिन्दी कोश**, पृ० ५७५ के अनुसार ताप्ती की सहायक नदी, पूर्णा से पयोष्णी की अभिन्नता अधिक संभव प्रतीत होती है ।

३. ये सभी तीर्थ एवं नदियाँ उत्तर भारत से सम्बन्धित है, नर्मदा और ताप्ती दक्षिण भारत की उत्तरी सीमा पर स्थित है अस्तु **साम्ब-पुराण** की रचना उत्तर भारत में, विशेषतया उसके पश्चिमी क्षेत्र में, हुई होगी । देखिए हाजरा, **अनाल्स आफ भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट**, भाग ३६ (१९५५) पृ० ७८. पाद-टिप्पणी ५.

समुद्र मेरे ऊपर कृपा करें। इस प्रकार स्नान कराकर पूजा और प्रणाम करके ॥७॥ धूप और अर्घ्य देकर प्रतिमा के पास शयन करे ॥ तीन रात, सात रात, आधा महीना अथवा एक महीना ॥८॥

इसके बाद संसार के कल्याणार्थ इसकी रथ-यात्रा[1] करानी चाहिए। रथ दर्शनीय हो और किंकिणियों के समूह से युक्त हो। समस्त ब्राह्मणों को दक्षिणा और भोजन आदि से प्रसन्न करके प्रतिमा को रथ में स्थापित करके स्थान की परिक्रमा करनी चाहिए ॥ १० ॥ इस प्रकार प्रतिवर्ष रथयात्रा करायी जाने पर प्रजाएँ भी सुख प्राप्त करती हैं और राज भी विपत्तियो पर जय प्राप्त करता है ॥११॥ समस्त जनवर्ग निरोग होता है ॥ गायों का कल्याण होता है और रथयात्रा कराने वाले भी स्वर्गलोक के भागी होते है ॥१२॥ साम्ब ने कहा—हे विप्रर्षि ! मेरे मन में यह बड़ा भारी संशय है, आप इसे बताएँ कि एक बार स्थापित की हुई प्रतिमा को फिर उखाड़े कैसे ॥१३॥ नारद बोले— प्राचीन काल में ही भगवान सूर्य का रथ बनाने के लिए विधाता ने संवत्सर[2] के ही भागों को लेकर रथ की कल्पना की। वह रथ समस्त रथों में श्रेष्ठ माना गया। उस रथ को देखकर विश्वकर्मा द्वारा और भी अनेक रथ ॥१५॥ सोम इत्यादि समस्त देवताओं के लिये अनेक बार बनाए गये ॥१६॥

---

१. जगन्नाथपुरी में रथयात्रा की परम्परा अत्यधिक लोकप्रिय है। यहां पर वर्णित रथ-यात्रा की तुलना पुरी की रथ-यात्रा से की जा सकती है। पुरी की रथ-यात्रा-विवरण के लिए देखिए, हन्टर, **हिस्ट्री आफ उड़ीसा**, भाग १, पृ० १३१-१३४.

२. तुलना कीजिए **विष्णु-पुराण**, २.८.४—"संवत्सरमयं कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम्"

वैवस्वत मनु के द्वारा वह रथ स्तवन किये जाने पर इक्ष्वाकु-पुत्र को दे दिया गया और वह रथ मानव लोक में उतर आया। रथ-यान से सूर्य का चलाया जाना कल्याणकर होता है ॥१७॥ इसलिए हे साम्ब ! सविता देवता का रथ द्वारा पर्यटन कराया जाना दोषयुक्त कार्य नहीं होता इसीलिए सूर्य रथारूढ़ होकर इस पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं ॥१८॥ हे जाम्बवती-पुत्र ! चलता हुआ सूर्य का मण्डल देखने में नहीं आता, उसकी गति अदृश्य है ॥१६॥ इसीलिए सूर्य की यह रथ-यात्रा कराई जाती[1] है ॥ हे यदुनन्दन ! अन्य देवताओं का चालन नहीं होता ॥२०॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव इत्यादि देवता एक बार विधिपूर्वक स्थापित किये जाने पर पुनः स्थान से दूर नहीं होते। इसीलिए सूर्य देवता की यात्रा रथ द्वारा करायी जाती है ॥२१॥ इस लोक में प्रजाओं की शान्ति के लिए प्रतिवर्ष सोने, चाँदी अथवा सुदृढ़ काष्ठ से बना हुआ ॥ २२ ॥ दृढ़ धुरी और चक्र से युक्त रथ बनवाना चाहिए। मनोहर ढंग से बनाये गये उस श्रेष्ठ रथ में ॥२३॥ प्रतिमा को आरोपित करके सुन्दर अश्वों को जोतना चाहिए जो कि श्रेष्ठ अश्वों के लक्षणों से युक्त हो, सुन्दर मुख वाले हों, और वशवर्ती हों ॥२४॥

वे अश्व रोली से टीके हुए हो और चामर से विभूषित हो, ऐसे अच्छे अश्वों को जोतकर रथ के आचार्य को दान देना चाहिए ॥२५॥ धूप, माला और अनुलेपन से विधिपूर्वक पूजा करके और विविध प्रकार के आहार से श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर ॥ २६ ॥ सूर्य का यज्ञ पूर्ण करना चाहिए ॥ टूटी हुयी आशा वाला और भूख से अत्यधिक पीड़ित ऐसा जो भी व्यक्ति उस रथ-यात्रा का चिन्तन करता है उसे पुण्य-लाभ होता है ॥२७॥ दान न देने वाला स्वर्ग स्थान से च्युत हो जाता है। दक्षिणा से हीन सूर्य का

---

१. यज्ञ अथवा पूजा-कृत्य दैवी कृत्य का अनुकरण मात्र है। पौराणिक मिथिकशास्त्र में सूर्य सृष्टि की रथ-यात्रा करता है उसी का अनुकरण संवत्सरी रथ-यात्रा द्वारा किया जाता है। देखिए राय, एस०,एन०, **पौराणिक धर्म एवं समाज**, पृ० ५४.

यश प्रशंसा योग्य नहीं होता है ॥२८॥ इसीलिए नाना प्रकार के अभीष्ट पदार्थों भक्ष्यों, भोज्यों और अन्नों के समुच्चय से[1] समस्त जनवर्ग को प्रसन्न करके इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए ॥२९॥ आदित्य, वसु, मरुत, अश्विनी कुमार, रुद्र, गरुड, पन्नग, नवग्रह, ॥३०॥ असुर, यातुधानु, रथासीन देवगण स्थापित दिक्पाल, लोकपाल, विघ्नकारक विनायक ॥३१॥ जगत का कल्याण करने वाले तथा अन्यान्य दिव्य महर्षि-ये सब मेरी पूजा स्वीकार करे ॥ मेरे मार्ग में विघ्न न हों, पाप न हो, मेरे शत्रु न हों, ॥३२॥

देव और भूतगण सन्तुष्ट होकर मेरे लिए सौम्य बन जायें, ॥३३॥ पवित्र वामदेव आदि ऋषियों के लिए "आकृष्णेन रजसा" इस ऋचा का पाठ करना चाहिए ॥३४॥ इसके पश्चात पुण्याह वाचन करते हुए गाजे बाजे का शब्द करते हुए मुख्य मुख्य मार्गों से रथ का पर्यटन कराने वाला व्यक्ति सुख प्राप्त करता है ॥३५॥ सूर्य की भक्ति से समन्वित पुरुषों द्वारा भी रथ ढोना चाहिए अथवा सम्यक प्रकार से आग्रह से दान दिये गये बैलो द्वारा भी ढोना चाहिए ॥ ३६ ॥ विजन मार्ग से चलते हुए जिस प्रकार धुरी और चक्के में किसी प्रकार की टूट न हो उसी प्रकार धीरे धीरे चलना चाहिए ॥३७॥ रथभंग होने पर ब्राह्मणों को भय होता है, धुरी टूटने पर क्षत्रिय को, तुला टूटने पर वैश्यों को और शमी टूटने पर शूद्रो को भय

---

१. ब्राह्मणों को भोजन कराने और दान देने की परम्परा गुप्त काल में प्रतिष्ठापित हो चुकी थी देखिए घुरे, वही, पृ० ८७; **मनुस्मृति**, १.८६.७८, १२ ५४-८०, **याज्ञवल्क्यस्मृति**, १२४३-५८ । तत्कालीन अभिलेखों के अध्ययन से भी ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों को दान देने का विधान मुक्ति का एक सहज मार्ग माना जाता था और समाज में इसका प्रचलन था देखिए भण्डारकर आर०, जी०, **ए पी इन्ट्रू दी अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया**, पृ० ५३, पाटिल, डी०, आर०, **कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दी वायु-पुराण**, १२८-१३०

होता[1] है ।।३८।। जुवा टूटने पर अनावृष्टि होती है । पीढ़ा टूटने पर प्रजाओं पर संकट आता है और रथ के चक्का टूटने पर दूसरे चक्र का आगम समझना चाहिए ।।३९।। पताका गिर जाने पर भी प्रजाओं को भय होता है और प्रतिमा के अंग-भंग हो जाने पर रानी की मृत्यु होती है ।।४०।।

सम्पूर्ण रथ के छिन्न भिन्न हो जाने पर सम्पूर्ण जनपद को भय होता है । इस प्रकार के अशुभ उत्पातों के उत्पन्न होने पर प्रारम्भ में ही ।।४१।। पूजा-कर्म करना चाहिए और उसके बाद शान्ति और होम कराना चाहिए । ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए और उन्हें दक्षिणा भी देनी चाहिए ।।४२।। रथ के पूर्वोत्तर दिशा में अग्नि की कल्पना करनी चाहिए और घी में डूबी हुई समिधाओं से अग्नि का हवन करना चाहिए ।।४३।। भलीभाँति देवताओं के लिये क्रमशः स्वाहा शब्द का उच्चरण करते हुये ग्रहों और प्रजापतियों के नामों का उच्चारण करते हुये होम करना चाहिये ।। ४४ ।। सर्वप्रथम अग्नि के लिये स्वाहा, तदनन्तर सोम के लिये स्वाहा, प्रजापति के लिये स्वाहा-इस प्रकार आहुतियां देनी चाहिये ।।४५।। विप्रों का कल्याण हो, राजा का कल्याण हो, वैश्यों का कल्याण हो, प्रजाओं का कल्याण हो और जगत की शान्ति हो ।।४६।। मनुष्यों को शान्ति मिले, चतुष्पद जीवों को शान्ति मिले, प्रजाओं को शान्ति मिले और मेरी पवित्र आत्मा में शान्ति हो ।।४७।। पृथ्वी शान्त हो, हे देवश ! भुवर्लोक की शान्ति हो, स्वर्लोक की शान्ति हो, सर्वत्र हम लोगों की शान्ति हो ।।४८।।

हे प्रभो ! तुम्हीं जगत के स्रष्टा हो, पोषक हो, हे दिवस्पति । प्रजाओं

---

१. सामाजिक स्तर-विन्यास भारतीय जाति-व्यवस्था की विशेषता रही है । इस विवरण में समाज के चारों वर्णों के लिये भय के भिन्न कारणों को प्रकट कर सामाजिक असमानता एवं स्तर-विन्यास की भावना की ओर संकेत किया गया है । देखिये घुरे, **कास्ट, क्लास ऐन्ड अकूपेशन**, ७४.

को पालो, शान्ति दो ।।४६।। और भी मैं तुम्हें शान्ति के श्रेष्ठ कारण बताऊँगा जो कि यात्रा के कारणभूत स्वयं जन्मा सूर्यदेवता के लिए हैं ।।५०।। ग्रहों को दुष्ट मानकर उनकी भी शान्ति करनी चाहिये। अर्क की शान्ति के लिए मन्दार की, चन्द्रमा की शान्ति के लिए पलाश की, ।।५१।। मङ्गल की शान्ति लिये खादिर की, बुद्ध की शान्ति के लिये अपामार्ग (एक बूटी) की, गुरू की शान्ति के लिये पीपल की, शुक्र की शान्ति के लिए गूलर की ।।५२।। शनैश्चर की शान्ति के लिए शमी की, राहु की शान्ति के लिये दूब की और केतु की शान्ति के लिए कुश की समिधा[1] में यज्ञ करना चाहिये। अब दक्षिणा भी सुनो ।।५३।। सूर्य के लिए उत्तम धेनु, चन्द्रमा के लिये शंख, मङ्गल के लिये लाल ऊन, बुध के लिए सोना ।।५४।। गुरु के लिए पीले वस्त्र, शुक्र के लिए श्वेत घोड़ा, शनैश्वर के लिए काली गाय, राहु के लिये खाड़ की खीर, ।।५५।। केतु के लिए बकरा देना चाहिए। अब इनके भोजन सुनो— सूर्य के लिए गुड़ और चावल, सोम के लिए घी और खीर ।।५६।।

मङ्गल के लिये हविष्यान्न, बुद्ध के लिये दूध वाले अन्न, गुरु के लिए दही और चावल, शुक्र के लिये घी का भोजन और शनैश्चर के लिए पिसा हुआ तिल ।।५७।। और उड़द, राहु के लिये[2] मांस और केतु के लिए हल्दी से रंगा पीला भात देना चाहिए[3] ।।५८।। जैसे बाण के प्रहारों को रोकने

१. नव गृह-शान्ति के लिये इन्हीं समिधाओं का विधान **मत्स्य-पुराण** ९३, २७-२८ भी में किया गया है। काणे, वही (हिन्दी सं०) ५, ३५१-५६.

२. श्राद्ध में पितृों के लिये और पूजा में देवी के लिए मांस की बलि का विधान था देखिये **मार्कण्डेय-पुराण**, २९.२, ८९.२०, देसाई, एन० वाई०, **ऐन्सियन्ट इण्डियन सोसाइटी, रेलीजन ऐन्ड माईथालाजी ऐज डिपिक्टेड इन दी मार्कण्डेय-पुराण**, पृ० ५५.

३. नव ग्रहों के भोजन का विधान **मत्स्य-पुराण**, ९३.१९.२० में इसी प्रकार किया गया है। **मत्स्य-पुराण** में भी राहु के लिए मांस का विधान किया गया है। तुलना कीजिए **धर्मसिन्धु**, पृ० १३५.

वाला कवच होता है उसी प्रकार दैवी उपघातों के वारणार्थ शान्ति हुआ करती है ॥५९॥ जो अहिंसक है, शान्त है, धर्मपूर्वक धन कमाए हुए हैं, नियम से रहने वाले[1] हैं ग्रह सदैव उनके ऊपर कृपा करते हैं ॥६०॥ गायो, राजाओं और विशेष करके ब्राह्मणों[2] के पूजे जाने पर ग्रह सम्मानित करते है और उनके अपमानित होने पर भस्म करते हैं ॥६१॥ जैसे फेंका गया यंत्र मन्त्र द्वारा ही पीछे लौटा दिया जाता है उसी प्रकार उठी हुई पीड़ा को ग्रहों की शान्ति से रोक देना चाहिए ॥ ६२ ॥ यज्ञ करने वाले, सत्य वचन वाले, नित्य व्रतोपवास करने वाले, और जप-होम में लगे हुए व्यक्तियों की ग्रहपीड़ा-शान्ति हो जाती है ॥६३॥ इस प्रकार प्रजाओं की शांति करके और स्वस्तिवाचन करके पुनः सूर्य-रथ बनाकर परिक्रमा करनी चाहिए ॥६४॥

बचे हुये मार्ग को इसके बाद पार करके मन्दिर में पहुँचना चाहिये और प्रतिमा को रथ से उतारकर उसी प्रकार मण्डल में स्थापित कर देना चाहिये ॥६५॥ इसके बाद चौथे दिन सूर्य का विश्रमण करना चाहिए। धूप, माला और उपहार सामग्री से पुनः मण्डल में उपासना करनी चाहिए। ॥६६॥ इस प्रकार जो कोई मनुष्य सूर्य के लिये यह विधि करता है वह

---

१. यहाँ पर नैतिक जीवन पर जोर दिया गया हैं। पौराणिक धर्म-साधना की एक अभिन्न कड़ी इसकी नीति-परक विचार धारा थी देखिए हाजरा, **स्टडीज इन दी पुराणिक रेकर्डस आन हिन्दू राइट्स ऐण्ड कस्टम्स**।

२. गाय, राजा और ब्राह्मण के प्रति आदर भारतीय सामाजिक जीवन का अभिन्न विश्वास बन गया था देखिए **दी स्ट्रगिल फार इम्पायर** पृ० ४९३, द्रष्टव्य विज्ञानेश्वर, अपरार्क (**याज्ञवल्क्यस्मृति**, ३. २६४-६५), **प्रायश्चित प्रकरण**, २८-३३.

असंख्य वर्षों तक सूर्यलोक में आदर प्राप्त करता है ॥६७॥ उसके कुल में कोई भी दरिद्र या रोगी नहीं पैदा होता ॥ ६८ ॥ वर्ष पूर्ण होने पर सूर्य की यात्रा के दिन यदि किसी कारण से रथयात्रा न हो सके ॥ ६९ ॥ तो फिर बारहवें वर्ष में कर देनी चाहिये, बीच में फिर नहीं करनी चाहिये। इसके बाद शान्ति-कर्म[1] करके शुभाकांक्षी व्यक्ति को हवन करना चाहिए ॥ ७० ॥ इसी प्रकार इन्द्रध्वजा का भी यदि उत्थापन न किया जाये तो बारहवें वर्ष ही कराना चाहिए, बीच में नहीं ॥ ७१ ॥ इस प्रकार देवर्षि नारद विष्णु-पुत्र साम्ब को उपदेश देकर चले गये। और उन्होंने भी शरणागत वत्सल भगवान सहस्रांशु की रथ-यात्रा को सम्यक रूप से सम्पन्न किया। इस प्रकार साम्ब-पुराण में देव-यात्रा नामक चौतीसवाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. शान्ति-कर्म के विस्तार के लिए देखिए **बृहत्संहिता**, ४४; **कौशिकसूत्र** १३.९३.१३६; **मदनरत्न**, शान्ति खण्ड; **कृत्यकल्पतरु**, शान्ति-पौष्टिककाण्ड; **अद्भुतसागर**; **शान्तिकमलाकर**; **शान्तिमयूख**, **अग्नि-पुराण**, २६३-७-८.

२. श्लोक संख्या १-३, १० ब तथा ७२ को छोड़ यह सम्पूर्ण अध्याय **भविष्य-पुराण**, १.५५-५८ में संग्रहीत है। इस अध्याय को मूल भाग का ही अंश माना जाता है देखिए हाजरा, दी साम्ब-पुराण, ए सोर वर्क आफ डिफरेन्ट हैन्ड्स, **अनाल्स आफ भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट**, भाग ३६ (१९५५) पृ० ९२.

अध्याय ३५

वशिष्ठ बोले—राजन ! मैं पुनः आप से संक्षेप में यात्रा की विधि को बता रहा हूँ जो कि साम्ब के प्रति अनुग्रह भाव के कारण देवर्षि नारद ने कही थी ॥१॥ रथ पर देवगणों के स्थित रहने पर जिस देवता का जो कार्य है वह मैंने बताया ॥ २ ॥ बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि उस देवता को मन से ही आकाश और पृथ्वी में स्थापित करे जैसा कि पहले बताया गया है ॥३॥ इसी प्रकार राज्ञी जो कि आकाश है और निक्षुभा जो कि पृथ्वी है, इन दोनों देवियों से भी सूर्य को युक्त करना चाहिए। ४॥ दण्डि और पिंगल आदि को रथक्रम से अलग अलग करना चाहिए। इस प्रकार समुचित स्थान में देवता का मन से स्मरण करना चाहिये ॥ ५ ॥ दिक्पालों और लोकपालों को भी मन से ही कल्पित कर लेना चाहिये । सूर्य देवता समस्त देवमय है ॥६॥ उनके ऋचाओं से युक्त मण्डल गायत्री, त्रिष्टुभ, जगती, अनुष्टभ ॥७॥ पंक्ति, बृहती और सप्तमी उष्णिक[1] इस प्रकार छन्दो के वेदमय होने के कारण ॥८॥

---

१. गायत्री में छः वर्णों के चरण वाले वृत्त होते है। त्रिष्टुभ में ग्यारह वर्णों के चरण वाले वृत्त होते हैं। जगती में बारह वर्णों के चरण वाले वृत्त होते हैं। अनुष्टुभ में आठ वर्णों के चरण वाले वृत्त होते हैं। पङक्ति मे दस वर्णों के चरण वाले वृत्त होते है। बृहती मे नौ वर्णों के चरण वाले वृत्त होते हैं। उष्णिक में सात वर्णों के चरण वाले वृत्त होते है। विस्तार के लिये देखिए इ०, वी०. आरनाल्ड, **वैदिक मीटर**, कैम्ब्रिज, १९०५ तथा केदारभट्ट, **वृत्तरत्नाकर** बम्बई १९०८ ।

रथ यात्रा में ब्रह्मवादी, उपवास-परायण ब्राह्मणों द्वारा सूर्य का वहन कराना चाहिए ॥९॥ इस प्रकार आचरण करने से कल्याणमयी शान्ति होगी। समस्त देवताओं के नायक सूर्य है ॥१०॥ रथों के विन्यास में और देव-मन्दिर में ॥११॥ सर्वप्रथम सूर्य की पूजा करके, दिग्देवताओं और सेवकों की पूजा करता हुआ व्यक्ति लक्ष्मी द्वारा उपासित होता है ॥१२॥ पहले सूर्य को न समर्चित करके जो दूसरों की पूजा करता है अज्ञान के कारण किये गये उसके पाप को देवता नहीं ग्रहण करते है ॥१३॥ यात्रा-काल के अवसर पर सूर्य के दीक्षित किये गये शरीर को जो देखेंगे भक्तिपूर्वक वे निष्कलंक हो जायेंगे ॥१४॥ पूर्णिमा और अमावस्या तिथियों में दान[1] देना अत्यंत पुण्यकारक होता है। इसी प्रकार आषाढ़, कार्तिक और माघ की पूर्णिमाएँ भी पवित्र होतीं हैं ॥१५॥ तिथियों का पवित्र महत्त्व शास्त्रों में कहा गया है और विशेष रूप से वह महत्त्व कार्तिकी पूर्णिमा[2] का है जिसे कि महाकार्तिकी कहा जाता है ॥१६॥

इस प्रकार काल के समायोग वश उसका भी महत्त्व बढ़ जाता है। ऐसे अवसर पर सूर्य के दर्शन से समस्त पापों को हरण करने वाला, श्रेष्ठ पुण्य

---

१. सूर्य के सम्मान में कुछ तिथियों में दान देना और व्रत रहना श्रेयस्कार माना जाता है देखिए **मत्स्य-पुराण**, ७४ ७९., काणे, पी०, वी०, **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र**, भाग २, (२). पृ० ७०५-७४०. राय, एस० एन० अर्ली पुराणिक एकाउन्ट आफ सन ऐण्ड सोलर कल्ट, **इलाहाबाद यूनीवर्सीटी स्टडीज** (१९६३-६४)।

२. तुलना कीजिए हेमाद्रि **चतुर्वर्गचिन्तामणि**, व्रतखण्ड. २-७६९-७८४ **मनु** ४.१५०, **विष्णु धर्मसूत्र** ७१.८९. **कृत्यरत्नाकर**, ३९७-४४२; **वर्षक्रिया कौमदी**, ४५३-४८१; **निर्णयसिंधु**, १९२-२०८; **कृत्यसार समुच्चय**, २०-२६; **स्मृतिकौमुदी** ३५८-४२७; **स्कन्द-पुराण**, वैष्णवकाण्ड, ९, **नारदीय पुराण**, उत्तरार्ध; २२ **पद्मपुराण**, ६.९२।

होता है ॥१७॥ ऐसे अवसर पर व्रत धारण करके, उपवास करके जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक सूर्य की पूजा करता है वह श्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है ॥१८॥ यह यज्ञपुरुष सूर्य देवता लोकानुग्रह की आकांक्षा से प्रतिमा में स्थित होकर सदैव मनुष्यों द्वारा पूजित होता है ॥१९॥ स्नान, दान, जप, होम, देवकर्म के संयोग से और सिर मुड़ाकर मनुष्य दीक्षित हो जाता है ॥२०॥ सूर्यभक्त पुरुषों द्वारा सदैव केशों को मुड़ाये रहना चाहिए ॥ इसी प्रकार सूर्य के यज्ञ में मनुष्य पवित्र और दीक्षित होता है ॥ २२ ॥ चारों ही वर्णों में जो मनुष्य भक्तिपूर्वक दीक्षित होकर इस प्रकार नित्य सूर्य की उपासना करेंगे वे महात्मा व्रत पार करके श्रेष्ठ गति प्राप्त करेंगे ॥२२॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण का पैंतीसवाँ अध्याय[1] समाप्त होता है।

---

१. श्लोक १ब और २ब के अतिरिक्त समस्त अध्याय भविष्य-पुराण १.५८. २२ब, २३-२९, ३०ब-३१अ, ३२ब-३७अ और ३८-४५ में संग्रहीत है अस्तु इस अध्याय की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य रक्खी गई है देखिए. हाजरा, वही.

अध्याय ३६

बृहद्बल ने कहा ।। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! यह मैंने पवित्र रथयात्रा का वर्णन सुना, अब हे सुव्रत ! आप मुझे अग्नि की धूप-विधि बताएं ।। १ ।। वशिष्ठ बोले—हे राजन ! अब इसके पश्चात मैं अग्नि की धूप-विधि आपको बताऊँगा ।। इसी तरह स्नान, आचमन, और अर्घ्यदान की विधि[1] बताऊँगा ।।२।। सर्वप्रथम मिट्टी मलकर, तीन बार स्नान कर दो निर्मल वस्त्र पहनकर विधिपूर्वक सावित्री द्वारा आचमन करे ।।३।। जल में खड़ा हुआ बुद्धिमान व्यक्ति कभी आचमन न करें, जल से बाहर निकलकर ही आचमन करना चाहिए। समाहित चित्त होकर विधिपूर्वक सावित्री द्वारा आचमन करना चाहिए ।।४।। जलराशियों में सूर्य, अग्नि, नाग और देवी सरस्वती का निवास होता है इसलिये बाहर निकलकर ही आचमन चाहिए। जलाशय नष्ट नहीं करना चाहिये ।।५।। पवित्र स्थान पर बैठकर एक चित्त होकर पूर्व अथवा उत्तर

---

१. देव-पूजा में स्नान, आचमन, पुष्पदान, जप, गुग्गुल की आहुति, आवाहन और अर्घ्य, धूपदान आदि का उल्लेख इस अध्याय में किया गया है। **विष्णुधर्मसूत्र**, ६५ तथा **बौद्धायन-धर्मसूत्र**, २.१७ में देव-पूजा के इन उपचारों का विष्णु और शिव के संदर्भ में उल्लेख किया गया है **वीर० पूजा-प्रकाश**, पृ० ६७-१४६ में इन विधियों का विस्तृत विवरण देखा जा सकता है, देखिए **अपरार्क** पृ० १४०-४१, **स्मृतिचन्द्रिका**, पृ० १६१, **नित्याचार-पद्धति**, पृ० ५३६-३७. **संस्काररत्नमाला**, पृ० २७, **ऋग्विधान** ३.३१. ६-१०.

की ओर मूँह करके पैर धोकर और दोनों हाथों को घुटनों के भीतर करके आचमन करना चाहिए ॥६॥ शुद्ध, शान्त और प्रसन्न भाव से तीन बार जल पिये और दो बार हाथ धोये और तीन बार पुनः जल छिटकारे ॥७॥ क्रमशः मस्तक, नेत्र और हृदय को स्पर्श करके सूर्य को नमस्कार करके शौच के लिए इच्छुक व्यक्ति शुचिता को प्राप्त करे ॥८॥

जो नास्तिक व्यक्ति अज्ञानवश बिना आचमन किये यह क्रिया करता है उसकी वह क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं इसमें कोई संशय नहीं है ॥९॥ वेदों में ऐसा समर्थन किया गया है कि देवगण पवित्रता की अपेक्षा करने वाले होते हैं देवता लोग नास्तिक और अपवित्र लोगों को सदैव दूर रखते हैं ॥१०॥ ऋषि और पितृगण और भी पवित्र व्यवहार वाले हैं। वे शौच की प्रशंसा करते हैं क्योंकि शौच से ही ज्ञान बढ़ता[1] है ॥११॥ आचमन करने के बाद मौन साधे हुए श्वास को अन्दर करने के निमित्त ही वस्त्र से प्राण को ढक कर मन्दिर में प्रवेश करना चाहिए ॥१२॥ बालों की नमी दूर करने के लिए सिर को ढंककर नाना प्रकार के पवित्र पुष्पों से सूर्य की पूजा करनी

---

१. पवित्रता, शुचिता, स्वच्छता व्यक्तियों के लिये अनिवार्य धर्म वैदिक, पौराणिक तथा आगम साहित्य में बताया गया है। योग-दर्शन के अनुसार मोक्ष के लिये प्रज्ञा, प्रज्ञा के लिये अष्टांग मार्ग आवश्यक है इस अष्टांग मार्ग में नियम के अन्तर्गत प्रथम अंश शौच है जिसके दो भेद बताये गये है शारीरिक और मानसिक शुद्धि-देखिए, दत्त और चटर्जी, **भारतीय दर्शन**, पृ० १९२-९३। यह द्रष्टव्य है कि पूजा-विधि में पवित्रता को महत्त्व दिया गया है जो सौर धर्म के नीतिपरक स्वरूप को प्रकट करता है देखिए श्रीवास्तव, **सन-वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**, पृ० ५३-५४, २६६, पाद-टिप्पणी, ४२५.

चाहिए ।।१३।। संहिताओं में विद्यमान मन्त्र[1] से जप करे। जप करने के पश्चात अग्नि को सर्वप्रथम गुग्गुल की आहुति के रूप में धूप देना चाहिए ।१४।। इसके पश्चात पुष्पांजलि लेकर सूर्य के मस्तक पर उसे चढ़ाकर इस मंत्र का पाठ करना चाहिए ।।१५।। "व्रती देवता मनुष्य और समस्त पितृगण व्रत करने वाले व्यक्ति की वृद्धि करते है इसलिए जो तेजस्वियो में प्रथम है, अजन्मा है, उस सूर्य की शरण में हम जाते हैं" ।।१६।।

इस प्रकार पाँच जपों में पाँच धूप वेलाएँ बताई गई हैं और महाविद्याओ मे जो पाँच बताई गई हैं उन्हें मैं पुनः क्रम से कहूँगा ।।१७।। दण्डनायक वेला उसे कहते हैं जो प्रदोष काल मे तारकों के दर्शन होते ही हो। रात्री वेला भोर में जाननी चाहिए ।।१८।। सूर्य के दर्शन से लेकर आधा उदित होने पर, आकाश के मध्य स्थित होने पर और अस्तंगत होने पर इन तीनो बेलाओं में सूर्य की पूजा करनी चाहिए ।।१९।। पूर्वान्ह में मिहिर के लिए, मध्यान्ह में ज्वलन (अग्नि) के लिए और सायं वेला में वरुण के लिए पूजा करनी चाहिए[2] ।।२०।। रक्त चन्दन मिश्रित पदार्थ, सुगन्धित जलयुक्त पदार्थ

---

१. यह द्रष्टव्य है कि यहाँ पर वैदिक मन्त्रों के माध्यम से ही जप का विधान किया गया है जो मग-परम्परा को वैदिक परम्परा के अनुकूल बनाने की दिशा मे एक सफल प्रयास था। देखिए हाजरा, **स्टडीज**, भाग १ पृ० ३२, तुलना के लिए देखिए विष्णु-पूजा का वैदिक मन्त्रों द्वारा विधान, **विष्णुधर्मसूत्र**, ६५.

२. सूर्य की पूजा पूर्वान्हि, मध्यान्ह और सायं तीन बार वैदिक काल से ही की जाती थी द्रष्टव्य **ऋग्वेद**, २.२७.८, ५.७६.३; ८.२२.१४, **ऐतरेय ब्राह्मण**, ३.४४ **कौषीतक उपनिषद**, २.७ श्रीवास्तव, **सन-वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**, पृ० १७०-'७१

पद्म, करवीर तथा लाल[1] कमल ।।२१।। रोली, जल, कुरुटक, गन्ध इत्यादि और भी अन्यान्य वस्तुयें तांबे के पात्र में रखकर समर्पित करना चाहिये ।।२२।। इसके पश्चात पुनः धूप, तदन्तर मंत्रोच्चारण सहित गुग्गुल की आहुति देनी चाहिए और इसके बाद पूजा का पात्र लेकर सूर्य का आवाहन करना चाहिए ।।२३।। हे सहस्त्रांशु ! हे तेजोराशि ! हे जगत्पति ! आइए। हे दिवाकर ! मुझ भक्त को ग्रहण कीजिए, मुझ पर कृपा कीजिए ।।२४।।

इस मंत्र से आवाहन करके और घुटने के बल पृथ्वी पर बैठकर सूर्य को अर्घ्यदान देना चाहिए और इस आदित्य-हृदय-स्तोत्र का जप[2] करना चाहिए ।।२५।। ओम भगवान आदित्य को नमस्कार है जो वरिष्ठ है, वरेण्य है, और ब्रह्म-लोक के एकमात्र कर्त्ता हैं ।। ओम ईशान, पुरातन और पुराण पुरुष सूर्य को प्रणाम है ।।२६।। ओम जो सोम स्वरूप हैं, ऋक् यजुष, साम और अथर्व स्वरुप है उस सूर्य को नमस्कार है ।। २७ ।। ओम भूलोक, ओम भुवर्लोक, ओम स्वर्लोक, ओम महालोक, ओम जनलोक, ओम तपोलोक ओम सत्यलोक ब्रह्मस्वरूप आदित्य के लिये स्वाहा ।।२८।। इसके पश्चात पहले सावित्री से पवित्र होकर बाद में जल से पवित्र होकर धूप के पात्र को ऊपर उठाना चाहिए ।।२९।। और इस (गायत्री) मंत्र का उच्चारण करना चाहिए। सविता देवता का वह श्रेष्ठ तेजस जो भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक में व्याप्त है हमारी रक्षा करें और हमारी बुद्धि को सन्मार्ग

---

१. भारतीय देव-पूजा में विभिन्न देवताओं के लिए विशेष पुष्पों का विधान किया गया था देखिये **वृद्धहारीत**, ७, पृ० ५३-५६; **वृद्धगौतम**, पृ० ५६३, **मदन-पारिजात**, पृ० ३०३.

२. सूर्य के सम्मान में विहित द्वादश नमस्कारों से तुलना कीजिए काणे, पी०, वी०, **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र**, भाग (२) पृ० ७३५-७३६. हेमाद्रि, व्रत, २५२६, **कृत्यकल्पतरु**, १९-२०.

में प्रेरित करे[1] ॥३०॥ इसके पश्चात इस ऋचा का पाठ करते हुए धूप निवेदित करना चाहिए ॥३१॥ हे सूर्य देवता ! आप रुद्रों और वसु देवताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं, पुरातन हैं, शाश्वत हैं, आकाश में देवताओं की वाणी द्वारा स्तवन किये गये हैं ॥३२॥

पूर्वान्ह मे इस मन्त्र से और मध्यान्ह में भी इसी मंत्र से धूप देना चाहिये ॥ ३३ ॥ ओम ज्वाला रूपी माला वाले उस सूर्य देवता को नमस्कार है, वह विष्णु का परम पद है जिसे बुद्धिमान व्यक्ति सदैव देखा करते है ॥ सायं वेला में इस मंत्र से धूप निवेदित करना चाहिए ॥३४॥ ओम वरुण को नमस्कार है। अंधकारमय आकाश से चलता हुआ देवताओं और मनुष्यों में प्रवेश करता हुआ सुनहरे रथ से सूर्य देवता भुवनों को देखता हुआ जा रहा है ॥३५॥ इस प्रकार सूर्य को धूप-दान देकर भोजक[2] को चाहिये कि धूप को उठाए हुए ही मन्दिर के गर्भगृह में प्रवेश करें ॥३६॥ मन्दिर में प्रवेश कर प्रतिमा को धूप निवेदित करना चाहिये ॥ और इस प्रकार मंत्रोच्चारण सहित नित्य मिहिर अर्थात सूर्य को धूप देना चाहिए ॥३७॥ इसके बाद राज्ञी को प्रणाम करके निक्षुभा को बारम्बार नमस्कार करना चाहिए ॥ तदन्तर दण्डनानक और पिंगल को नमस्कार करना चाहिये ॥३८॥ इसके पश्चात तोष को, कल्माष को और गरुड को नमस्कार

---

१. गायत्री-मंत्र के महत्त्व एवं स्वरुप के लिये देखिए श्रीवास्तव, विनोद चन्द्र, दी ओरिजनल नेचर ऐण्ड सिग्नीफिकेन्स आफ सविश्र इन ऋग्वैदिक रेलीजन, **जर्नल आफ आन्ध्र हिस्टारिकल रिचर्स सोसाइटी,** भाग २६, काणे, वही, भाग २ (१) पृ० ३०२-३०३.

२. स्टेटनक्रान वही, पृ० २७६ के अनुसार "भोजक" शब्द मूलरूप में नहीं था, प्रकाशक ने **भविष्य-पुराण** के प्रभाव में आकर "भोजक" शब्द को डाल दिया।

करना चाहिये। तदन्तर प्रदक्षिणा[1] करता हुआ दिग्देवताओं को धूप निवेदित करनी चाहिये ॥३९॥ इसके बाद दण्डी को और तत्पश्चात रेवन्त के अनुचर को धूप दिखानी चाहिये। पूर्व दिशा की ओर से इन्द्र को, दक्षिण दिशा की ओर से यम को ॥४०॥

पश्चिम दिशा की ओर से जलेश वरुण को और उत्तर दिशा की ओर से कुबेर को और उत्तर ही दिशा की ओर से सोम को धूप निवेदित करनी चाहिये ॥४१॥ सौमनस श्रृंग पर ईशान के लिये धूप देना चाहिए। अग्नि के लिए ज्योतिष्क श्रृंग पर और चित्रसंज्ञक श्रृंग की ओर पितरों को देना चाहिए ॥४२॥ इसके बाद वायु देवता को चन्द्रमास श्रृंग पर धूप देकर मध्य स्थान में नारायण नाम वाले परमात्मा सूर्य को धूप देनी चाहिए ॥४३॥ आदित्य, रुद्र, मरुत, अश्विनीकुमार जो भी आकाश में रहने वाले देवता हैं उन सबको भी नित्य नमस्कार करना चाहिए ॥४४॥ इस प्रकार सबका नामोद्देश करके और सबको धूप दिखाकर[2] जहाँ से धूप उठाई गई थी वहीं पुनः उसको छोड़कर ॥४५॥ सूर्य देवता को गोपनीय स्थितियों से समर्पित करके इस प्रकार विज्ञापित करना चाहिये—हे भगवान ! विभावसु ! भक्ति पूर्वक यथाशक्ति मैंने आपकी समर्चना की है ॥ ४६ ॥ हे नाथ ! अब आप मुझे इहलोक और परलोक संबंधी कार्य-सिद्धि प्रदान करें। इस प्रकार तीन संध्या वेलाओं में स्नान करके जो दत्तचित्त होकर विधिपूर्वक पूजा करता है। वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है ॥४७॥ ऊपर बताए इस धूप-कर्म-विधि को जो नित्य इसी प्रकार करता है वह पुत्रवान और निरोग होकर सूर्य में विलीन हो जाता है ॥४८॥

---

१. नमस्कार और प्रदक्षिणा अनेक अधिकारियों के अनुसार एक ही उपचार माना जाता है, काणे, वही, भाग २, (१), पृ० ७३५.

२. धूपविधि के विस्तार के लिए देखिए वीर०, पूजा-प्रकाश, ९७-१४९.

विधिपूर्वक बताई गई क्रियाओं को यत्नपूर्वक करते हुए व्यक्ति के समस्त कर्म सिद्ध और सफल हो जाते हैं ॥४९॥ श्रेष्ठ पुष्प दान देना चाहिए, पुष्प की पत्ती ले आना चाहिए, पत्ती न हो तो धूप, धूप न हो तो जल ले आना चाहिए ॥५० ॥ और यदि कुछ न हो तो सामने गिरकर पूजा मात्र करनी चाहिए और जो झुकने में भी समर्थ न हो तो मन से ही पूजा करनी चाहिये[1] ॥५१॥ द्रव्य की संभावना न रहने पर पूजा की यह विधि बताई गयी है और द्रव्य की संभावना रहने पर सब कुछ ही उपहार रूप में प्रदान करना चाहिए ॥५२॥ पुष्प और धूप में जो मन्त्र इत्यादि अभी कहे गये है उनके उच्चारण अथवा स्मरण मात्र से सूर्य उन पर प्रसन्न हो जाता है॥५३॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में छत्तीसवाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. देव-पूजा के १६ अथवा १८ उपचारों का उल्लेख पुराणों और निबन्धों में हुआ है किन्तु यह भी निर्देश दिया गया है कि वस्त्र, अलंकार आदि सम्भव न हो तो केवल पाद्य से नैवेद्य तक १० उपचारों को ही करना चाहिए, यदि यह भी सम्भव न हो तो गन्ध से लेकर नैवद्य तक की पंचोपचार पूजा की जानी चाहिए, यदि यह भी सम्भव न हो तो केवल पुष्प से पूजा करनी चाहिए देखिए **नित्याचारपद्धति**, पृ० ५४९ जयवर्मन द्वितीय के मानधाता अभिलेख में पंचोपचार पूजा का उल्लेख किया गया है, **इपीग्राफिया इण्डिका**, ९, पृ० ११७, ११९ **संस्काररत्नमाला**, पृ० २७ में भी इसी प्रकार का विधान मिलता है यह द्रष्टव्य है कि **साम्ब-पुराण** में देव-पूजा को इतना सरल बना दिया गया है कि पुष्पादि के अभाव में केवल आत्मसमर्पण द्वारा मन से पूजा का विधान बताया गया है।

२. इस अध्याय की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिए हाजरा, वही श्लोक १-४ब, १०ब-११अ. ३० और ४० ब-४४ को को छोड़कर यह सम्पूर्ण अध्याय **भविष्य-पुराण**, १.१४३.५-ब १३, १४ब—४१अ और ४६-५५ अ में ग्रहण किया गया है।

अध्याय ३७

वशिष्ठ बोले—अब मैं आगे क्रमशः वह शास्त्रीय विधान बताऊँगा जिससे कि सूर्य के लिए अग्नि में धूप दिया जाता है ॥ १ ॥ पवित्र अग्नि को सूर्य कहा गया है[1] और वायु उसका पुत्र बताया गया है ॥ चूँकि वह अग्नि सदैव सूर्य के समीप रहने वाली है इसीलिए वह पवन के भी समीप रहती है ॥२॥ इसलिए अग्नि के तेज को उत्थापित करके सूर्य को धूप निवेदित करना चाहिए। विधिपूर्वक अग्नि का उत्थापन करके पवित्र स्थान में उसे निविष्ट करके ॥३॥ मंत्रोच्चारण सहित रवि देवता को निरन्तर प्रसन्न करे। शमी अथवा पीपल की अरणी[2] में वायु ॥४॥ को मंथन करके अग्नि को पैदा करे और पंखे से हवा करे, तत्पश्चात कुश[3] से सूर्य की मूर्ति का चित्र बनाकर विधिपूर्वक अग्नि की संस्थापना करे ॥५॥ इसके पश्चात स्रुच और

---

१. सूर्य एवं अग्नि की एकात्मकता के लिए देखिए मैकडानल, **वैदिक माइथालाजी**, पृ० ९३-९४. द्रष्टव्य है कि सूर्य एवं अग्नि के संयुक्त स्वरूप की पूजा मग-परम्परा की एक विशेषता थी। देखिए मोल्टन, **अर्ली जोरोष्ट्रियानिज्म**, पृ० १८२-२१३.

२. यज्ञाग्नि प्रज्वलित करने के लिये लकड़ी की दो समिधायें-आप्टे, **संस्कृतहिन्दी-कोश** पृ०, ९१.

३. दर्भ एक प्रकार का कुशाघास जो यज्ञानुष्ठानों के अवसर पर प्रयुक्त किया जाता है देखिए **शाकु**०, १.७, **रघु**०, १९.३१, **मनुस्मृति**, २.४३, ३.२०८, ४.३६.

स्रुव[1] इन दोनों प्रणीता और आज्यभाजन[2] को पोंछकर अग्नि से स्पर्श कराये और कुश से अग्नि का स्पर्श करे ॥६॥ हाथों में कुश लेकर पहले घृत छोड़े । न तो अग्नि को मुंह से फूंके और न ही पैर सेके ॥७॥ न ही अग्नि को नीचे रखे और न ही उसे लाँघे । जब अग्नि भली भांति बढ़ जाए तब अग्नि में होम करना चाहिए ॥८॥

यज्ञ की लकड़ियों को अग्नि-कुंड की माप के प्रमाणानुसार ही रखना चाहिए । ईंधन प्रमाणानुसार देवदारु का होना चाहिये ॥९॥ पलाश, मदार, चिचड़ा, शमी, पीपल, विकंकत, ॥१०॥ गूलर, बेर, चन्दन, सरल, देवदारु, शाल और खदिर —ये जो यज्ञ के लिये उचित लकड़ियाँ बताई गई हैं प्रमाणानुसार इनकी मात्रा अधिक भी हो सकती है ॥११॥ समिधा के लिए ये वृक्ष अत्यंत प्रशंसनीय बताये गये हैं । इसी प्रकार श्लेषमातक (लिसोड़े का पेड), नक्तमाल[3], कैथा, सेमल, ॥१२॥ बेल, कोविदार[4] (कचनार), करुज[5] शल्लकी[6], चिरबिल्व, क्रोन्ट; तिक्तक, अमरख ॥१३॥ नीम और बेहड़ा-

---

१. लकड़ी, प्रायः ढाक या खदिर, का बना हुआ एक प्रकार का चमचा जिसके द्वारा यज्ञाग्नि में घी की आहुति दी जाती है देखिए **रघु०**, ११.२५, **मनुस्मृति**, ५.११७, **याज्ञवल्क्यस्मृति**, १.१८३.

२. यज्ञ के लिये पिघलाये हुये घी का बर्तन-'सर्पिर्विलीनमाज्यं स्याद घनीभूतं घृतं भवेत्' आप्टे, **संस्कृत-हिन्दी कोश**, पृ० १४२.

३. एक वृक्ष विशेष देखिए **रघु०**, ५.४२ ।

४. सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध—"चित्तं विदारयति कस्य न कोविदारः" **ऋतु०**, ३.६ ।

५. एक वृक्ष विशेष जिससे औषधियाँ बनती है ।

६. एक वृक्ष विशेष जो हाथियों को बहुत प्रिय है देखिए **उत्तर०** २.२१, ३.६, **मा०**, ९.६, **विक्रम** , ४.७३ ।

इन वृक्षों की लकड़ियाँ होम कार्य के लिये निन्दित बताई[1] गई हैं। इस प्रकार अग्नि की लपटें बढ़ जाने पर उसके चारों ओर कुश का उत्तम बिछौना बिछाकर ॥१४॥ तब उसे परिमार्जित करे। परिमार्जन गायत्री-मंत्र से पवित्र किये जल से तीन बार चारों ओर किया जाना चाहिये ॥१५॥ इसके पश्चात कुश की अंगूठी बनाकर अग्नि के दाहिनी ओर ब्रह्मा की मूर्ति कल्पित करनी चाहिए ॥१६॥

तत्पश्चात स्रुच और स्रुव इन दोनों प्रणीता और आज्यभाजन को धोकर अग्नि से स्पर्श कराए और स्रुवा को पिघलाये हुये घी से सम्यक प्रकार से स्पर्श कराए ॥१७॥ इसके पश्चात घुटने के बल जमीन पर बैठकर दत्तचित्त होकर दोनों हाथ जोड़कर अग्नि-देवता को प्रणाम करे ॥१८॥ एकाग्र चित्त होकर हाथ जोड़कर इस पुराणोक्त मन्त्र[2] द्वारा सूर्य देवता का आवाहन करे ॥१९॥ उस शाश्वत सूर्य देवता को प्रणाम है, प्रणाम हैं, जो संसार के कल्याणार्थ निरन्तर उदित होता है। आज मैं उसी आदि देवता का आवाहन कर रहा हूँ, वह मेरे इस यज्ञाग्नि में निवास करे ॥२०॥ हे अक्षय! विश्वमूर्ति! हे पवित्र नाम वाले! हे सूर्यदेव! आप ओम है, हे देव! मेरे द्वारा हवन की जाती हुई हवन-सामग्री को देखकर अपने शरीर

---

१. **मत्स्य-पुराण**, २६५.३१.३२. के अनुसार पलाश, उदुम्बर, अश्वत्थ, अपामार्ग और समी की समिधाओं का यज्ञ में प्रयोग करना चाहिये।

२. यह द्रष्टव्य है कि प्रतिमा-प्रतिष्ठा और उससे सम्बंधित अनुष्ठानों में पुराणोक्त मन्त्रों (नमोनमः) के प्रयोग का विधान किया गया है क्योंकि प्रतिमा पूजा पूर्तधर्म के अन्तर्गत आती है। पूर्तधर्म सभी वर्णो के लिये विहित था जब कि इष्ट-धर्म केवल द्विज के लिये था देखिए काणे, **हिस्ट्री आफ धर्म शास्त्र**; भाग २ (१) पृ० १५५, १५७, पादटिप्पणी, ३७०

अग्नि में आप प्रवेश करें ॥ २१ ॥ इस प्रकार अग्नि का संस्कार करके और आवाहन सहित सूर्य-देवता की उपासना करके इस ऋचा का पाठ करते हुये अग्निदेवता से कहे ॥२२॥ हे अग्नि-देव ! इहलोक में हमारी तेजस्विता बढ़े हम यज्ञ करते हुए तुम्हारे शरीर का पोषण करे । चारों दिशायें मुझे नमन करे और आप जैसे अध्यक्ष द्वारा हम लड़ाइयों को जीतें ॥२३॥ हे पुरुष-श्रेष्ठ ! सिंह के समान पीली और चमकदार जीभ वाले ! हे लाल नेत्र वाले अग्नि देव ! उठो ! मुझे समृद्धियाँ दो, हम तुम्हें द्रव्य दे रहे हैं—स्वाहा ॥२४॥

इसके पश्चात अग्निहोत्र के मंत्र से उच्चारण करते हुए अग्नि को अन्तिम आहुति देनी चाहिए ॥२५॥ इसी प्रकार पलाश की लकड़ियों से ॥ २६ ॥ देवदारु, शमी इत्यादि की समिधाओं से घी में डुबो डुबोकर अग्नि-देवता का हवन करना चाहिए ॥ २७ ॥ रत्नि[1] के बराबर स्रुवा लेकर घी से ही होम करना चाहिये । इसके बाद दूध से, फिर गव्य से, फिर अन्त में अन्न से होम करना चाहिए॥ २८ ॥ तदन्तर नौ औषधियों से, तिल, चावल और जौ से शाली (एक विशेष प्रकार के चावल से), तथा फलक, सावाँ और गेहूँ से, होम करना चाहिए ॥२९॥ विशेष करके पूर्णिमा और अमावस्या के दिन हवन करना चाहिए । चैत्री-पूर्णिमा और कार्तिकी-पूर्णिमा के दिन हवन कार्य करना चाहिये ॥३०॥ जब अग्नि भली भाँति प्रदीप्त हो जाए, धूम-रहित हो जाए, दहकने लगे, तब अपने कर्म की सिद्धि के लिए प्रभूत हवा और ईंधन से हवन करना चाहिए ॥३१॥ जब तक अग्नि प्रबुद्ध न हुआ हो तब तक उसमें हवन नहीं करना चाहिए[2] क्योंकि ऐसा सुना जाता है कि ऐसा करने से यजमान अंधा और पुत्रहीन होता है ॥३२॥

---

१. एक हाथ का परिमाण, आप्टे, **संस्कृत-हिन्दी कोश**, पृ० ८४६.

२. पूजा में अपराधों के लिये देखिए **वीर०** पूजा-प्रकाश, १६६-१८८, **वराह-पुराण**, १३०-५.

लपटों से युक्त, नुकीली शिखा वाली, दहके हुए स्वर्ण के समान प्रभासित[1] ऐसी अग्नि कार्यसिद्धि के लिए होती है ॥३३॥ दुर्भाग्यशालिनी स्त्री, अशिक्षित व्यक्ति, मूर्ख, आर्त्त और असभ्य व्यक्ति यज्ञ मे हवन करने वाला नहीं होना चाहिये ॥३४॥ ऐसा करने वाले नरकगामी होते हैं। और उनके हवन से धन का क्षय होता है इसलिए होता को वेद में पारंगत और ज्ञान में कुशल होना चाहिए ॥३५॥ ऐसे यज्ञ-कर्म का जो फल है वह मेरे द्वारा कहा जाता हुआ सुनो-इस यज्ञ का अध्यक्ष अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है ॥३६॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में अग्निविधान नामक सैंतीसवाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. स्निग्ध के अर्थ प्रभासित के लिये तुलना कीजिए—"कनकनिकष-स्निग्धा विद्युतप्रिया नममोर्वशी" **विक्रम**०, ४.१., **मेघ**०, ३७, **उत्तर**०, १.३३, ६.२१,

२. इस अध्याय की तिथि ५००-८०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिए हाजरा, वही ।

अध्याय ३८

वशिष्ठ बोले— हे राजन ! अब मैं तुम्हें उस बात को बताऊँगा जिस बड़े भारी सन्देह को साम्ब ने परम उदार नारद से पूछा था ।। १ ।। साम्ब बोले— मैंने लकड़ी की परीक्षा, मूर्ति का लक्षण, सूर्य की रथ-यात्रा का विधान और होम की विधि सुनी ।। २ ।। हे विपेन्द्र ! अब इसके बाद मेरे द्वारा पूछे जाने पर भली भांति मुझे सूर्य देवता की पूजा का फल बताइये और दिये गये दान का फल बताइए ।। ३ ।। साष्टांग प्रणाम, नमस्कार, प्रदक्षिणा, धूप, दीप, दान, सम्मार्जन विधि ।।४।। उपवास–इन सबके विषय में जो फल बताया गया है उसे और रात्रि के भोजन के विषय में बतायें ।। किस प्रकार का अर्घ्य होना चाहिए और कहाँ निवास कराना चाहिए ?।।५।। कैसे भक्ति करनी चाहिए और कैसे देवता प्रसन्न होता है ? नारद बोले—साम्ब ! अब मैं भक्ति, श्रद्धा और समाधि के विषय में बता रहा हूँ मुझसे समझें ।।६।। मन की भावना ही भक्ति कही जाती है और मन की इच्छा श्रद्धा कही जाती है । निरन्तर चिन्तन समाधि है । अब तुम भक्ति की विकल्पना[1] (के विषय में) सुनो ।।७।। जो सूर्य देवता की कथा-वार्ता में रम जाये वही उसका सनातन भक्त है, जो निरन्तर तन्मय हो उन देवता की पूजा में सदैव रत हो ।।८।।

जो उनके यज्ञ के कार्य को करे वही उनका सनातन भक्त होता है ।। उस सूर्य देवता के लिये किये जाते हुए अनुष्ठानों को जो व्यक्ति अनुमोदित करता है ।। ९ ।। और उनके गुण-कीर्तन से जिसे आँसू निकल आए, रोम

---

१. भक्ति की परिभाषा, भेद एवं साधन के लिए देखिए **नारदभक्ति सुधास**, स्वामी त्यागीशानन्द, (मद्रास, १९७२) पृ० १-८४.

पुलकित हो उठे वही मनुष्य उनका भक्त है। जो व्यक्ति सूर्य देवता के भक्तों की निन्दा न करे, जिसके लिए अन्य कोई देवता वन्दनीय न हो, ॥ १० ॥ आदित्य के व्रत[1] को धारण करने वाला वही मनुष्य उनका भक्त है। इस प्रकार की सूर्य सम्बन्धी क्रियाओं में भक्ति रखने वाला ॥११॥ चलते हुए, खड़े हुये, सोते हुये, सूंघते हुए और पलक झपकते हुए जो निरन्तर सूर्य का स्मरण करता रहे वही मनुष्य उनका भक्त है ॥१२॥ भक्ति, समाधि और विशुद्ध मन से जो नियम किया जाता है अथवा जो दान दिया जाता है उसी को देवता, मनुष्य और पितर ग्रहण करते हैं, जो भी पत्र, पुष्प, फल और जल भक्तिपूर्वक दिया जाता है ॥ १४ ॥ उसी को देवता ग्रहण करते हैं, और नास्तिकों को वर्जित कर देते हैं। नियम और आचरण से संयुक्त भावशुद्धि का होना अत्यंत आवश्यक है ॥ १५ ॥ भाव-शुद्धि के साथ जो कुछ भी किया जाता है वह सब सफल होता है ॥ स्तुति, जप और उपहार तथा सूर्य की पूजा से ॥१६॥ तथा षष्ठी को उपवास करने से समस्त पापों से मुक्ति हो जाती है, जो पृथ्वी पर झुककर सूर्य को नमस्कार करता है ॥१७॥ वह तत्क्षण समस्त पापों से मुक्त हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं। जो मनुष्य भक्ति भावना से युक्त है उसे सूर्य की प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥१८॥ ऐसा करने वाला व्यक्ति सात द्वीपों वाली पृथ्वी[2] की परिक्रमा कर लेता है ॥ सूर्य को मन में रखकर जो प्रदक्षिणा करता है ॥१९॥ उस व्यक्ति द्वारा समस्त देवता प्रदक्षिणीकृत हो जाते हैं, जो व्यक्ति एकाहारी बनकर षष्ठी तिथि के

---

१. अनेक आदित्य-व्रतों का उल्लेख पुराणों एवं निबन्धों में किया गया है जैसे आदित्यवार व्रत, आदित्यमण्डलविधि, आदित्यव्रत, आदित्यशयन, आदित्यशान्तिव्रत, आदित्यहृदयविधि, आदित्याभिमुखविधि, देखिए काणे, वही (हिन्दी), भाग ४, पृ० १०५-१०६.

२. अली एस०, एम०, दी **जियागरफी इन दी पुराणज**, पृ० २६-४६.

दिन सूर्य की अर्चना करता है ॥२०॥ अथवा नियम और व्रत धारण करके सूर्य की भक्ति से समन्वित होकर सप्तमी के ही दिन जो महाभाग सूर्य की अर्चना करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥२१॥ जो व्यक्ति रात और दिन उपवास करके सप्तमी अथवा षष्ठी[1] के दिन सूर्य की पूजा करता है वह सूर्य-लोक जाता है ॥ २२ ॥ शुक्ल पक्ष की सप्तमी[2] के दिन उपवास करके जो मनुष्य लाल रंग के समस्त उपहारों से सूर्य की उपासना करता है ॥२३॥ वह समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक को जाता है, जो व्यक्ति सूर्य के समक्ष हाथ जोड़कर जल पीता है ॥२४॥

क्रमशः बढ़ाते हुए चौबीस तक ले जाकर फिर एक एक करके क्रमशः संक्षिप्त करता है। इस व्रत की समाप्ति का नियम दो वर्षों में होता है ॥२५। सूर्य का यह सप्तमी व्रत समस्त कल्पनाओं की सिद्धि करने वाला होता है।

---

१. **कृत्यकल्पतरु**, व्रत, ३८८-३८९ में षष्ठी पर उपवास तथा सप्तमी पर 'भास्कर-प्रसन्न हो' के साथ पूजा रोगों से मुक्ति का कारण बताया गया है। षष्ठीव्रत के विस्तृत विवरण के लिये देखें **भविष्य**, १.३९-४६, **भविष्योत्तर**, ३८-४२, **कृत्यकल्पतरु**, व्रत, ९८.१०३. हेमाद्रि; **चतुर्वर्गचिन्तामणि**, व्रत १.५७७-६२९, **तिथि-तत्त्व**, ३४-३५, **कालनिर्णय** १८९-९२. **व्रतरत्नाकर**, २२०-२३६, **समयमयूख**, ४२-४३, **पुरुषार्थचिन्तामणि**, १००-१०३, सूर्य-षष्ठी के लिए देखें हेमाद्रि, **चतुर्वर्गचिन्तामणि**, व्रत, १.६०८-६१५. **निर्णयसिन्धु**, १३४.

२. सप्तमी व्रत के विस्तृत विवरण एवं तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखिए **मत्स्य**, ७४-८०, **पद्म**, ५.२१.२१५-३२१; **भविष्योत्तर**, ४३-५३, **नारदपुराण**, १.११६. १-७२, **कृत्यकल्पतरु**, व्रत, १०३-२२५; **चतुर्वर्गचिन्तामणि**, १.६६२-८१०, **वर्षक्रियाकौमुदी**, ३५-३८, **तिथितत्त्व**, ३६-४०. **व्रतरत्नाकर**, २३१-२५५, **विष्णुधर्मोत्तर**, ३.१६९.१.७.

माघ महीने के शुक्ल पक्ष की सप्तमी का दिन सदैव सूर्य का दिन होता है ॥ २६ ॥ उसे विजया सप्तमी[1] कहते हैं और उसका महान फल बताया गया है। विजय सप्तमी में स्नान, दान, जप, होम और उपवास ॥२७॥ सब कुछ महापातकों को नष्ट करने वाला होता है। जो मनुष्य आदित्य के दिन में श्राद्धकर्म करते हैं ॥२८॥ और महाश्वेता का जप करते हैं वे मनोवांछित फल पाते हैं। जिन मनुष्यों की समस्त क्रिया सदैव सूर्य को उद्देश्य करके सम्पन्न होती है ॥२६॥ उनके वंश में कोई दरिद्र अथवा रोगी नहीं उत्पन्न होता। जो व्यक्ति श्वेत, रक्त अथवा पीली मिट्टी से ॥३०॥ उपलेपन करता है वह अभीष्ट फल प्राप्त करता है ॥ जो व्यक्ति विचित्र सुगन्धित पुष्पों से चित्रभानु की ॥३१॥ पूजा करता है, उपवास करता है, वह मनचाही इच्छाओं को प्राप्त करता है ॥ जो व्यक्ति घी अथवा तिल के तेल से उस दिन दीप जलाता है ॥३२॥

वह दीर्घायु होकर स्वास्थ्ययुक्त रहता है और आँखों से हीन नहीं होता। जो व्यक्ति दीप-दान[2] करता है वह निरन्तर ज्ञान रूपी दीपक से स्वयं प्रकाशित होता है ॥३३॥ वह व्यक्ति बुद्धि और इन्द्रियों से कभी भी मूर्ख नहीं बन पाता ॥ तिल अत्यंत पवित्र है इसलिये तिलदान अत्यंत श्रेष्ठ है ॥३४॥ इसी तिल से हवन करने पर अथवा दीप जलाने पर बड़े से बड़े पाप

---

१. इस नाम के तीन व्रतों का उल्लेख किया गया है रविवार से युक्त शुक्ल पर सूर्य देवता तिथिव्रत, देखिए **कृत्यकल्पतरु**, व्रत, १२७-१२९ हेमाद्रि, **चतुर्वर्गचिन्तामणि**, व्रत, १.६६३-६६४. **भविष्योत्तरपुराण**, ४३. १.३०; दूसरा माघ शुक्ल ७ पर सूर्य देवता के लिये उपवास, सूर्य सहस्त्र नामोच्चारण, हेमाद्रि, व्रत, १.७०७-७१६; तीसरा व्रत **गरुडपुराण** १.१३०-७.८ में किया गया है जो सात सप्तमियों में किया जाता है उस दिन उपवास गेहूँ, माष, यव, स्वस्तिक, पीतल, पत्थरों से पिसा भोजन, आदि का विधान है।

का नाश हो जाता है ।। जो व्यक्ति निरन्तर देवमन्दिरों में ।।३५।। चौराहों पर, गलियों में दीप[1] जलाता है वह सौभाग्यशाली और रूपवान होता है ।। दीप सदैव हविष्य से दीप्त करना चाहिए ।। दूसरा स्थान औषधियों के रस का है ।।३६।। परन्तु चर्बी, मज्जा और हड्डियों के रस से कभी भी दीप नहीं जलाना चाहिए ।। दीप की लौ उर्ध्वगामिनी होनी चाहिए, कभी अधो-गामिनी नहीं होनी चाहिए ।। ३७ ।। इसी प्रकार दीपदान तिरछा नहीं होना चाहिए । जलते हुए दिये को कभी न चुराना चाहिए और न नष्ट करना चाहिए ।।३८।। दिया चुराने वाला व्यक्ति अंधा हो जाता है । उसकी मति अधकार के समान प्रभाहीन होती है और दीपदान करने वाला व्यक्ति दीप-माला के समान स्वर्गलोक में शोभा पाता है ।।३९।। जो व्यक्ति सदैव चन्दन, अगुरु और कुंकुम से सूर्योपासना करता है वह मनुष्य निरन्तर धन, कीर्ति और लक्ष्मी से पूजा जाता है ।।४०।।

लाल चन्दन से मिश्रित लाल फूलों से जो पुण्यात्मा मनुष्य उदीयमान सूर्य को अर्घ्य प्रदान करता है वह सूर्य से सिद्धियाँ प्राप्त करता है ।।४१।। उदयवेला से प्रारम्भ करके अस्त वेला तक किसी मन्त्र अथवा स्तोत्र का सूर्य के समक्ष मुँह करके जप करता हुआ व्यक्ति सिद्धि प्राप्त करता है ।। यह उत्तम आदित्य-व्रत[2] महान पातकों का नाश करने वाला है ।।४२।। उदय

---

१. प्रत्येक पुण्य काल जैसे संक्रान्ति ग्रहण, एकादशी विशेषतया आश्विन पूर्णमासी से कार्तिक पूर्णमासी तक किसी मास भर घृत अथवा तेल के दीपों को मन्दिरों, नदियों, चौराहों आदि में जलाने से पुण्य प्राप्त होता है देखिए **अग्नि पु०**, २००, **अपरार्क**, ३७०-३७२, हेमाद्रि, व्रत, २.४७६-४८२, **कृत्यरत्नाकर**, ४०३-४०५, **दानसागर**, ४५८-४६२.

२. आदित्याभिमुख व्रत की ओर संकेत है देखिए **कृत्यकल्पतरु**, व्रत, १८-१९, हेमाद्रि, **चतुर्वर्गचिन्तामणि**, व्रत, २.५२५-५२६, **कृत्यरत्नाकर** ४९४-४९५

काल में अर्घ्य के साथ ही साथ बछड़े सहित गाय को भी दिलाना चाहिए। इस प्रकार की श्रद्धा से युक्त मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥४३॥ सुवर्ण, धेनु, वृषभ, वस्त्र सहित पृथ्वी और अर्घ्य प्रदान[1] करके सदैव मनुष्य जन्म जन्मान्तर का फल प्राप्त करता है ॥४४॥ मनुष्य को चाहिए कि अग्नि, जल, आकाश, पवित्र भूमि, प्रतिमा और पिण्डी में विधिपूर्वक अर्घ्य चढाए ॥४५॥ न पीछे मुँह करके और न तिरछे अपितु सदेव अभिमुख होकर अर्घ्य देना चाहिए और भक्तिसहित घी तथा गुग्गुल का होम करना चाहिए ॥४६॥ ऐसा मनुष्य तत्क्षण समस्त पापों से मुक्त हो जाता है इससे संशय नहीं है। श्रीवासक, तुरुष्क, देवदारु ॥४७॥ कपूर और अगुरु की धूप देने वाले स्वर्गगामी होते हैं। सूर्य चाहे उत्तरायण हो, चाहे दक्षिणायन विशेष रूप से उसकी पूजा करने वाले समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥४८॥

विषुवीय विन्दु[2] सूर्य ग्रहण, षडशीति मुख के अवसरों पर भक्तिपूर्वक सूर्य की पूजा करने वाला व्यक्ति फिर कभी अपने को चिन्तित नही करता ॥४९॥ इस प्रकार समस्त अवसरों पर अथवा बिना अवसर के ही जो व्यक्ति सूर्य की भक्तिपूर्वक उपासना करता है वह सूर्यलोक में सुशोभित होता है ॥५०॥ खिचड़ी, खीर, मालपुआ और मांस मिश्रित चावल से बलि प्रदान करके मनुष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ॥५५॥ घृत से तर्पण करके मनुष्य कार्य सिद्ध हो जाता है। दूध से तर्पण करके मनस्ताप से मुक्त हो जाता है ॥५२॥ दही से तर्पण करके मनुष्य कार्य सिद्धि प्राप्त करता है और मधु से तर्पण करके सूर्य से सिद्धि प्राप्त करता है ॥५३॥ जो समा-

---

१. दान की वस्तुओं के लिये देखिए **अपरार्क**, २८९-९० हेमद्रि, **चतुर्वर्गचिन्तामणि**, दान, पृ० १६०.

२. मेष राशि या तुला राशि का प्रथम बिन्दु जिसमें सूर्य शारदीय या वासन्तिक विषुव में प्रविष्ट होता है।

हित चित्त होकर सूर्य के स्नान के लिए तीर्थ से पवित्र जल ले आता है वह श्रेष्ठ गति प्राप्त करता है ॥ ५४ ॥ छत्र, ध्वजा, वितान, पताका और चंवर को श्रद्धापूर्वक सूर्य को निवेदित करके मनुष्य अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करता[1] है। मनुष्य भक्तिपूर्वक जो द्रव्य सूर्य को प्रदान करता है सूर्य देवता उसे उसका सौ हजार गुना अधिक उत्पन्न करके देता है। मनुष्य का जो भी मन, वाणी अथवा शरीर का जो भी पाप होता है सूर्य को प्रणाम करने से तत्काल ही नष्ट हो जाता है ॥५६॥

सूर्य की एक ही दिन की पूजा करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल यथोक्त दक्षिणा वाले सैकड़ों यज्ञों से भी नहीं मिलता ॥५७॥ इस प्रकार साम्बपुराण में अड़तीसवाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. सूर्य-व्रतों के फलों के विस्तृत ज्ञान के लिए देखिए **विष्णुधर्मोत्तर-पुराण**, ३.१७१.१-७. **भविष्य-पुराण**, १.६८.८-१४.

२. १-३अ, ४ब, १६अ, २१अ, २४-२६अ, ३२-३५अ, ३६ब-३६, ४०ब-४६अ, ४७ब-४८अ, ५०, ५२ब और ५५ब-५८ श्लोकों को छोड़कर यह पूरा अध्याय **भविष्यपुराण**, १.८०, ६-११, १४ और १६-१८; १.८१ २-३ और १५ब-१६अ; १.८२.३अ, ६अ, १.६३; १,३-५अ, ७,६अ, १५ब-१६अ, २६अ, २८, ३०, ३२अ, ४०अ-६४ और ६६ में ग्रहण किया गया है। अस्तु इस अध्याय को मूल भाग का अंश माना गया है और इसका रचना काल ५००-८०० ई० के मध्य रक्खा गया है। श्लोक संख्या १-२, ३४अ और ५३ ब के अतिरिक्त यह पूरा अध्याय **ब्रह्मपुराण**, २६, ३-३१ में संग्रहीत है। देखिए हाजरा, दी साम्ब-पुराण थ्रू दी ऐजस, **जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी, लेटर्स**, भाग १८ (२)·

अध्याय ३९

बृहद्बल बोले—हे ब्रह्मन ! हे गुरुदेव ! आपने परम कल्याणप्रद अनश्वर पुराण को संक्षेप और विस्तार दोनों ही विधियों से मुझे सुनाया ॥१॥ फिर भी हे प्रभो ! साम्ब के प्रति मेरा संशय अभी भी नहीं दूर हो सका। हे महाभाग ! हे महामुनि ! आप उसे मुझे बताएं ॥२॥ महात्मा भास्कर द्वारा परम धर्मात्मा वे साम्ब किस प्रकार दीक्षित किए गए यह आप मुझे बताये ॥३॥ वशिष्ठ बोले–मन को एकाग्र करके और मनोवृत्ति को सम्यक् रूप से व्यवस्थित करके परम श्रद्धा से युक्त होकर उस अभीष्ट (विषय) को सुनो ॥४॥ हे राजन ! अब इस पुराण का जो उत्तर भाग भास्कर द्वारा उपदिष्ट किया गया उस श्रेष्ठ दीक्षा-मण्डल को मैं तुम्हें बता रहा हूँ ॥५॥ हे महाबाहु ! साम्ब के लिए जो उपदेश सूर्य ने दिया उस महामण्डल नाम वाले मन्त्र से विभूषित तत्त्व को मैं तुम्हें बता रहा हूँ ॥ ६ ॥ यथा व्यवस्थित स्थान से निकलकर पहले क्रमश: दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और उत्तर में भूमि का शोधन करना चाहिए ॥७॥ पूर्व दिशा में भूमि शोधन करने पर सदा विजय होती है

---

१. दीक्षा की परम्परा वैदिक उत्पत्ति की है देखिए **तैत्तिरीय संहिता**, ६.१.१.३; ७.४.८. **ऐतरेयब्राह्मण**; १.३. **शतपथ ब्राह्मण**, ३.२.१.१९. एवं २२. **अथर्ववेद**, ७.१.१, किन्तु तान्त्रिक परम्परा ने इसका विस्तार किया देखिए **प्रपंचसार**, ५ एवं ६, **कुलार्णवतन्त्र** १४३९; **शारदा तिलक**, पटल ४; **नित्योत्सव**, ४-१०, **ज्ञानार्णव**, पटल, २४, **विष्णु-संहिता** १०, **महानिर्वाणतन्त्र**, १०. ११२-११९. **लिङ्गपुराण**, २-२१- रघुनन्दन, **दीक्षातत्त्व**, २,६४५-६५९.

और अटल धन प्राप्ति होती। दक्षिण दिशा में शोधन से शत्रुओं का निधन और मित्रों का लाभ होता है ॥८॥

पश्चिम दिशा में भूमिशोधन करने पर शत्रुओं की वृद्धि होती है और रोग मिलता है। सोम की दिशा में भूमि-शोधन करने पर शान्ति एवं पुत्र की प्राप्ति होती है और प्रजा मानसिक दुःख से विहीन होकर प्रसन्न रहती है ॥९॥ अग्नि की दिशा शोषण करने वाली कही गई है। दक्षिण-पश्चिम दिशा पाप मिश्रित है। वायु की दिशा अव्यवस्था देने वाली तथा ईशान की दिशा ज्ञान प्रदान करते वाली है ॥१०॥ अपनी अपनी इच्छा के अनुसार दत्तचित्त होकर साधक लोग दोषयुक्त भूमि को लांघकर निरुपित स्थान वाली पृथ्वी का शोध करते हैं ॥११॥ नीचे रत्नि मात्र खोद करके और चारों ओर पचीस अगुल खोदकर स्थान को समतल बनाकर सर्वप्रथम उस पर पानी बहा देना चाहिए ॥१२॥ सर्वप्रथम उस स्थान पर ब्रह्म वृक्ष (ढाक अथवा गूलर)के समान पवित्र बांस गाड़ देना चाहिए, चारों तरफ की भूमि को भली भांति समतल और सुन्दर बना देना चाहिए ॥१३॥ शान्तचित्त होकर गूलर की लकड़ी का हल बनाकर और सोने का फाल लगाकर उस जमीन को जाते ॥१४॥ उसके उपरान्त समतल करके चूने के लेप से लेप कर देना चाहिए तदुपरान्त लाल चन्दन के जल से तथा पंचगव्य[1] से सींचना चाहिए ॥ १५ ॥ लाल चन्दन से ही लेप किये जाने का विधान है ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि भूमि चिटकने न पाए ॥१६॥

चिटकने पर भूमि दूषित हो जाती है और यदि वह नीची रह गई हो तो दरिद्रता होती है ॥ यदि कहीं उठी रह गई हो अथवा उसमें छेद हो गए हों तो समस्त आपत्तियों को ले आने वाली होती है ॥ १७ ॥ इस प्रकार मन को आह्लादित करने वाली पवित्र पृथ्वी को समुचित करके यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करनी चाहिए ॥१८॥ उस पृथ्वी के उत्तरी छोर पर विशाल

---

१. "क्षीरं दधि तथा चाज्यं मूत्रं गोमयमेव च"

गुरुभवन बनाना चाहिए समृद्धियों से परिपूर्ण शिष्य गुरु को स्वयं को समर्पित कर दे ॥१९॥ गुरु [1] विशुद्ध कुल में पैदा हुआ हो, वेद-वेदांग में पारंगत हो, आत्मविद्या में निरत हो, इन्द्रियों का दमन किये हो, देवताओं और ब्राह्मणों मे भक्ति रखने वाला हो ॥२०॥ सन्यासी हो और वेदत्रयी में विहित मार्ग का अनुसरण करने वाला हो, मानवधर्म को जानने वाला हो, ब्राह्मण हो[2] त्रिकालवेत्ता हो, इसी प्रकार का गुरु होना चाहिये। अब इसके आगे सर्व श्रेष्ठ शिष्यों के विषय में कहूंगा ॥२१॥ गुरु के ही गुणों के समान शिष्य भी हो, उसके कार्य में लगा हुआ हो, भक्तिभावना से प्रेरित हो और धर्मप्राप्ति के फल के प्रति लगा हुआ हो[3] ॥२२॥ ऐसे व्यक्तियों को छोड़ देना चाहिये जो हीन जाति के हों, नास्तिक हों, अपवित्र हो। देवता, ब्राह्मण अथवा गुरु की सर्वदा निन्दा करते हों ।।२३॥ जिस व्यक्ति की सगुण अथवा निर्गुण भक्ति प्रतिष्ठित हो वही व्यक्ति तत्त्वज्ञ गुरु द्वारा अनुग्राह्य होता है ॥२४॥

महामण्डल वेत्ता आचार्य जहाँ बैठता है वहीं वह जगतपति लोकनाथ

---

१ गुरु की योग्यताओं और शिष्य के गुणों का सुन्दर विश्लेषण **तन्त्रसार**, १ में मिलता है। **गन्धर्वतन्त्र**, २. **शारदातिलक**, २-१४२-१४४ सर्वागमानां सारज्ञः सर्वशास्त्रार्थ तत्त्ववित। अमोघवचनः शान्तो वेदवेदार्थ, पारगः योगमार्गनुसन्धायी देवता हृदयाङ्गमः।" तुलना कीजिए **कुलार्णवतन्त्र**, उल्लास १२ एवं १३, **शारदातिलक**, १.१४५-५२, **ज्ञानसिद्धि**, १३-९-१२ प्रज्ञो प्राय विनिश्चय सिद्धि, ३, ९, १६;

२. अग्रजन्म का अर्थ ब्राह्मण लिया गया है देखिए **दशकुमारचरित**, १३.

३. शिष्य की शुद्धात्मा, एवं पुरुषार्थ के प्रति अनुरक्त होना चाहिये देखिये **मत्स्यसूक्त** तन्त्र, १३; प्राण **तोषिणी**, १०८.

सूर्य[1] निवास करता है ॥२५॥ उस प्रदेश में पवित्र जनपद होते हैं। प्रजाएँ उपद्रवविहीन होती है। वहाँ के नराधिप कृतकृत्य होकर आदर प्राप्त करते हैं ॥२६॥ इस प्रकार समस्त दीक्षाओं से समन्वित, समस्त वेदों से पवित्र गृह्यशास्त्रों से युक्त वह व्यक्ति परमज्ञान को जानकर ॥२७॥ तथा सर्वार्थ साधक अविकल्प और विकल्प योग को समझकर, कन्या द्वारा काते गए सूत से अथवा मन्दार की सुई से ॥२८॥ तिहरे गए सूत्र को लपेटे जिसमें कि न गाठे हों और न बाल इत्यादि मिले हुये हो 'देवस्यत्व' इस मन्त्र द्वारा तीन बार उच्चारण करके तिहरे हुए सूत्र को सूर्य को समर्पित करे। इसके बाद कार्य प्रारम्भ करे ॥२९॥ सोने का पात्र सर्वप्रथम लेकर तदन्तर चाँदी और गूलर का पात्र क्रमशः लेकर दिग्देवताओं को क्रमानुसार अर्घ्य प्रदान करे ॥३०॥ तदुपरान्त नारायण नाम वाले परमात्मा तथा तेजज्ञान स्वरूप सूर्य को अर्घपात्र निवेदित करे ॥३१॥ इसी क्रम से धूप दिखाए और सुसंस्कृत बलिकर्म करे। कर्म-सिद्धि के लिए तीन मीठी वस्तुओं से युक्त तिलों का हवन करे ॥३२॥

(हवन का मंत्र इस प्रकार है) ओम परमात्मा इन्द्र के लिए स्वाहा। ओम शुचिमूर्ति अग्नि के लिए (ठः ठः[2]) हविष्य प्रदान, ओम धर्मात्मा यमराज के लिए (ठः ठः) हविष्य प्रदान, ओम कालात्मक नैऋत्य के लिए (ठः ठ) हविष्य प्रदान, ओम स्पर्शात्मा वायु के लिए (ठः ठः) हविष्य दान, ओम अमृतात्मा चन्द्रमा के लिए (ठः ठः) हविष्य प्रदान ओम ज्ञानात्मा ईशान के

---

१. तान्त्रिक परम्परा के अनुसार गुरु और देवता एक ही होता है देखिये **योगिनीतन्त्र** -१ सर जान वुडरफ; **इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्रशास्त्र**, पृ० ६६ **लिङ्गपुराण** १,८५ "यो गुरुः स शिवः प्रोक्तोयः शिवः सगुरु स्मृतः" **प्रपंचसार**.६ १२, **शारदातिलक**; ५-११३-११४; **देवीभागवत**, ११.१.४९. **ब्रह्माण्ड-पुराण** ४३-६८-७०.

२. 'ठ' विपत्तिनाशक वर्ण है **साम्ब-पुराण**, ४०, ९.

लिए (ठः ठः) हविष्य प्रदान, ओम तेजोरुप उस श्रेष्ठ परमात्मा की हम शरण में जाते हैं वह हमें तेजस्वी बनाये[1] ॥३३॥ हे राजन्! महामण्डल से उत्पन्न इस पवित्र महामंत्र को, जो निरन्तर स्मरण करते हैं वे द्विजों के लिये हितकारी होते हैं ॥ ३४ ॥ इसे शरीर-मण्डल का महामन्त्र कहा गया है। इसीलिए प्राचीन ऋषियों द्वारा मण्डल[2] का महत्व बताया गया है ॥ ३५ ॥ आठ अंगुल की कर्णिका होनी चाहिए और उसी के बराबर केसर। कर्णक और केसर के ही बराबर पद्म होना चाहिये ॥ ३६ ॥ पद्म के बराबर द्वार होना चाहिये और प्रकोष्ठ द्वार के बराबर होना चाहिये, वीथि को प्रकोष्ठ के बराबर होना चाहिए ॥३७॥ यही मण्डल की स्थिति है। गायत्री मन्त्र से चारों ओर मंत्रित सूर्यमण्डल का चित्र सफेद, लाल, पीला, हरा अथवा काला

---

१. वैदिक गायत्री के अनुकरण पर तान्त्रिक गायत्री मन्त्र का विधान किया गया है जो शूद्र एवं स्त्रियाँ जप सकती थी, तुलना कीजिये **महानिर्वाण** तन्त्र के ब्रह्म गायत्री मन्त्र से, ३.१०९-१११ "परमेश्वराय विद्महे परतत्त्वाय धीमही, तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्।"

२. तान्त्रिक पूजा का एक अभिन्न अंग मण्डल था यद्यपि इसकी उत्पत्ति वैदिक साहित्य में देखी जा सकती है—ऋ०, ४.२८. २, ५.२९.१०; **तै० स०** ५.३.९.२ **श० ब्रा०**, ४.१-१.२५, **बृह० उप०** ५.५.२; २.३.३ तथापि मण्डलों के माध्यम से देवता की पूजा पौराणिक एवं तांत्रिक साहित्य की देन है। देखिए **मत्स्य पु०**, ५८.२२, ६४.१२-१३, ६२.१५, ७२.३०, ७४.६-९; **बृहत्संहिता**, ४७.२४. **ब्रह्म-पुराण**, २८.२८, ६१.१-३; **वराह-पुराण**, ९९.९.११ **अग्निपुराण**, ३२०. **हर्षचरित**, ३, **शारदातिलक**, ३.११३-११८, १३१-१३९, **ज्ञानार्णवतन्त्र** २६०-१५-१७. **महानिर्वाणतन्त्र**, १०.१३७-१३८ विस्तार के लिए देखिए एरिक हाई, **काण्ट्रीब्यूशंस टू दी स्टडी आफ मण्डल ऐण्ड मुद्रा** पृ० ५७-९१.

बनाना चाहिये[1] ॥३८॥ चारों ओर बाहर से मण्डल की आकृति आठ हाथ की होनी चाहिये। उसके आधे भाग में मध्यवापी के समान पुर का चित्र बनाना चाहिए ॥३९॥ और उसके भीतर बारह पत्रों से विभूषित कमल[2] बनाना चाहिए। विधान जानने वाले को उन्हीं पत्रों में सूर्य की बारह मूर्तियों को बैठाना चाहिए ॥४०॥

पुनः एक वर्ग का निर्माण करके उसमें वज्र, शक्ति, दण्ड, खंग, पाश, पताका, गदा, त्रिशूल यथोचित रुप से बनाना चाहिये ॥४१॥ नर, विश्वात्मक, शम्भु, नमस्कार, वषट्कृत, संबुद्ध, विश्वकर्त्ता, निष्कल, ज्ञानसम्भव, ॥४२॥ मान, उन्मान, महानसत्व ये आधारभूत बारह जगन्नाथ बताये गये हैं ॥४३॥ वेदों के बारह मंत्रांश सूर्य देवता की बारह मूर्तियाँ हैं जो इस प्रकार है अभीषवे, विष्णुधामच्छंदो मनोज्योतिः, चत्वारि शृंगा आदि, ते प्राणाय आदि, अग्नि मीडे आदि, इषे त्वा ऊर्जे आदि, अग्नि आयाहि आदि, शन्नो देवो आदि, कृत्यवासा आदि तथा ब्रह्मयज्ञानम आदि ॥ ४४ ॥ इन सबके बीच मे महाकली कल्पिका, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, धनान्तस्था और अमृता नाम से प्रसिद्ध मूर्ति का निर्माण होना चाहिये ॥४५॥ शुक्ल, जयन्त, विजय, अनेकवर्ण,

---

१. मण्डल के माध्यम से सूर्य की पूजा पूर्वकालीन पुराणों में भी उल्लिखित हैं **मत्स्य-पुराण**, ७२.३०, ७४.६,९, तुलना कीजिए—**ब्रह्मपुराण** २८-२८, ६१.१.३

२. **मत्स्य-पुराण** ९७.५-९ में १२ पत्रों वाले कमल के माध्यम से द्वादश सूर्यों की पूजा का उल्लेख किया गया है किन्तु यह द्रष्टव्य है कि प्रारम्भिक पुराणों में द्वादश सूर्यों के जो नाम दिये गये है वे यहाँ पर नही है उनके स्थान पर नर, विश्वात्मक, शम्भु, नमस्कार, वषटकृत, संबुद्ध, विश्वकर्त्ता, निष्कल, ज्ञानसम्भव, मान, उन्मान, महानसत्व ये १२ जगन्नाथ बताये गये हैं।

हुताशन, हुतार्चि, व्यापक–ये सात (सूर्य के) अश्व[1] बताये गये हैं ॥४६॥ (इन सबके लिये इस प्रकार यज्ञ करना चाहिये) ओम हारिणी के लिये स्वाहा, यह इडा[2] है, ओम विहारिणी के लिये स्वाहा, यह सुषुम्ना है ।ओम आनन्दा के लिये स्वाहा, यह विन्दु है । ओम भाविनी के लिये स्वाहा, यह संज्ञा है । ओम मोहनी के लिये स्वाहा, यह प्रमर्दिनी है । ओम ज्वलिनी के लिये स्वाहा, यह प्रकर्षिणी है । ओम तापिनी के लिये स्वाहा, यह महाकाली है । ओम कल्पा के लिये स्वाहा, यह कल्पिका है । ओम क्रुद्धा के लिये स्वाहा, यह प्रबोधिनी है । ओम मृत्यु के लिये स्वाहा, यह नीलाम्बरा है । ओम हराति के लिए स्वाहा यह घना है । ओम द्रुम के लिये स्वाहा, यह शुक्ला है । ओम शुद्ध के लिये स्वाहा, यह जयन्त है । ओम महाघोरण के लिये स्वाहा, यह विजय है । ओम चित्र के लिये स्वाहा, यह अनेकवर्ण है । ओम रुद्र के लिये स्वाहा, यह हुताशन है । ओम संबलित के लिये स्वाहा, यह हुतार्चि है । ओम महाशिखा के लिए स्वाहा, यह व्यापक है । ओम ज्वलिन-चण्ड-लोचन के लिये स्वाहा, यह सारथि के स्थान पर बैठा अरुण है । इस प्रकार शास्त्रपूर्वक पूरे सूर्यमण्डल का आलेखन करके यज्ञ-कुंड में पहले से ही प्रतिष्ठित की गयी अग्नि में पुनः संस्कार करे ॥ ४७ ॥ गायत्री मंत्र का पाठ करके परिसमूहन और उपलेपन करे । 'शन्नो भवन्तु वनस्पत' इस उल्लेखन बिन्दु के द्वारा ॥४८॥

---

१. यह अनाहत चक्र (हृदय के पास) का स्मरण दिलाते है जिसमे १२ पत्रों वाले कमल का विधान है, जिसमें वायुमण्डल और सूर्यमण्डल होते है और मध्य में शक्तिकाकिनी पाश, कपाल आदि से युक्त बैठी हैं; देखिये वुडराफ, **दी सरपेन्ट पावर**, पृ० ३८२-३८३.

२. मानव शरीर में अनेक नाडियाँ है जिसमें प्रमुख है इडा (बायीं ओर बायें अण्डकोष से लेकर बायें नासिका तक), सुषुम्ना (शरीर के मध्य में रीढ की नाडी में) एवं पिंगला (दाहिनी ओर दाहिने अण्डकोष से लेकर दाहिनी नासिका तक) देखिये वुडराफ, **इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्रशास्त्र**, पृ० ४८-५०

अभ्युक्षण बिन्दु[१] द्वारा अ.च.क्षर से इस प्रकार इस अग्नि की स्थापना करना उत्तम होता है उसके मध्य में प्रणव[२] होना चाहिये । अग्नि-क्रिया करके तब पूर्वोक्त विधि से बारह नाम वाले द्रव्य मिश्रित हवन सामग्री का हवन करे और आधी हवन सामग्री गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित करके अग्नि मे प्रदान करे ॥४९॥ पूर्वोलिखित मंत्र[३] द्वारा सबको हविष्य देना चाहिये । यज्ञ के अंत में अन्न ग्रहण करके गुरुदेव की पूजा करें । गुरु की पूजा विशेष प्रकार के कहे गये विधान के अनुसार करनी चाहिये ॥५०॥ उस विधि के साथ ही साथ प्रभात-वेला में पुण्याह वाचन किये हुये दोनों व्रत परायण गुरु-शिष्यो को धर्मसंलग्न होना चाहिए ॥५१॥ सर्वप्रथम बितान, ध्वजा, मालाओं और कलशों से विभूषित पूर्वोक्त ढंग से सूर्यमण्डल का चित्र बनाना चाहिये ॥५२॥ तद तर विमल दर्पण, छत्र, वस्त्र से अवगुंठित नाना प्रकार के पूजोचित उपहारों से ॥५३॥ गुरुमंत्र परायण होकर पूजा करनी चाहिये । कुश से युक्त चार अंगुल ऊँची वेदी बनाकर ॥ ५४ ॥ पश्चिमी मण्डल द्वार पर शिष्य को ठहराना चाहिये ॥५५॥ तदन्तर सूर्य की पूजा करके, मन्त्रोक्त अभिषेक करके

---

१. बिन्दु शिवशक्ति की एकात्मकता से उद्भूत परम तत्त्व है । उससे सृष्टि का क्रम चलता है, उसे एक वृत के रुप में चित्रित करते हैं जिसके मध्य में ब्रह्मपद होता है देखिए कालीचरण, टीका, **षट्चक्र निरुपण**, ३७. **शारदातिलक**, अध्याय १.

२. पवित्र अक्षर 'ओम'; परम पुरुष, ब्रह्म, **रघु०** १.११, **मनु०** २.७४. **कुमार०** २.१२. **छान्दोग्य** ऊ० ५.

३. मन्त्र शब्द मात्र नहीं है वह परमात्मा का स्वरुप है । देवता, मन्त्र एवं गुरु में कोई अन्तर नहीं है । सामान्य व्यक्ति के लिये तान्त्रिक मन्त्र अर्थहीन शब्द मात्र लगते है किन्तु साधक को गुरु की कृपा से मन्त्र का प्रतीकात्मक अर्थ और उसके माध्यम से परमात्मा का स्वरुप प्रकट होता है देखिये काणे, **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र**, ५-नु० ५१-५६

और प्रदक्षिणा करके ॥५६॥

शिष्य के मण्डल में प्रविष्ट हो जाने पर यह तत्वन्यास[1] सम्पन्न करना चाहिये ॥५७॥ ओम अं द्वारा शिरस्पर्श, ओम आं द्वारा हृदय स्पर्श। ओम इं द्वारा नाभिस्पर्श। ओम ईं ओम द्वारा चक्षुस्पर्श। ओम ईं ओम द्वारा नासिकास्पर्श। ओम फट् ओम द्वारा कर्णों का स्पर्श। ओम हुं ऊ द्वारा मुख का स्पर्श ओम क्षं ऊँ द्वारा जिह्वास्पर्श, ओम क्षां द्वारा शिखा का स्पर्श और पुन: ओम[2] द्वारा पूरे शरीर का स्पर्श। इस विधि से न्यास सम्पादित करके अष्टपुष्पिक देना चाहिए, ओम पद्म के बीच में भूतात्मा किरणपति के लिये स्वाहा, ओम पूर्व दिशा के खद्योत के लिये स्वाहा, ओम ! दक्षिण दिशा में ससत्य के लिये स्वाहा, ओम पश्चिम दिशा में अमृत के लिये स्वाहा ओम ! उत्तर दिशा में बक्षस्तम के लिये स्वाहा, ओम अग्निकोण में अव्यक्त के लिये स्वाहा, ओम नैरित्य में क्षय के लिये स्वाहा, ओम वायव्य कोण में अक्षय के लिए स्वाहा, ओम ईशानकोण में संघाति के लिये स्वाहा, इस प्रकार पूर्वोक्त मंत्रों द्वारा अष्टमूर्तियों के लिए हविष्य प्रदान करे और

---

१. न्यास एक तान्त्रिक पूजा कृत्य है जिसका तात्पर्य है शरीर के कुछ अंगो पर अवस्थित होने के लिये किसी देवता या देवताओं, मन्त्रों का मानसिक रूप से आह्वान करना, जिससे शरीर पवित्र हो जाय और पूजा एवं ध्यान करने योग्य हो जाये और शरीर में देवता का निवास हो। न्यास के कई प्रकार हैं जिसमें तत्वन्यास भी एक है **देवप्रतिष्ठातत्त्व**, पृ० ५०५.

२. यहाँ अ से क्ष तक के अक्षरों का न्यास किया गया है जो अन्तर्मातृका न्यास मे प्रयुक्त होता है, काणे, **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र**, (हिन्दी सं) ५. पृ० ६५. 'क्ष' से नित्य का क्षय द्योतित होता है, **साम्ब-पुराण**, ४०-१६.

मन्त्रन्यास[1] किए हुये अभिषिक्त व्यक्ति को दीक्षायोग से युक्त करना चाहिये। ओम पवित्र अग्नि के लिये स्वाहा करके यज्ञोपवीत देना चाहिए, ओम धर्म-राज के लिए स्वाहा कहकर दण्डकाष्ठ देना चाहिये। ओम बारबार किये गये पापों के समूह के लिये स्वाहा। मेखला का यज्ञोपवीत वृक्ष की त्वचा से बना होना चाहिए और दण्डकाष्ठ पलाश, गूलर और खदिर के दण्ड का होना चाहिए। मेखला कुश, मूँज, मौर्वी अथवा बेल की बनी होनी चाहिये। (पुनः इस प्रकार यज्ञ किया जाय) ओम सरस्वती के लिए स्वाहा, ओम वेश्वती के लिए स्वाहा, ओम चर्यावती के लिये स्वाहा, ओम सत्यवती के लिए स्वाहा, ओम ध्रुवावती के लिये स्वाहा, ओम स्वाभावती के लिये स्वाहा, ओम प्रतिष्ठावती के लिये स्वाहा इस प्रकार इन मंत्रों से प्रज्वलित की हुयी अग्नि में घी की आहुतियाँ देकर पाक यज्ञ पात्र से पूर्वोक्त मंत्र द्वारा सात आहुतियाँ दे। इस प्रकार विधान पूर्ण करके गुरु अग्निकुंड में भस्म लेकर शिष्य की देह में पवित्र स्थानों पर लगाये (और इस प्रकार मंत्रों का उच्चारण करें)। ओम पूर्व मध्य मे चित्र के लिये स्वाहा, ओम पूर्व में क्षम के साथ विष्णु के लिये स्वाहा, ओम दक्षिण में हिंसा के लिये ठः ठः के साथ स्वाहा, ओम पश्चिम में विज्ञान के लिए ठः ठः के साथ स्वाहा, ॥५८॥ ओम ! उत्तर में लिखन के लिये ठः ठः के साथ स्वाहा, इस प्रकार शरीर के समस्त अंगो में भस्म का लेप करे और कहे-ओम-सोमवती के लिए स्वाहा, ओम सुभगा के लिये ठः के साथ स्वाहा, ओम प्रेमवती के लिए ठः ठः के साथ स्वाहा, ओम वाजिनवती के लिए ठः ठः के साथ स्वाहा, इन आहुतियों

---

१. मन्त्र-न्यास न्यास का एक भेद है अन्य प्रकार है हंस न्यास, प्रणव न्यास, मातृकान्यास, करन्यास, अंगन्यास, पीठन्यास—देखिये **जयाख्यसंहिता,** पटल ११, **प्रपंचसार,** ६, **कुलार्णवतन्त्र,** ४.१८ **शारदातिलक,** ४.२६-४१, ५०५-७, **महानिर्वाणतन्त्र,** ३.४१-४३; ५. ११३-११८.

को देकर होम के अंत में गृह-समेत समस्त उपकरणों को बिना प्रार्थना किये हुये विधान-पूर्वक दीक्षा करने वाले गुरु को दे देना चाहिये[1] ॥५९॥
इस प्रकार साम्ब-पुराण मे ३९वां अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. तुलना कीजिये **शारदातिलक**, ५.११३-११४ "... शरीरमर्थं प्राणंच सर्वं तस्मै निवेदयेत् ।"

२. यह अध्याय साम्ब-पुराण के उत्तर भाग का श्री गणेश करता है अध्याय ३९-४३, और ४७-८३ तक को साम्ब-पुराण में उत्तर काल (१२५०-१५०० ई० के मध्य प्रक्षिप्त किया गया। प्रस्तुत अध्याय की उत्तरकालीनता के पक्ष में अनेक आन्तरिक साक्ष्य है जैसे इस अध्याय की विषय-वस्तु तान्त्रिक परम्परा के गुरुदीक्षा, मण्डलनिर्माण, न्यास एवं प्रतीकात्मक मन्त्रों से सम्बन्धित है, जब कि मूल भाग (१-३८ अध्यायों) में वैदिक एवं पौराणिक परम्परा के माध्यम से सूर्यपूजा का विधान हैं। इस अध्याय के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि बृहद्बल ने संक्षेप एवं विस्तार से साम्ब-पुराण को सुना, इसके उपरान्त भास्कर द्वारा उत्तर भाग के कथन का उल्लेख हैं देखिए हाजरा, दी साम्ब-पुराण ए सौर वर्क ऑफ डिफरेन्ट हैन्ड्स, **अनाल्स आफ भण्डारकर ओरियन्टल रिचर्स इन्स्टीच्यूट** ३६, पृ० ८१।

अध्याय ४०

इसके उपरान्त मैं कल्याणकारी यज्ञ-स्थान की विधि बताऊँगा, जो कि यज्ञों का परम यज्ञ है, यज्ञ का अंग है, यज्ञ से उत्पन्न हुई है ॥१॥ यज्ञमूर्ति (सूर्य देवता) को नमस्कार करके यज्ञ द्वारा आपको हविष्य प्रदान कर रहा हूँ। ज्वालासमूह से युक्त, समस्त कारणों को उत्पन्न करने वाले, ॥२॥ देवाधिदेव (सूर्य देवता) के विग्रह[1] में जो वर्णस्थान[2] है अब उनको मुझसे सुनो-

१. रूप, आकृति अथवा शरीर, देखिए 'त्रयीविग्रहवत्येव सममध्यात्मविद्यया; **मालविकाग्निमित्रम**, १.१४.

२. तान्त्रिक परम्परा में सृष्टि का विकास अर्थप्रपंच और शब्द-प्रपंच इन दोनों के माध्यम से बताया गया है। शब्द-प्रपंच के दृष्टिकोण से परमेश्वर शब्द ब्राह्मण है यह सम्पूर्ण सृष्टि शब्द प्रभव से निकली है। इससे ५ शुद्ध सृष्टियाँ होती हैं—परा, (शिव तत्त्व-नादतत्त्व), पश्यन्ती (शक्ति-तत्त्व बिन्दुतत्त्व), मध्यमा (सदाशिव), वैखरी और उससे वर्ण शब्द और वाक्य निकले। नाद और बिन्दु से त्रिबिन्दु अथवा काम-कला निकले। काम-कला से मातृकों का जन्म हुआ और उससे वर्ण, पद और वाक्य। वर्ण से मन्त्र बनते है। मन्त्र शब्द मात्र नहीं है अपितु देवतत्व है प्रत्येक वर्ण का अर्थ होता है। शरीर में ६ चक्रों के लिये वर्णमाला के अक्षर (५०) निर्धारित किये गये हैं ह और क्ष (२) आज्ञा के लिए, १६ स्वर विशुद्ध के लिये, क से ठ तक (१२) अनाहत के लिए, ड से फ तक (१०) मणिपुर के लिये, ब से ल तक (६) स्वाधिष्ठान के लिए तथा व से स तक (४) मूलाधार के लिये। वर्णमाला के स्वरुप एवं महत्व के लिये देखिये सर जान वुडराफ, **दी गारलैंड आफ लेटरस्** पृ० २१४-२२७।

सिद्धि के प्रारम्भ में सूर्य के सकल एवं निष्कल रूपों की हृदय में कल्पना करे ।३।। अ और आ[1] कर्म-निर्वाण करने वाले बताये गए हैं। इ और ई विद्येश और योगीश बनकर उस सूर्य देवता की नाभि में विद्यमान हुई ।।४।। उ और ऊ भावादि बीज बनकर उस प्रतिभाशाली सूर्य देवता की दोनों जंघाए बनी। ऋ और ॠ ऋत और सत्य के रूप में उसके दो चरण हुए ।।५।। लृकार धर्मादिवर्ग से विपुल बना, ए और ऐ ये दोनों सूर्य देवता की माताएँ है ।। अ और अः यह दोनों विशाल व्योम-मूर्तियाँ हैं ।। ६ ।। क और ख इसके रथ कहे गये हैं ग और घ उसके मण्डल कहे गये हैं ङकार साक्षात देवाधिदेव बुद्धिमान सूर्य के सारथी है ।।७।। चकार पितृगण हैं। छकार देवता और दानव हैं। जकार सम्पूर्ण जगत है, झंकार बंधन क्रिया है ।।८।।

और ञकार सूर्य की पातन-सम्भूति कही जाती है। टकार बन्धन तोड़नी है। ठकार विपत्ति छेदक होता है ।।९।। डकार अनुग्रह स्थान है और ढकार क्रोध कहा जाता है। णकार बालखिल्य[2] और भृगु[3] आदि महातपस्वी गुण है ।।१०।। तकार सिद्ध[4] और गन्धर्व[5] है। थकार पुण्य उत्पन्न करने वाला है।

---

१. वर्णों के अर्थ के लिए देखिए सरजान वुडराफ, **तान्त्रिक टेक्सट्स**, भाग १, तन्त्रा**भिधान**.

२. ब्रह्मा के रोम से उत्पन्न अंगूठें के समान आकार वाली दिव्य मूर्तियाँ जो संख्या में ६० हजार बतायी जाती है तुलना कीजिये **रघु०**, १५.१०.

३. एक ऋषि, भृगु वंश का पूर्वपुरुष, इस वंश के विवरण के लिये देखिए **मनु**० १.३५.

४. अर्ध दिव्य प्राणी जो अत्यन्त पवित्र एवं पुण्यात्मा माना जाता है प्रधानतया देवयोगि विशेष जिसमें आठ सिद्धियाँ हो।

५. अर्ध देवों का समूह जो देवताओं के गायक एवं संगीतज्ञ माने जाते हैं।

दकार इन्द्रियों का दमन[1] कहा जाता है। धकार ब्रह्मगोचर है ॥११॥ नकार सर्वत्र व्याप्त अनन्त है। पकार अक्षर संभव है। फकार अशुभ को नष्ट करता है। बकार शुभ का परिचायक है ॥१२॥ भकार भेदक है और मकार नदियों का स्वामी है। यकार ग्रह और नक्षत्र हैं और र प्रदाहक बताया गया है ॥१३॥ लकार विषयों का आस्वादन करने वाला है और वकार नवोद्भव है। शकार दोषों का शोषण करता है और षकार बीज कहा जाता है ॥१४॥ सकार में छन्दों का जन्म हुआ है और हकार में शाश्वत ब्रह्म है। क्ष और त्र परम निर्वाण देने वाले, भय दूर करने वाले, इच्छा पूर्ण करने वाले और प्रभु स्वरूप हैं ॥१५॥ सम्यक रुप से प्रतिष्ठित वह जो शान्त एकाक्षर ज्ञान[2] है उस क्षकार के द्वारा उस स्थावर और जगंम जगत का क्षय होता है ॥१६॥

उस क्षकार को अक्षय और अव्यय कहा गया है। इस प्रकार यह सूर्य के सनातन कल्याणकारी बीज[3] अर्थात वर्ण तुम्हें बताये गये ॥१७॥ योग-पूर्वक यथोचित कार्यों में प्रयुक्त किए जाने पर सम्यक रुप से, पूजित होने पर यह समस्त कहे हुए वर्ण फल प्रदान करने वाले होते हैं ॥१८॥ बृहदबल बोले—वर्ण जातियों के कर्म से उत्पन्न होने वाले जो फल बताये गये हैं उन्हें अस्थिर वृत्ति वाले मन से मैं बताने में असमर्थ हूँ ॥१९॥ साम्ब की दीक्षा

१. देखिए "कुत्सितात्कर्मणोविप्र यच्च चित्तनिवारणं स कीर्तितो दमः" आप्टे, वही, पृ० २४५.

२. ओम अथवा प्रणव से अभिप्राय है आदिशक्ति जो **रुद्रयामलतन्त्र** और **तन्त्रालङ्कार** के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव का द्योतक है किन्तु यह एक है— "एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मा विष्णु महेश्वरा:"। क्योंकि ये तीनो आद्या शक्ति से उपहित तुरीय ब्राह्मण के रूप हैं। अस्तु प्रणव से अभिप्राय मूल प्रकृति से युक्त ब्राह्मण से है जो एक है। देखिये **महानिर्वाणतन्त्र**, स०, वुडराफ, पृ० ३२, पाद टिप्पणी ३.

३. एक देवता के मन्त्र के गूढ़ अक्षरों को बीज कहते है। देखिए वुडरफ **दी गारलैण्ड आफ लेटरस**, पृ० २५७.

समाप्त हो जाने पर, सूर्य देवता ने कुमार साम्ब से जो उपदेश कहा समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाले उस महामंत्र को आप मुझे बताए ॥२०॥ वशिष्ठ बोले—हे राजन ! अब उस महामंत्र को तुम सुनो जो कि जीव के संहार का कारक है, जो जन्म का प्रतीक है और जगत के पराभव का कारण है ॥२१॥ जिसमें पूर्व और पश्चिम तक व्याप्त सूर्य ही कर्णिका हैं। यम और सोम की दिशा में विष्णु है। ईशान और नैरित्य दिशा में ब्रह्मा है ॥२२॥ अग्नि और वायु की दिशा में रुद्र है। इसी को पद्म[1] कहा जाता है। और यह है साम्ब के कारण उद्धृत वह महामंत्र ॥२३॥ ओम अं ओम हूँ जूँ दुँ टूँ और ओम यह मंत्र अत्यन्त गोपनीय है और परम पद है तथा सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है और यही परम गति है ॥२४॥

सर्व व्यापक अभय से संयुक्त सूर्य आयु देने वाला है। रुद्र से युक्त होने पर सूर्य रोग हरने वाला है और विष्णु से युक्त होने पर धन देने वाला है ॥२५॥ ब्रह्मा से युक्त होने पर समस्त अर्थों की सिद्धि करता है। आकाश मध्यलोक और पाताल इत्यादि सब पर प्रकाश देता है ॥२६॥ रुद्र से युक्त होने पर यह शत्रुओं में भय बढ़ाने वाला होता है। विष्णु से युक्त होने पर बृहस्पति की वाणी को भी यह मन्त्र तत्काल स्तम्भित करने वाला होता है ॥२७॥ यह मन्त्र सूर्य का अमोघास्त्र है। जिसके (शरीर के) ९ वर्ण है ६ अंगों को मैं बता रहा हूँ यथाक्रम उसे समझिये ॥२८॥ ओम हुं और हूं ओम यह दोनों हृदय के लिए है। ओम हु क्षूँ ओम यह शिर के लिए हैं इसी प्रकार ओम ! ओम, हूँ, आँ, क्षँ हूँ और हं ओम शिखा के परिचायक हैं। ओम ! ओ

१. शरीर में ६ चक्र बताये गयें है जो शक्तितत्त्व के अंग है इनकी कल्पना पद्म के रूप में की गई है-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, इन सबके ऊपर (परम व्योम में) सहस्रार पद्म है। विस्तार के लिए देखिये सर जान वुडराफ, **दी सरपेन्ट पावर**, पृ० ४१९.

और क्षूं ओम यह दोनों कवच[1] के प्रतीक हैं, अन्त में 'हुम'[2] होना चाहिए। हूँ ओम और क्षूं यह दोनो नेत्र के प्रतीक हैं और ओम क्षूं यह नेत्र, ब्रह्म रुद्र और विष्णु रुद्र का प्रतीक है और देवाधिदेव भास्कर जगत्पति के हृदय का प्रतीक है ॥२६॥ इस प्रकार व्यवस्थित वह स्वयंभुव, व्यापक देवता सूर्य सदैव त्रैलोक्य के प्रधान देवता के रूप में सदा पूज्यनीय है ॥३०॥ रुद्र, विष्णु तथा ब्रह्मा ये सूर्य के आदि और अन्त में रहने वाले देवता है ॥ इस दुःसह और दहन करने वाले मंत्र को ही सूर्य की शिखा कहा गया है ॥ ३१ ॥ व्यापक विष्णु सहित यह आदित्य मन्त्र व्यस्थित किया गया हैं, देवताओं द्वारा निर्मित यह कवच समस्त विघ्नों को नष्ट करने वाला है ॥३२॥

इसके आदि और अंत में सूर्य विद्यमान है व्यापक मध्य में ब्रह्मा है और यह अस्त्र सृष्टि का संहार करने वाले रुद्र से भी युक्त हैं ॥३३॥ यह अक्षर और अव्यय मंत्र एक नेत्र के समान है युगान्तकालीन अग्नि के समान रंग वाला है तथा अनेक सूर्यों के तेज से पूर्ण है ॥ ३४ ॥ अस्तु यह छः प्रकार का सूर्य मंत्र[3] बताया गया है प्रारम्भ में १२ प्रकार के सूर्य को बताया गया है ॥३५॥

---

१. रहस्य पूर्ण अक्षर जो कि रक्षा कवच की भाँति प्ररक्षक समझे जाते हैं विस्तार के लिए देखिए सरजान वुडराफ, **शक्ति ऐण्ड शाक्त**

२. मन्त्र-शास्त्र के अनुसार मन्त्र पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग होते है, पुल्लिग मन्त्र का अन्त हुम अथवा फट से होता है, स्त्रीलिङ्ग मन्त्र का अन्त स्वाहा से होता है, नपुंसक लिङ्ग वाले मन्त्रों का अन्त नमः से होता है।

३. इन मन्त्रों की व्याख्या के लिए देखिए **तन्त्राभिधान**, सम्पादित वुडराफ **तान्त्रिक टेक्स्ट्स**, भाग १ इन मन्त्रों के माध्यम से ब्रह्मा, विष्णु, शिव को सूर्य का ही रूप माना गया है और सूर्य को परमब्रह्म का पद दिया गया है।

पहले एक-एक मनके का आवर्तन करके इस सूर्य मंत्र का समाहित चित्त से एक लाख जप करे ॥३६॥ और तीन मीठी चीजों से मिश्रित तिल का अग्नि में हवन करे और इस सूर्य-मन्त्र का पाठ करके सायं हविष्य दे ॥३७॥ होम के अंत में होम भाग बनाया जाता है। तत्पश्चात साधक पुरुष देवदर्शन करके कृतार्थता को प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ त्रिकालवेत्ता, तत्वज्ञ और गुणत्रय से विवर्जित—ऐसा व्यक्ति इस यज्ञ से अग्नि और वायु से विहीन परम स्थान[1] को प्राप्त करता है ॥३९॥ मंत्र पाठ करने वाला वही व्यक्ति देवता के समान भलोक में मानवों द्वारा पूजा प्राप्त करता है। और वही लोकों का रक्षक होता है व्याधि और दुख का विनाश करने वाला भी होता है ॥४०॥

यह प्राचीन शास्त्र जो कि पहले भी कहा जा चुका था और अप्रमेय था द्वापर युग में देवर्षि नारद द्वारा पुनः साम्ब के लिए कहा गया ॥४१॥ उसी समय से संसार में सूर्य-ध्वजा का प्रचलन हुआ जो कि समस्त पापों को नष्ट करने वाला है, पवित्र और समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाला है ॥४२॥ इस प्रकार साम्ब पुराण में चालीसवाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

१. परम स्थान का तन्त्रों में सुन्दर विश्लेषण किया गया है देखिए **षट्चक्रनिरुपण**, पद्य ४४-४८.

२. यह अध्याय तान्त्रिक परम्परा से पूर्णतया प्रमाणित है और **भविष्य पुराण** में ग्रहण नहीं किया गया है अस्तु इसकी तिथि १२५०-१५०० ई० के बीच निश्चित की गई है देखिये हाजरा, वही।

अध्याय ४१

वशिष्ठ बोले—इसके पश्चात पूर्व आदि के दिक्पालों[1] की पूजा करनी चाहिए (और क्रमशः इस प्रकार ओम[2] प्रारम्भ में, तदुपरान्त नाम और नव

---

१. यहाँ पर चार दिशाओं-पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर के देवताओं को तान्त्रिक मन्त्रों द्वारा बलि प्रदान करने का विधान किया गया है। दिक्पालों की पूजा वैदिक उत्पत्ति की है **तैत्तिरीय संहिता**, ५.५-१०, **गोभिल गृह्य सूत्र**, १४.४.७.२७-४१, **सामविधान ब्राह्मण**, ३.३.५. परन्तु पौराणिक पूजा में इसका विस्तार हुआ। बौद्ध एवं जैन परम्परा में भी दिक्पालों की पूजा का विधान था। परन्तु विभिन्न स्रोतों में इनकी संख्या (४, ६, ८, १० आदि) एवं नाम आदि भिन्न-भिन्न बताये गये हैं नामों एवं संख्या के लिए देखिए बनर्जी, जे०, एन०, **डेवलेपमेन्ट आफ हिन्दू आइकानोग्राफी**, पृ० ५१६-५२६.) यह द्रष्टव्य है कि यहाँ पर केवल चार दिशाओं के दिक्पालों का वर्णन किया गया है यद्यपि प्रत्येक दिशा के दिक्पालों के अनेक नाम दिये गये हैं जो उनके विभिन्न रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं। **महाभारत**, (गीता) ८. ४५.३१-३२. में अग्नि, यम, वरुण और सोम पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर के दिक्पाल नेता बताये गये हैं इसी परम्परा का यहाँ पालन किया गया था। **महानिर्वाणतन्त्र** (वुडरफ, पृ० १४४) में ८, अथवा १० दिक्पालों का वर्णन किया गया है।

२. तान्त्रिक मन्त्रों में ओम का अर्थ है आद्या शक्ति और उसकी तीन क्रियात्मक शक्तियाँ रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु जो पाँच तत्त्वों के माध्यम से प्रकट होती हैं। देखिए वुडरफ, **दी गारलैण्ड आफ लेटरस**, पृ० २२८-३३.

ठः ठः[1] के साथ हविष्य प्रदान करना चाहिए) विकट, वामन, लम्बोदर, हेमगर्भ, भीमवेग, सौम्यरूप, पंचात्मक, विदेह, धर्म-विग्रह, अहिरबुध्न्य, काल, उपकान्त इन सबको हविष्य दान देकर इस प्रकार पूर्व दिशा में इनकी पूजा करके पाँच रूप वाले खण्डादिक से प्रत्येक देवता को बलि प्रदान करे। दक्षिण दिशा में ओम प्रारम्भ में बाद में ठः ठः के साथ अघोर, बटुक, ऊर्ध्वरोम, मृत्युहस्त, भैरवनाद, कौस्तुभ, धूम्रकाल, उग्रजिह्वा, मांस-मूर्ति बलकलि, दण्डी और कर्म-साक्षी इन सबको हविष्य दे। इन सबको मछली, मांस और पूलिका आदि से बलि देनी चाहिये। तदन्तर पश्चिम दिशा में सूर्य-मूर्ति, गुहाशय, टंक-पान, महाबल, वायुभक्ष, पंचमूर्ति, अग्निपाश, पशुपति, महाआश, कृष्णदेह, आमोघ और अच्युत इन्हें ओम प्रारम्भ में और बाद में ठः ठः के साथ बलि प्रदान करे। इन सबको दूध, घी से पूर्ण पात्र द्वारा बलि प्रदान करना चाहिए। उत्तर दिशा में शिखिलिङ्गि, योगेश्वर, त्रिशाखा, शतक्रतु, पंचशिख, सहस्र-किरण, सुवर्ण केतु, पद्मकेतु, वज्ररूप, भुवनाधिपति, पद्मनाभ इन सबको प्रारम्भ में ओम और बाद में ठः ठः के साथ हविष्य दे। इन्हें सोने, चाँदी और वस्त्र द्वारा बलि प्रदान करनी चाहिए। हे राजन! इस प्रकार शास्त्रों में कही गई पूजा को जो व्यक्ति करता है उस मनुष्य की प्रारम्भ की हुई समस्त क्रियायें स्वर्ग और पृथ्वी लोक में सफल होती हैं। सूर्य के पूजा निवेदन में और कोई शास्त्र उपदिष्ट नहीं है। हे राजन! समस्त वेदों से संकलित पुराणों में कही गई इस पूजा को अन्य तंत्रों को जानने वाले जो कोई लोग मूर्खतापूर्वक करते हैं उनकी भक्ति और श्रद्धा का फल इस मन्त्र से नहीं मिलता। इस निरन्तर पाप-नाश करने वाले शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये। यह पुराण आयु, आरोग्य, विजय, यश और कीर्ति प्रदान करने वाला है। इन समस्त दिक्पालों की पूजा सम्पन्न करके पुनः आगे कहे जाने वाले मन्त्रों द्वारा घी अथवा खीर सहित पाँच-पाँच आहुतियाँ एक-एक को देना पूर्वदिशा में, क्षिति के लिए विकट को, अक्षिति के लिए वामन को,

---

१. "ठ" विपत्तिनाशक वर्ण है।

अवहित के लिए लम्बोदर को, संहृत के लिए हेमगर्भ को, सवर्ग के लिए विदेह को, स्थिर के लिए भीमवेग को, शान्ति के लिए सौम्यरूप को, सर्वहर के लिए पंचात्मक को अजरुप के लिए धर्मविग्रह को, निरभ्र के लिये अहिर्बुध्न्य को, मनु के लिए काल को, किन्नर के लिए उपकाल को, प्रारम्भ में ओम और बाद में ठः ठः के उच्चारण के साथ हविष्य देनी चाहिए। दक्षिण दिशा मे संस्तुत के लिए अघोर को; अनन्त के लिए वडवामुख को, क्रुद्ध के लिए ऊर्ध्व-रोमा को. सम के लिए मृत्युहस्त को, अनन्तजिह्वा के लिए मेघनाद को, स्फुरित के लिए कौस्तुभ को, क्रूर के लिए धर्मकाल को, सपीनवाहु के लिए उग्रजिह्वा को, करभ के लिये मांसमूर्ति को, अग्नि के लिए वल्कली को, रक्तवर्ण के लिये दिरणी को सुरक्त के लिए कर्मसाक्षी को, प्रारम्भ में ओम और बाद में ठः ठः उच्चारण के साथ हविष्य देना चाहिए। पश्चिम दिशा में सरस्वती के लिए वायुभक्ष को, काश के लिये पंचमूर्ति को, क्रीडता के लिए अग्निपाश को, विक्रीडिता के लिए पशुपति को, हंस के लिये महापाश को, विहृत के लिए कृष्णदेह को, ध्रुव के लिए अमोघ को, विशिखा के लिए अच्युत को, प्रारम्भ में ओम और बाद में ठः ठः उच्चारण के साथ हविष्य देनी चाहिए। उत्तर में सविश के लिये शिखिलिङ्ग को, मध्यगत के लिए पंचशिख को, कनिष्ठ के लिए सहस्र किरण को; सर्वेराश्य के लिये पद्मकेतु को. कालर के लिए यज्ञ-रुप को, युग के लिए भुवनाधिप को, अनन्तशक्ति के लिये पद्मनाभ को प्रारम्भ में ओम और बाद में ठः ठः उच्चारण के साथ हविष्य देनी चाहिये। हे राजन! वेदों से उद्धृत इस पुरातन मंत्र को अव्यग्र मन से तीनों वेलाओं में यजन करता हुआ व्यक्ति समस्त इच्छाओं को प्राप्त करता है ॥१॥ यही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है, यही निष्कल[1] कर्मयोग है। इसे मैंने तुम्हें उसी प्रकार दिया जैसे साम्ब को भगवान सूर्य ने दिया था ॥ २ ॥ सर्वप्रथम दिशाओं और दिक्पालों को बलि प्रदान करे, उनका होम करके तब सूर्य का आवाहन करे

१. सूर्य के निष्कल रुप के लिए देखिये श्रीवास्तव, **सन-वरशिप इन ऐंसियन्ट इण्डिया**, पृ० २३६.

॥३॥ देवताओं से आवृत शब्द-मूर्ति[1] वाले हे सूर्य देवता! आओ आओ मेरे इस यज्ञ को भलीभांति देखो, तुम्हीं देवताओं और राक्षसों के पूजनीय हो, धर्मादि वर्ग के समूहकों के तुम्हीं पूज्य हो ॥४॥ इसके पश्चात् पुनः ज्ञान मंत्र से अर्चित करके विधिपूर्वक पुष्पों से समर्चन करके पुनः यह कहना चाहिये--हे देव! अपनी इच्छानुसार आप जाएं और पुनः आवाहन करने पर आएँ ॥५॥ यही सर्वश्रेष्ठ सत्य है, यही सर्वश्रेष्ठ तप है, यही सर्वश्रेष्ठ देवता है जो कि सुरो और असुरों द्वारा नमस्कृत है ॥ ६ ॥ पुराणों में कहे गये इस शास्त्र का जो दत्तचित्त होकर पाठ करता है वह सहस्त्र किरणों वाले सूर्य देवता में विलीन[2] हो जाता है इसमें कोई शंका नहीं है। यह शास्त्र तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है, मंगलों का भी मंगल है, पवित्रों का भी पवित्र हैं और सर्वश्रेष्ठ गति है ॥८॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण में दीक्षाविधान नामक एकतालिसवाँ[3] अध्याय समाप्तहोता है।

---

१. तान्त्रिक परम्परा के अनुसार देवता का अभिव्यक्तिकरण वर्णों एवं शब्दों के द्वारा होता है, मन्त्र और देवता एक ही है इसी कारण सूर्य को शब्द मूर्ति वाला कहा गया है देखिये वुडराफ, **दी गारलैंड आफ लेटर्स**, पृ० २१४-२२७.

२. हाजरा, **स्टडीज**, भाग १, पृ० ५७ के अनुसार अध्याय ३९-४१ तक को एक विशिष्ट इकाई माना जा सकता है जिसे **साम्ब-पुराण** में १२५०-१५०० ई० के मध्य कभी प्रक्षिप्त किया गया था।

३. प्रारम्भिक पुराणों में सूर्य-व्रतों एवं पूजा का फल सूर्य-लोक की प्राप्ति बताया गया है देखिए **मत्स्य-पु**०, ७८.७-८. परन्तु यहाँ पर सूर्य में आत्मलीनता का आदर्श रक्खा गया है। सम्भवतः वेदान्त के प्रभाव के कारण आत्मा-परमात्मा की लीनता का उद्देश्य यहाँ बताया गया है।

अध्याय ४२

वशिष्ठ बोले—इस प्रकार देव-मन्दिर बनवाकर और याजकों[1] को ले आकर साम्ब वहाँ आए जहाँ पर धर्मात्मा सूर्य सन्निहित थे ॥१॥ इन लोगों को मित्रवन[2] में आया सुनकर देवता, मनुष्य, सर्प, ऋषि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, नाग, गुह्यक ॥२॥ दिग्पाल, लोकपाल, गृहस्थ, यक्ष, धार्मिक और प्रजापति सब लोग वहाँ जाने के लिये तत्पर हो गये ॥३॥ कुछ लोग उपवास किये हुये थे। कुछ लोग आत्म-निग्रह में लगे थे और कुछ लोग त्रिवृताध्व

---

१. स्टेटन्क्रान, **इन्डिश्च सोनेन प्रीस्टेर साम्ब अण्ड देई शाकद्वीपीय ब्राह्मण**, सारांश, पृ० २७६ के अनुसार मग को ही याजक अथवा पूजक कहते थे जो भोजकों से भिन्न थे किन्तु यह द्रष्टव्य है कि **साम्ब-पुराण**, २७ में मग और याजक को भिन्न-भिन्न बताया गया है। इस आन्तरिक प्रमाणानुसार मग 'म' वर्ण का ध्यान करते हैं जब कि याजक धूप, माला, जप, उपहार आदि से यजन करते हैं। हाजरा, **स्टडीज**, पृ० ९७ के अनुसार भोजक ही कालान्तर में पतित होकर याजक कहलाये। द्रष्टव्य है कि यह अध्याय उत्तरकालीन है और भोजक परम्परा से सम्बन्धित है अस्तु स्टेटन्क्रान की अपेक्षा हाजरा का विचार अधिक समीचीन लगता है।

२. इस मित्रवन का तादात्म्य कोणार्क से किया गया है जब कि पूर्वकालीन अध्यायों में मित्रवन को पंजाब में स्थित बताया गया है विस्तार के लिए देखिए हजारा, दी साम्ब-पुराण, ए सौर वर्क आफ डिफरेन्ट हैन्ड्स, **अनाल्स आफ भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट**; भाग ३६ पृ० ७७-७८.

में रत थे तथा कुछ लोग मंत्र-जाप से समन्वित थे ॥४॥ कुछ लोग लकड़ी का धनुष लिए हुये थे। कुछ लोग सवार्थगामी थे। अन्य लोग नियमित आहार वाले थे और अन्य लोग निराहार थे[1] ॥५॥ देहगत चिन्ता को छोड़कर रवि के ध्यान में तल्लीन होकर महीने और पखवारे के उपवास[2] से युक्त ॥६॥ थोड़े ही समय में लवण-सागर के समीप आकर उस लवणोदधि में स्थित रमणीय तपोवन को देखा ॥ ७ ॥ जो नाना पुष्पों और फलों से युक्त था, देवताओं और गन्धर्वों से सेवित था और सदैव जिसमें ऋषिगण पर्युपासना कर रहे थे ॥८॥

वह तपोवन अपने सादृश्य के कारण पृथ्वीलोक में विद्यमान एक दूसरे सूर्यलोक के समान प्रतीत हो रहा था। उस रमणीय तपोवन को देखकर वे सब हर्ष-विभोर हो उठे ॥९॥ वह तपोवन समस्त जीवों का उपकार करने वाला, समस्त कार्यों में रमणीय, समस्त प्राणियों के लिए सुखमय आवास वाला विश्वकर्मा द्वारा निर्मित किया गया था ॥१०॥ वशिष्ठ बोले—बुद्धिमान नारद

---

१. **मार्कण्डेय-पुराण**, १०९.५९-६१ एवं ७५-७८ में भी राज्यवर्धन तथा उनकी प्रजा द्वारा सूर्य-पूजन में इसी प्रकार के विभिन्न व्रत वाले तपस्वियों का उल्लेख किया गया है। देखिए अग्रवाल, वासुदेव शरण, **मार्कण्डेय-पुराण, एक सांस्कृतिक अध्ययन**।

२. उपवास स्वयं एक व्रत है एक पक्ष अथवा एक मास का उपवास अनेक व्रतों में किया जाता है जैसे एकादशी-व्रत देखिये **विष्णुधर्मोत्तर** १.५९.३-५, हेमाद्रि, **चतुर्वर्गचिन्तामणि**, व्रत, २,७७६-७८३. एक मास से अधिक उपवास वर्जित हैं। व्रतों का श्रेणी विभाजन अनेक आधारों पर किया गया जैसे एक विभाजन है मानस, कायिक, और वाचिक। उपवास कायिक व्रत के अन्तर्गत आता है। काल के आधार पर यहाँ पाक्षिक एवं मासिक उपवास का उल्लेख किया गया हैं, काणे, **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र**, (हि०) भाग ४, पृ० २२ तथा पृ० २६१. कृत्यरत्नाकर, ४७५-४७६.

भी उस शास्त्र को सदैव पढ़ते हैं और कहते हैं—हे यादव ! हे महाभाग ! साम्ब तुम बड़े अच्छे हो। भक्तिमान हो ॥११॥ जो कि तुमने इस प्रकार की सनातनी सूर्य-मूर्ति यहाँ बनवाई और उसी के प्रसाद से सूर्यमय तपोवन[1] को हम लोग देख रहे हैं ॥ १२ ॥ नारद के उस निर्मल वाक्य को सुनकर परम धर्मवान साम्ब ने भूमि पर सिर टेक कर सूर्य देवता की प्रार्थना की ॥१३॥ हे देव ! मेरे ही ऊपर कृपाभाव से जो पूजा के कारण अनुग्रह करने वाले आपने पूर्व में सानिध्य वाले इस उत्तम स्थान का निर्देश किया ॥१४॥ कृपा करके हे सौम्य विभावसु ! कुछ बताइये। साम्ब का शरीर, इन्द्रिय और प्राण अत्यन्त क्षीण थे वाणी भी मन्द थी ॥१५॥ इस प्रकार साम्ब को भक्ति से अन्वित देखकर सूर्य देवता ने वचन कहा—हे यदुनन्दन ! मेरे इस स्थान मे कीर्ति-विषयक चिन्ता को छोड़ दो ॥१६॥

हे यादव ! मेरी वाणी द्वारा पहले दिए गये उपदेश को तुम सुनो। इस लवण-सागर के तट पर प्राचीन काल में तपस्विजनों[2] ने ॥१७॥ कलेशपूर्वक मेरी कृपा चाहते हुये अनेक वर्षों तक तप किया। उन तपस्वियों को देखकर मेरे हृदय में कृपा का उदय हुआ ॥१८॥ मैंने कहा—हे वत्सों ! तुम लोग अपने मन की बातें कहो। सत्य, धर्म और अर्थ से युक्त श्रेष्ठ पदार्थों की प्रार्थना करो

---

१. द्रष्टव्य है कि मित्रवन को बराबर यहाँ तपोवन कहा गया है, और उन्हें पूर्व में सूर्य का सानिध्य प्राप्त कराने वाला कहा गया है, समुद्र के तट पर कहा गया है ये तथ्य इस स्थान की स्थिति कोणार्क में निश्चित कर देते हैं देखिए हाजरा, **अनाल्स आफ भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट**, ३६, पृ० ७८.

२. पूर्वकालीन अध्यायों में सूर्य के मन्दिर बनवाने और मित्रवन को प्रसिद्ध करने का श्रेय साम्ब को दिया गया है किन्तु उत्तरकालीन अध्यायों मे यह बताया गया है कि साम्ब से भी पूर्व तपस्वियों ने वहाँ पर तपस्या की देखिए हाजरा,, वही, पृ० ७२.

॥१९॥ सूर्य देवता के मुंह से निकले हुए उस निर्मल वाक्य को सुनकर, हर्षित होकर आह्लादित मन वाले मनुष्यों ने कहा ॥२०॥ हे भगवान ! यदि प्रसन्न होकर आप वर देने के लिए समुद्यत हैं तो आप सूर्य देवता में हमारी निर्विघ्न भक्ति करें[1] ॥ २१ ॥ "ऐसा ही हो"—इस प्रकार कहकर वह भगवान सूर्य भी बोले—हे मनुष्यों ! अब दूसरे भी वर की याचना करो ॥२२॥ हे साम्ब ! पुनः सन्तुष्ट होकर उन समस्त धर्म-परायण, प्रसन्न और उत्फुल्ल लोचन वाले व्यक्तियों ने परमश्रेष्ठ से कहा ॥ २३ ॥ मुनि ने कहा—पुनः सन्तुष्ट होकर महातेजस्वी आप वर देने के लिए समुद्यत हैं तो हे देवेश ! आपकी कृपा से इसके सृष्टा हम लोग हों ॥२४॥

वशिष्ठ बोले—तब प्रसन्न होकर महातेजस्वी (सूर्य) ने फिर यह बात कही—"ऐसा ही हो"। आप लोग प्रजाओं की सृष्टि करने वाले हों ॥२५॥ इस वन की कीर्ति का एक और कारण कहूँगा और उसे सुनो, जिसके कारण कि यह रम्य तपोवन सर्वश्रेष्ठ माना गया है ॥२६॥ निर्मल वाक्य सुनकर उन ऋषियों ने दिवाकर से कहा—हे देव ! आपकी कृपा से हमारे लिये प्रीतिकारक कार्य हों। हे सुरु-प्रभु ! इस स्थान को प्राप्त करके हम लोग भवसागर से पार हो गये ॥२८॥ संतों के कल्याणार्थ और अपने ही अनुग्रह के लिये, हे भास्कर ! आपकी कृपा से यहीं आपकी कीर्ति करेंगे ॥२९॥ सूर्य देवता बोले—सातों द्वीपों[2] में दुर्लभ मेरे स्थान को देकर एक मन्वन्तर तक कीर्ति मान बने रहेंगे ॥३०॥ मन्त्र-सिद्धि जो अन्यान्य मुनि और श्रेष्ठ देवता मेरे

---

१. भक्ति का चरमादर्श है इष्ट देवता में एकात्मिका भक्ति देखिये **नारदभक्तिसूत्रास,**

२. पुराणों में सात द्वीपों वाली पृथ्वी का उल्लेख है विभिन्न नामों के लिये देखिये अली, एस०, एम० **दी जियागरफी आफ दी पुराणज,** पृ० २८-२९.

स्थान में लगे हुए हैं इसलिए मैंने अधिक नहीं कहा ॥३१॥ नारद बोले—"एक के पश्चात १९ शून्य रखने पर उस प्रमाण से ब्रह्मा का एक गण्डक कहा जाता है ॥३२॥

एक लाख गण्डों का एक मनु[1] होता है पहले यम थे फिर स्वारोचिष मनु ॥३३॥ तृतीय मन्वन्तर में सूर्य देवता, चौथे में मनु, पाँचवे में सत्य, छठें में ऋतु ॥ ३४ ॥ सातवें[2] में सनत्कुमार और वर्तमान मन्वन्तर में वैवस्वत ॥३५॥ इसके पश्चात शम्भु, उनके बाद महानस और महानस के बाद वशिष्ठ होंगे। तदन्तर यह कल्प समाप्त हो जाएगा ॥३६॥ इस प्रकार साम्बपुराण में यात्रानियम नामक बयालिसवाँ अध्याय[3] समाप्त होता है।

---

१. यह द्रष्टव्य है कि सामान्यतः सातवें मन्वन्तर में वैवस्वत को मनु बताया गया है किन्तु यहाँ आठवें को वैवस्वत मनु बताया गया है। मन्वन्तर की अवधि एवं १४ मनुओं की सूची के लिये देखिये आप्टे—**संस्कृतहिन्दी कोश**, पृ० ७७३, तथा **दी वेदिक एज**, पृ० २७१.

२. ३३ और ३४ पद्य दोष पूर्ण छन्दयोजना के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

३. इस अध्याय की तिथि १२५०-१५०० ई० के मध्य रक्खी गई है देखिये हाजरा, वही.

अध्याय ४३

वशिष्ठ बोले—लवणोदधि के तट पर उस तपोवन क्षेत्र में (सूर्य) देवता के दर्शन की आकांक्षा से जो रहते हैं अथवा जो आते हैं ।।१।। उनमें से कुछ लोग[1] पवित्रात्मा होकर ध्यान धारण करते हैं कुछ लोग सूर्य में संलग्न मन वाले होते है और कुछ सम्पन्न लोग यज्ञ करते हैं और कुछ लोग आत्म-तत्पर होकर चिन्तन करते हैं ।।२।। सिद्ध और गन्धर्व गाते हैं, श्रेष्ठ अप्सराएँ नाचती है, कुछ लोग हाथ में वीणा लिए रहते हैं तथा अन्य लोग अर्घपात्र कुछ लोग अन्जलि बांधे रहते हैं और कुछ लोग सिर झुकाये रहते हैं। योगी, योगचित्त, मुनिगण और नियमित मन वाले ।।४।। ऋषिगण शान्तियुक्त होकर सूर्य देवता का स्तवन करते हैं । यातुधान[2], यक्ष[3], सिद्ध[4] और

१. सूर्य-भक्तों के विभिन्न प्रकारों का यहाँ उल्लेख किया गया, ध्यान, चिन्तन, यज्ञ, गीत आदि के माध्यम से भक्ति का प्रदर्शन किया गया है भक्ति के विभिन्न साधनों के विवरण के लिये देखिये **नारदभक्तिसूत्रास, रामायण** २.९५.७, ६.१०५.२९ तथा **महाभारत**, ३.३.३५-३९. में सूर्योपासना के विभिन्न साधनों का वर्णन है।

२. भूत-प्रेत, पिशाच, **भट्टि०**, २.२१, **रघु०**, १२.४५.

३. एक देवयोनि विशेष जो धन-सम्पत्ति के देवता कुबेर के सेवक है तथा उनके कोष और उद्यानों की रक्षा करते हैं, **मेघ०**, १.६६.

४. अत्यन्त पवित्र और पुण्यात्मा अर्ध दिव्य प्राणी, देवयोनि विशे जिसमें आठ सिद्धियाँ हों **कु०**, १.५.

बड़े बड़े नाग[1] ।। ५ ।। दिग्पाल[2], लोकपाल[3], विघ्न-विनायक[4] सब लोग भक्ति में लीन होकर उस सूर्यकानन[5] में निवास करते हैं ।।६।। वे शरीर, इन्द्रिय और प्राण से क्षीण होते हैं, सूर्य देवता की आराधना में तत्पर होते हैं, जागरण के कष्ट से युक्त होते हैं, राह चलने से थके रहते हैं और पीड़ित होते हैं ।।७।। सूर्य देवता के उदय की आकांक्षा करने वाले सभी लोग उनका स्तवन करते हुये प्रभात वेला में पद्मराग के समान लाल प्रकाश वाले सूर्य की ओर ध्यानस्थ हो जाते हैं ।।८।।

---

१. पुराणों में वर्णित मानव मुखवाला अर्ध दिव्य साँप—"देव गन्धर्व मानुषोरगराक्षसान्" **नल०**, १.२८, **मनु०**, ३.१९६.

२. दिशाओं के स्वामी, चार, आठ अथवा दस, संख्या एवं नाम के लिए देखिए बनर्जी, जे० एन०, **डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी**, पृ० ५१९-५२९.

३. लोकों के स्वामी, **मनु०**, ५.९६ के अनुसार ८ लोकपाल हैं सोम, अग्नि, अर्क, अनिल, इन्द्र, वित्तपति, आपपति, और यम ।

४. प्रारम्भ में विघ्न डालने वाले देवता के एक समूह को विनायक कहते थे । कालान्तर में इसे गणेश का पर्यायवाची माना जाने लगा देखिये सम्पूर्णानन्द, **गणेश**, पृ० ५-७. तुलना कीजिये **याज्ञवल्क्यस्मृति**, १.२७१; **महाभारत**, अनुशासन, १५१.२६, **मानवगृह्यसूत्र**, २.१४. भंडारकर, आर०, जी०, **वैष्णविस्म, शैविज्म एन्ड माइनर रेलीजस सिस्टम्स**, पृ० १४७-१४९.

५. सूर्यकानन से अभिप्राय कोणार्क से है जिसे मित्रवन, सूर्यक्षेत्र, रविक्षेत्र आदि कहा गया है । देखिये श्रीवास्तव, **सन वरशिप इन ऐन्शियन्ट इण्डिया**, पृ० २६९.

सूर्य के उदय की आकांक्षा वाले खड़े सभी द्वारा स्तूयमान सूर्य के किरण धौतन से समस्त दिशाएँ और पृथ्वी विमल हो गई ॥९॥ समुद्र, आकाश और पृथ्वी लाल हो उठी, तत्काल ही समस्त ज्योतियां एक ज्वाला के रुप मे बदल गई ॥१०॥ उस उदय वेला में एक सूर्य दो स्थानीय हो गये और दिवाकर अद्‌भुत रूप वाले दिखाई पड़ने लगे ॥ ११ ॥ उनका दो प्रकार का, मण्डल दृष्टिगोचर हुआ एक अन्तरिक्ष में विद्यमान और दूसरा समुद्र मे, भगवान सूर्य की दूसरी मूर्ति जल के बीच में विराजमान है ॥१२॥ उस अद्‌भुत दर्शन को देखकर सभी लोग विस्मित हो गए, कुछ मनुष्य बाहु के बल से तैरते हुये महोदधि में पहुंचकर ॥१३॥ जल में पड़ी हुई उस मूर्ति को हाथो से पकड़कर और तपोवन में लाकर प्रसन्न मन वाले मनुष्यों ने विधान-पूर्वक मूर्ति की स्थापना[1] की ॥१४॥ उन लोगों ने सुसम्मित, सांगोपांग और विचित्र स्तुतियों से सूर्य की स्तुति[2] की। हे देव ! आप प्रलय हैं, काल है क्षय हैं, सहिष्णु हैं, और रात्रि की अग्नि हैं ॥१५॥ आप सृष्टि एवं पालन की पूर्णता (अर्थात संहार) हैं, प्रजा आपके ही अंगों से उत्पन्न हुई है। आप ही शोषण हैं, वर्षा हैं, शीत है, घाम है, आह्लादित करने वाले सुख शीतल है ॥१६॥

हे देव ! आप ऋषिकर्ता हैं, प्रकृति, पुरुष और प्रभु हैं, छाया और सज्ञा की प्रतिष्ठा के होते हुये भी निरालम्ब और निराश्रय हैं ॥१७॥ आप समस्त जीवों के आश्रय है ! आपको सदैव मेरा प्रणाम है, हे देव ! आप सर्वतः

---

१. यह द्रष्टव्य है कि पूर्वकालीन अध्यायों में सूर्य-मूर्ति की स्थापना का श्रेय साम्ब को दिया गया है जब कि इस उत्तरकालीन अध्याय के अनुसार लोगों ने सूर्य-मूर्ति की स्थापना की देखिये हाजरा, स्टडीज, भाग १.

२. स्तुति में सूर्य के देवत्व की अवधारणा साम्प्रदायिक रूप में आदि शक्ति एवं परमेश्वर के रूप में की गई है तुलना कीजिये—आदित्यहृदयस्तोत्र रामायण, ६.१०५, देखिए श्रीवास्तव, वही, पृ० १८०, २३९-४०.

चक्षु हैं, सभी की गति हैं ॥१८॥ सर्वदाता हैं, सदा रहने वाले हैं, सर्वस्व हैं, और दुःख का नाश करने वाले हैं। हे देव ! आप ध्यानियों के ध्यान हैं और योगियों के उत्तम योग हैं ॥ १९ ॥ आप अपनी कान्ति से फल देने वाले हैं, तत्काल पाप हरण करने वाले विभु है, समस्त आर्तियों का नाश करने वाले अनश्वर और करुणा के देवता हैं ॥२०॥ दया, शक्ति और क्षमा के निवास हैं, कृपायुक्त हैं और साक्षात कृपा हैं। हे देव ! आप सृष्टि, संहार और स्थिति रूप देवाधि-देव है ॥२१॥ बक शोष,(सूखापन) बक (जठराग्नि), दाह, तुषार दहन की आत्मा वाले, आत्म समर्पण किये हुये दुखी के रक्षक है, योगी, और योगमूर्ति है ऐसे आपको नमस्कार है ॥२२॥ हे देव ! आप हृदयानन्द है, शिरोरत्न की प्रभामणि हैं, बोधक हैं, पाठक हैं, अध्ययन करने वाले हैं, ग्राहक हैं ग्रहणात्मक है ॥२३॥ हे देव ! आप नियम हैं, न्यायी हैं, न्याय करने वाले और न्याय बढाने वाले है, अनित्य हैं, नियत है, नित्य है और न्यायमूर्ति हैं, आपको नमस्कार है ॥२४॥

हे देव ! आप शरणागतों की रक्षा करते हैं; दुःख सागर में पड़े लोगों की रक्षा करते है। विदलित लोगों को ऊपर उठाते हैं ऐसे आप लोकचक्षु[1] को नमस्कार है ॥२५॥ आप दमन हैं, दुर्दान्त है, साध्यों के भी साधक है, बन्धुहीनों के बन्धु हैं ऐसे बन्धु-स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे दया-निधान! शान्ति करे। हे जगत्पति ! प्रसन्न हों, जो हमारा अभीष्ट था उन कल्याणकारी वाक्यों को हमने कहा ॥२७॥ इस प्रकार सुनकर तत्पश्चात सब लोगों ने सूर्य-प्रतिमा के विषय में पूछा—यह मूर्ति किसके द्वारा बनाई गई, किसके द्वारा आपको मिली और हे देव ! किसलिये आप यहाँ आये—हमारा संशय दूर करें ॥ २८ ॥ देवता बोले—प्राचीन काल में समस्त संसार के कल्याणार्थ देवताओं द्वारा पूजित यह मूर्ति विश्वकर्मा ने समादेश द्वारा बनाई ॥२९॥ हिमालय पर्वत के ऊपर कल्पवृक्ष से निर्मित की गई और वहाँ से

---

१. सूर्य एवं चक्षु के तादात्म्य के लिये देखिये श्रीवास्तव, वही, पृ० ५३.

चन्द्रभागा नदी में प्रविष्टि कराई गई ॥३०॥ चन्द्रभागा से व्यास में व्यास से सतलज में और सतलज से यह यमुना नदी में आ पड़ी ॥ ३१ ॥ और यमुना से यह धीरे-धीरे गङ्गा में ले आई गई और गङ्गा से मोदङ्गा[1] नामक महानद में लाई गई ॥३२॥

मेरे ही अनुग्रह वश वह स्थान तीर्थों में श्रेष्ठ बताया गया। उस मोदगङ्गा से यह लवणसागर में प्रविष्ट हुई ॥३३॥ और इस समय मेरा स्थापन कार्य प्रवर्तित करो, तब उस निर्मल और प्रीतिवर्धक वाक्य को सुनकर ॥ ३४ ॥ देवगण हाथ जोड़कर प्रणत होकर स्तवन करते हुए सूर्य के चारों ओर खड़े हो गये। तब समस्त धर्मों के प्राणभूत वैवस्वत ने ॥३५॥ पवित्र देवालय स्थापित कराया। हे श्रेष्ठ देवगणों! भक्तिपूर्वक सूर्य की स्थापना तीन स्थानों[2] में करके ॥३६॥ पवित्र देवकार्य में तत्पर लोग निवृत्ति प्राप्त करते हैं विधि जानने के इच्छुक भास्कर से दीक्षा प्राप्त करके उन लोगों ने जिसे प्रकार अन्तरात्मा आदि से युक्त अग्निमंडल बनाना चाहिये इस प्रकार

१. पूर्वकालीन अध्यायों में केवल उत्तरभारत की नदियों का उल्लेख हुआ है किन्तु यहाँ पर पूर्वी भारत की महानदी का भी उल्लेख किया गया है महानदी की स्थिति के लिए देखिए अली, एस० एम०, वहीं, पृ० ११८.

२. उत्तरकालीन पुराणों में सूर्य के इन तीन प्रसिद्ध स्थानों का भिन्न-भिन्न नामों से उल्लेख हुआ है ये तीन स्थान हैं मूलस्थान (पंजाब में मुल्तान) कालप्रिय (काल्पी, अथवा उज्जैनी) कोणार्क (उड़ीसा) **स्कन्द-पुराण**, ६.७६. (मुण्डीर, कालप्रिय और मूलस्थान) **साम्ब-पुराण**, २६.१४. (कालप्रिय, सुतीर, मित्रवन); **भविष्य पु०**, १.७२. ४-६. (मुण्डीर, कालप्रिय और मित्रवन), **वराह पु०** १७७.५५. (उदयाचल, कालप्रिय, और मूलस्थान) देखिए श्रीवास्तव, वहीं, पृ० २६७-२७०. मिराशी, वी०वी०, थ्री ऐन्सियन्ट फेमस टेम्पुल्स आफ दी सन, **पुराणम**, ८. (१) पृ० ४२, हाजरा, आर०, सी०, थ्री मोस्ट इम्पारटेन्ट प्लेसेज आफ सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया; **भारतीय विद्या**, ४.

॥ ३७ ॥ सूर्य-देवता द्वारा यथोचित रूप से कहा गया दिव्य सूर्यमण्डल किया गया ॥३८॥ यथोचित विधि से बताई गयी सूर्य देवता की अर्चना किया को विश्वकर्मा ने सम्पन्न किया ॥३९॥ तदन्तर पुलकित होकर सब लोगों ने मन्दिर का नामकरण किया, जिसके द्वारा सब लोग मुण्डित किये गये, इसलिये वह मुण्डित कहा जाता है ॥४०॥

वेद-ज्ञानियों ने ऐसे व्यक्तियों को कृतार्थ संज्ञा दी है। मुण्डित धातु मर्दन के अर्थ में प्रयुक्त होती है और इसीलिए उसे मुडीर[1] कहते हैं ॥४१॥ वशिष्ठ बोले—इस प्रकार वह आदि-स्थान युग-युग में प्रशंसित होता है। यह समस्त पापों का हरण करने वाला पवित्र सर्वतीर्थमय और शुभ है ॥४२॥ इस संसार मे भक्तियुक्त दुख समझने वाले जो व्यक्ति हैं वे सब इस मन्दिर के दर्शन से पापहीन हो जाते हैं ॥४३॥ कुछ व्यक्ति जो निर्बुद्धि हैं और अत्यंत अज्ञान से इस तीर्थ में पड़ गये उनकी सम्पत्तियों में स्थिरता नहीं होती ॥४४॥ जब तक सूर्य तपता हैं, जब तक क्षीरसागर है, जब तक भूमि धारण करने वाले पर्वत हैं, देवता हैं, तब तक सूर्य की कीर्ति रहेगी ॥४५॥ पृथ्वी में जो मनुष्य पाप-युक्त उत्पन्न होते है और जो इस क्षेत्र का आश्रय लेते हैं उनका रक्षक सूर्य है ॥४६॥ इस प्रकार का यह सूर्य-देवता ज्ञानी पुरुष द्वारा सदैव आदरणीय है, हे देव ! इस पृथ्वी में कीर्ति एवं धन के आकांक्षी मनुष्य फिर क्यों है ॥ ४७ ॥ समस्त देवताओं द्वारा अधिष्ठित यह सुरेश का स्थान है, वह शान्ति, पुष्टि, सुख और काम देने: वाला है, समस्त जीवों की विपत्तियों का नाशक है ॥४८॥

यही सूर्य का यश है जो कि प्राचीन-काल में मुनियों द्वारा कहा गया। इस

---

१. तुलना कीजिए स्कन्द पु० ७ १३९ ११-१२अ, भविष्य पुराण, १.७६.४-६. मुण्डीर की पहचान सामान्यतः कोणर्क से की जाती है जो उचित प्रतीत होता है यद्यपि काणे ने मुण्डीर को मोढ़ेरा माना है देखिये श्रीवास्तव वही, पृ० २६९,

क्षेत्र में मूर्ति में संस्थित उदीयमान सूर्य को जो देखते हैं ॥४६॥ वे मनुष्य पूतात्मा होकर अपना निस्तार कर लेते और गोत्रवर्धन करते हैं। इस सूर्य-क्षेत्र में मनुष्य जिस जिस कार्य को प्रारम्भ करता है ॥५०॥ इसलोक और परलोक में उस उस कार्य की सिद्धि प्राप्त करता हैं, यह जम्बू द्वीप महाद्वीप है और सर्वश्रेष्ठ कर्म-भूमि है ॥५१॥ जहाँ पर कि इस प्रकार की कीर्ति स्वयं सूर्य देवता द्वारा ही प्रकीर्तित है जहाँ सूर्य स्वयं देखते हैं और जनों को शुद्ध करते हैं ॥५२॥ सूर्य को एक ही मूर्ति दो रूप में कल्पित करके भूतल पर उतारी गयी। प्रत्यष वेला में जो मनुष्य एक बार मुण्डीर[1] को देखते हैं ॥५३॥ उन्हें कभी भी भय, शोक और रोग नहीं होता। मध्यान्ह वेला में जो सूर्य का दर्शन करते हैं ॥५४॥ शीघ्र ही उनके सुख का सूर्य उदित होता है। साम्ब द्वारा बसाये गये इस नगर में जो सायं वेला में सूर्य का दर्शन करता है ॥५५॥ तत्काल उसके धर्म, अर्थ और काम का साधन उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार की युक्ति समझकर सर्वधर्मपरायण समस्त जन सूर्य की कीर्ति गाते हुए सूर्य-लोक को जाते हैं ॥५६॥

यह प्रजापतियों का आलय है, सूर्य के लिये बनवाया गया है, उन्हीं देवता के वर से अनुकम्पित है, यहाँ विघ्न उत्पन्न करने वाले लोग पतंगों की भांति क्षण भर में अग्नि ज्वाला में गिरते हैं ॥ ५७ ॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में तैंतालिसवाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. इस क्षेत्र की महत्ता के लिए देखिए स्कन्द-पु० [illegible]६-७६, भविष्य पु० १.७६.४-६, १.१२६, १६-१७; वराह पु० १७७.[illegible] १७

२. इस अध्याय का रचनाकाल १२५०-१५०० ई० के मध्य निश्चित किया गया है देखिये हाजरा, वही, पृ० ५७,

अध्याय ४४

वशिष्ठ बोले—उन सुरपतियों के स्वामी सूर्य की जय हो जिन्होंने अपने प्रभापटल से समस्त पाप को नष्ट कर दिया है; जो शाश्वत अमल नयन हैं और सम्पूर्ण भुवन रूपी भवन के दीप सदृश है ।।१।। साम्ब बोले—हे देवर्षि धर्मवेत्ताओं ने कहा है कि आचार से आयु बढ़ती है और दुलर्क्षण दूर होते है ।।२।। आचार से मनुष्य सुखगामी होता है, आचार से लक्ष्मी का भोग करता है[2] इसलिए मैं तत्त्वतः आचार के विषय में सुनना चाहता हूँ ।।३।। सूर्य के भक्त पुरुष को किस प्रकार का आचरण करना चाहिये जिससे कि वह सूर्यदेवता की प्रियता प्राप्त करे, समृद्धि और आयु प्राप्त करे ? ।।४।। नारद बोले—जो तुम मुझसे पूछ रहे हो मैं तुम्हें वही आयु, लक्ष्मी एवं कीर्ति हेतु आचरण का सूत्र बता रहा हूँ ।। ५ ।। नास्तिक, श्रद्धाहीन, शास्त्र का उलघन करने वाला गुरू नहीं होना चाहिए । मैथुन में वर्ण-संकर और मर्यादा भंग नहीं होनी चाहिए ।।६।। मनुष्य को अक्रोधी, सत्यवादी, जीवों का अहिंसक, अनिन्दक, अकुटिल और आलस्यरहित होना चाहिये, तिनके नहीं तोडना चाहिए, नाखून नहीं बढ़ाना चाहिए[3] । अशंकित मनवाला एवं सुन्दर केशों वाला होना चाहिए । ब्रह्म-वेला में उठकर धर्म के निमित्त भली-भाति

---

१. धर्म का आधार आचार है देखिए **मनुस्मृति**, १.१०८-११०.

२. देखिये **मनुस्मृति**, ४.१४५-१४६, १५६.

३. **महाभारत**, शान्ति, १९२.१३ 'लोष्ट-मर्दी तृणच्छेदी नखखादी तु यो नरः' ये अल्पायु वाले होते हैं ।

चिन्ता करनी चाहिये, आचमन करके पूर्व और पश्चिम संध्याओं का वन्दन करे[1], उदित होते हुए, अस्त होते हुये, जल में प्रतिबिम्बत, और दोपहरी मे, ग्रहण-वेला में सूर्य को नहीं देखना चाहिये। दूसरे की पत्नी से संबंध नही रखना चाहिये। दोपहरी की वेला में बाल नहीं संवारना चाहिये, दात नहीं धोना चाहिए, और अन्य देवता का पूजन नहीं करना चाहिये, मल और मूत्र वाले स्थान में शयन न करे और न देखे। रजस्वला स्त्री से न बोले। गाँव के समीप, जुते हुए क्षेत्र में मलत्याग न करे, जल में पेशाब न करे[2], भस्म के ऊपर अथवा हड्डियों के ऊपर नग्न होकर न चले, ऊपर मुंह करके न खाये और सड़े गले अन्न को न खाए, भोजन के पश्चात अग्नि स्पर्श करके समस्त अंगों का स्पर्श करे। भूसी, बाल, भस्म, कपास, हड्डी, विलेपन, राख तथा स्वेदादि के ऊपर शयन न करे। पवित्र शान्ति होम इत्यादि पवित्र कार्य करे। सोते हुए, जाते हुए सन्यासी को न उठाए, न रोके, पैर धोकर भोजन करे और पैर सुखाकर शयन करे। अग्नि अथवा ब्राह्मण को जूठा न खिलाये। सूर्य, चन्द्रमा और तारों को न देखे, आते हुए सन्यासी को उठकर आदरपूर्वक अभिवादन करके आसन दे। जाते हुये सन्यासी का पीछे से अनुसरण करे। टूटे हुये कांच के वर्तन[3] में भोजन न करे। एक वस्त्र पहनकर भोजन न करे। नग्न होकर स्नान न करे, न सोये और जूठे हाथ से सिर न छुये। चोटी पकड़ कर सिर पर न मारे, दोनों हाथों से सिर न खुज-लाए, बार बार सिर न धोये, दो बार स्नान न करे। सिर से स्नान करने

---

१. **महाभारत**, शान्ति, १९३,४-५.

२. **महाभारत**, शान्ति, १९३.३ "पुरीषं यदि वा मूत्रं येन कुर्वन्ति मानवाः। राजमार्गगवां मध्ये धान्यमध्ये च ते शुभाः।"

३. सन्यासियों के लिये विधान था कि धातुओं और टूटे हुये वर्तन में भोजन न करें देखिये **मनुस्मृति**, ६.५३.

के बाद तेल से किसी अंग को न छूआये । समान मात्रा में मिला हुआ घी और मधु विष है। नीचे गिरे हुए मूंग और तिल को न खाए, जूठे मुंह न पढ़े और न ही पढ़ाये और दुर्गन्धित वायु से भी न पढ़ाये । इस सम्बन्ध में भगवान यम ने यह गाथा कही है कि जो जूठे मुंह पढ़ता[1] है अथवा स्वाध्याय करता है उसकी आयु नष्ट हो जाती है और उसकी संततियां नष्ट हो जाती हैं। सूर्य, अग्नि, पवन, चन्द्रमा, जल, गाय, ब्राह्मण और नक्षत्रों की ओर मुंह करके रास्ते में मूत्र न करे । दिन और संध्याओं में उत्तर की ओर मुँह करके और रात्रि में दक्षिण की ओर मुंह करके तृणो से ढकी पृथ्वी पर नीवि भाग को ढककर मल-मूत्र त्याग करे, माँस युक्त एवं श्राद्ध का भोजन करके संध्या वंदन न करे । ब्राह्मण, क्षत्रिय और नागों[2] का अपमान न करे । गुरु के साथ छल, और असत्य के साथ समझौता नहीं करना चाहिये । गुरु की निन्दा नहीं करनी चाहिए, गुरु की निन्दा के प्रसंग में दोनों कान बन्द कर लेना चाहिये । दूर से आने पर और लघुशंका के बाद पैरों पर पानी छिड़कना चाहिये और मूत्र के स्पर्श हो जाने पर मार्जन करना चाहिये । प्रातः, मध्यान्ह, अथवा संध्या काल में नहीं चलना चाहिये, अकेले अज्ञात व्यक्ति के साथ तथा शूद्र के साथ नहीं चलना चाहिये तथा गाय, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वृद्ध, भार से थकी हुई, गर्भिणी और क्षीणकाय व्यक्तियों के लिये रास्ता दे देना चाहिए । धारण किये हुये वस्त्र को धारण न करना चाहिये, न पैर से पार करना चाहिये । अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या इन तिथियों में ब्रह्मचारी हो जाना चाहिए । निरर्थक माँस और

---

१. **महाभारत**, शान्ति, १६३, १३, "नित्योच्छिष्टः शंकु शको नेहायुर्विन्दते महत् ।"

२. नाग का सूर्य से निकटतम सम्बन्ध था देखिये **महाभारत**, शान्ति, ३५८-३६३. ओल्धम, सी०, एफ०, **दी सन ऐन्ड दी सरपेन्ट.**

सडा मांस[1] नहीं खाना चाहिये । क्रोध, निन्दा, दुर्भावना, नृशंसता और तीक्ष्णता से हीन नाम होना चाहिए। हीन व्यक्ति से उत्कृष्ट वस्तु भी नही लेना चाहिए। दूसरे के रहस्यों और दोषों को नहीं बताना चाहिए। जो हीन अंग के हों, जो अधिक अंग वाले हों, जो कुरूप हो, जो निर्धन हो, जो जातिहीन हों, जो झूठे हो, जो निन्दित हो, जो विगर्हित हो उनका अपमान नहीं करना चाहिये। नास्तिकता, वेद-निन्दा, द्वेष, दम्भ, अभिमान और तीखापन-इन्हें छोड़ देना चाहिये। दूसरे को दण्ड देने की इच्छा नहीं करनी चाहिये। क्रुद्ध होने पर भी भार्या, पुत्र, दास, दासी, शिष्य और भाइयों को मारना नहीं चाहिये। ब्राह्मण, अतिथि, क्षत्रिय एवं आध्यात्मिक गुरु का निन्दक नहीं होना चाहिये। मल-मूत्र के पश्चात अथवा गन्दी गली पार करने के पश्चात पैर धो लेना चाहिये। जौ से तैयार किया हुआ आहार, खिचड़ी, माँस, बरा और खीर अपने लिए नहीं बनाना चाहिए। सन्यासियों को नित्य भिक्षा देनी चाहिए। प्रातः बेला में पूर्वमुख होकर दातौन करना चाहिए। सूर्योदित होने पर सोना नहीं चाहिए[2]। प्रातः उठकर पिता और आचार्य का अभिवादन करना चाहिये। बिना दन्त धावन किये हुए देवपूजा कार्य में गमन नहीं करना चाहिये। गुरु, वृद्ध और धार्मिकों की अपेक्षा दूसरे स्थान पर शयन नहीं करना चाहिए। गन्दी दिशा को देखकर उत्तर-पश्चिम को सिर करके नही सोना चाहिए। सूर्य

---

१. **महाभारत,** शान्ति, १९३.१४. "न भक्षयेद् वृथामासं पृष्ठमास च वर्जयेत्।"

२. 'अभ्युदित' एक पारिभाषिक-शब्द है जिसका अर्थ है सूर्य के उदित होने पर सोने वाला व्यक्ति, देखिए **अमरकोश,** २.८.५४; **महाभारत,** शान्ति, १९३.५.

की पूजा-कथा में भक्ति करावे। ऐसे लोग यम[1] का धर्म प्राप्त करते हैं. नित्य ब्राह्मण को भोजन कराये विशेष कर कथा वाचक को और अन्त मे बचे समग्र भोजन को खाना चाहिये। रात्रि में स्नान न करे। स्नान करके शरीर को न रगड़ें। स्नान करके अनुलेपन न करे। स्नान करके गीले वस्त्रों मे न खड़ा रहे। वस्त्र को फटकना नहीं चाहिये। मालाओं को अन्दर नहीं रखना चाहिये और न बाहर रखना चाहिये। लाल माला नही पहननी चाहिए। स्नान किये हुए व्यक्ति को सुगन्धित द्रव्य नहीं प्रदानकरना चाहिए। कमल, कुवलय और ताजे असन पुष्पों[2] को छोड़कर श्वेत माला पहननी चाहिये। स्नान किये हुए व्यक्ति को रंग नहीं देना चाहिये। स्नान किये हुये व्यक्ति को सुगन्धित द्रव्य नहीं प्रदान करना चाहिये। साँस को नहीं रोकना चाहिए। अन्य द्वारा धारण की गई वस्तु को नहीं धारण करना चाहिये। जीर्ण एव मलिन (वस्त्र) को भी नहीं धारण करना चाहिए। सम्भव होने पर भी दूसरे की शैय्या पर, दूसरे की धन-सम्पत्ति पर और दूसरे देवता की अर्चना पर अधिकार नहीं जताना चाहिए॥ कीड़े पडे हुए, केश पड़े हुए और तत्व निकाले हुए अन्न को नहीं खाना चाहिए। दूसरे समय पर रहने पर दाल, शाक, गूलर न खानी चाहिए। बकरी, गाय, मयूर, सूखे हुए और बासी मांस को नही खाना चाहिए। हाथ पर नमक नहीं लेना चाहिए। कुत्ते आदि हिंस जन्तुओं के द्वारा चाटे हुए अथवा सूंघें हुये पदार्थ को नहीं खाना चाहिए। रात में दही और सत्तू का भोजन नहीं करना चाहिए। बच्चे अथवा दूसरे के पुत्र के साथ नही खाना चाहिए। केवल शाम सबेरे भोजन करना चाहिए, बीच में[3] नही। हड़बड़ा

१. शरीर साधन के लिए किए गए नित्य कर्म को यम कहते हैं **अमर कोश** २.७.४८. **याज्ञ०** ३।३१३ ने निम्नलिखित यम बतलाए है—ब्रह्मचर्यं, दया, क्षान्तिदानं सत्यमकल्पता, अहिंसाऽएतेयमाधुर्ये दमश्चेति यमाः स्मृताः।

२. पीतसाल नमक वृक्ष, **शिशु०**, ६.४७.

३. **महाभारत** शान्ति, १९३.१० "सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं वेद-नमितम्।"

कर भोजन नहीं करना चाहिए। मौन धारण करके खाना चाहिये। केवल एक बर्तन में भोजन नहीं करना चाहिए। नग्न होकर अथवा लेटकर अथवा बात करते हुए नहीं खाना चाहिए। किसी के बचे हुये अन्न-जल का उपयोग नही करना चाहिए। बिना अतिथियों को दिए हुए नही खाना चाहिए। एक पंक्ति मे अपने खाने से बचे हुए अन्न को किसी और को नहीं देना चाहिये। दधि का अनुपान शुक्ल भोजन से करना चाहिये। दधि, मधु, सत्तू, क्षीर जल आदि बैठकर खाना चाहिये। एक हाथ से आचमन करना चाहिये और तदुपरान्त जल पीना चाहिये। दाहिने पैर के अंगूठे में जल छिड़कना चाहिये ॥७॥ जो व्यक्ति हाथ को सिर से लगाकर दत्तचित्त होकर अग्नि स्पर्श करता है वह व्यवहार कुशल व्यक्ति स्वजातियों में श्रेष्ठता प्राप्त करता है ॥८॥

गीले हाथ से नाक को न छुए। पतित व्यक्तियों के वृतान्त, दर्शन और ससर्ग को छोड़ दे, दूसरे की निन्दा और अप्रिय वचन न बोले। किसी का क्रोध न उत्पन्न करे। दिन में सम्भोग नहीं करना चाहिये। कन्या, बाँझ, अज्ञात, गर्भिणी, अंगहीन, वृद्धा, सन्यासिनी, पतिव्रता, अपने से ऊँचे वर्ण वाली, अत्यंत निकृष्ट वर्ण वाली, पीलिया रोग वाली, कोढ़िन, योगिनी, चकत्तों के दाग वाली, अपने ही कुल में उत्पन्न हुयी जाति-संबन्ध-हीन, और मिर्गी के रोग वाली लड़की[1] को छोड़ देना चाहिए। जो अगम्य स्त्री है उसे पाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। राजा की स्त्री, अपनी सखी, वैद्य की स्त्री, कन्या, वृद्धा, मृत्यु की शरण में गई हुयी ब्राह्मणी और बन्ध्या इनसे सबध न करे। थूक से शुद्ध हो जाना चाहिये। पुण्यात्मा व्यक्ति के घर में वृद्ध, विपन्न, और मित्र, शुक, सारिका और कबूतर और तैलपायिका को रहना चाहिये। संध्या काल में स्वाध्याय और भोजन न करे। रात्रि वेला में पितृ कार्य, शृंगार और क्रयविक्रय का कार्य नहीं करना चाहिये। देवकार्य, पितृकार्य और अपने जन्म-नक्षत्र में सिर से स्नान करना चाहिये। पैर के पीछे अग्नि नही देना चाहिये। संध्या में दिवंगत का हवन नहीं करना चाहिये। इच्छा

१, तुलना कीजिये **मनुस्मृति**, ३.५-१०.

होते हुये भी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए। दिन में नहीं सोना चाहिये। रात्रि में सोने से आयु एवं बुद्धि में वृद्धि होती हैं। बिना आमन्त्रित दर्शनार्थ दूसरी जगह यज्ञ में नहीं जाना चाहिये। रात में अकेले नहीं चलना चाहिये। जब तक पश्चिम की संध्या न आ जाये तब तक घर में रहे। माता और पिता के वचन को चाहे हित हो चाहे अहित करना ही चाहिये। धनुर्वेद, हाथी घोड़ा के पीठ की सवारी और रथचर्या में प्रयत्न करना चाहिये। युक्ति शब्द, कला, गायन, पुराण, इतिहास, आख्यान, माहात्म्य एवं चरित इनके ज्ञान से सम्पन्न होना चाहिए। सूर्य का व्रत सप्तमी[1] को करना चाहिए॥ गाय को पैर से न छुए, गाय की रस्सी को न लांघें। किसी की धरोहर का अपहरण न करें। गाय, ब्राह्मण और स्त्रियों से वीरता न दिखाये॥ अकृतज्ञ[2] नहीं होना चाहिये। अकेले मिठाई नहीं खानी चाहिये। स्त्रियों और स्त्री के भाइयों की नौकरी नहीं करनी चाहिए। इस विषय में ये गाथायें मिलती हैं—निन्दक के समान मित्र संसार में दूसरा नही हैं क्योंकि वह आपके पापों को लेकर के पुण्य देता है। झूठी साक्षी नहीं देना चाहिए। शरणागत को नहीं छोड़ना चाहिये। किये हुये दान का वर्णन नहीं करना चाहिये। मोटी घास को देकर, कांसे के पात्र से और दूसरे बछड़े से गाय नहीं दुहनी चाहिये। रजस्वला स्त्री से सम्भोग नही करना चाहिये। चौथे अथवा छठे दिन स्नान से शुद्ध स्त्री[3] से समविषम दिन

---

१. सूर्य के लिये सप्तमी पर व्रत के लिये देखिये **विष्णुधर्मोत्तर पु०**, ३.१७१.१.-१७, **मत्स्य पु०**, ७४-८०, **पद्मपुराण**, ५.२१.२१५-३२१, **भविष्योत्तर पुराण**, ४३-५३, **राजमार्तण्ड**, श्लोक ११७२-७३.

२. कृतघ्न की गति और प्रायश्चित के लिये देखिये **महाभारत**, अनुशासन, १२,

३. **महाभारत**, शान्ति, १९३.११

में पुत्र पुत्री की कामना करता हुआ निर्विकार होकर सम्भोग करे। अग्नि में अपवित्र वस्तु न फेंके। वर्षा होने पर न दौड़ें। हाथ से हवा देकर अन्न नहीं पकाना चाहिये। बिना यज्ञ किये नया अन्न न खाएँ। सदैव सफेद वस्त्र पहने। दाढ़ी, केश और नखों को बड़ा न होने दें। पानी में परछाई न देखें। पत्नी के साथ बैठ कर नहीं खाना चाहिये[1]। सुखपूर्वक सोई हुए, भोजन करती हुई, जम्हाई लेती हुयी, रति क्रीड़ा में लिप्त युवती स्त्री को एव नग्न स्त्री को नहीं देखना चाहिये। आग में मुँह से हवा न करें न पैर सेकें, उसे नीचें नहीं रख देना चाहिये। अग्नि को न लांघे न पैर से स्पर्श करे। जमीन न खोदें। जल में न थूकें। गन्दी चीजें न फेंके, खून, पशुमज्जा और हड्डियाँ जल में न फेंके। सूने घर में अकेले न सोये। अध्ययन एवं भोजन मे अग्नि, गुरु, देव, द्विज, पति एवं गाय को दाहिने हाथ से न उठाना चाहिये[2]। चरती हुये गाय को और दूसरे के फसल को कुचलती हुयी गाय को रोकना नहीं चाहिये[3]। इन्द्र धनुष देखकर दूसरे को नही दिखाना चाहिये। अधर्मियो के देश में नहीं रहना चाहिये। रोग की दशा में अकेले गली में नही चलना चाहिये। पर्वत पर अधिक समय तक न रहे। व्यर्थ की चेष्टायें न करे। अन्जलि से पानी न पिये, गोदी में बैठ कर न खाएं। विरक्त हो जाने के बाद नृत्य, गीत, वादन आदि न देखें। कांसे के बर्तन में पैर न धोएं। पैर से एवं अत्यन्त वाचाल घोड़े से नही चलना चाहिए। सबेरे की धूप, प्रेत-धूम (चिता से उठता हुआ धुआँ) और झाड़ू की धूल बचानी चाहिये। जुआं न खेले।

---

१. **महाभारत**, शान्ति, १९३.२४. "सहस्त्रियाथ शयनं च भोज्यं च वर्जयेत्।"

२. तुलना कीजिये **महाभारत**, शान्ति १९३, २०.

३. गाय को न मना करने के विधान के के लिये देखिये **मनुस्मृति**, ११.११५. **याज्ञवल्क्यस्मृति**, ३.२६३-२६४.

अपने आप जूता नही उठाना चाहिये। सोते हुए नहीं खाना चाहिये। न हाथ के स्थान से, न आसन के स्थान से, न बाहु से नदी में उतरे। वृक्ष पर न चढ़े, संदिग्ध नाव पर न चढ़े, कुएँ में न उतरे। देवता ब्राह्मण गुरु, राजा, स्नातक, एवं आचार्य के साथ मैथुनवास न करे, भोजन के बाद स्नान न करें। बीमार होने पर और बड़ी रात में न नहाये और अनजाने जलाशय मे न नहाये, न निरन्तर रहे। शत्रु, उसके सहायक, अधार्मिक एवं चोर की सेवा नहीं करनी चाहिये। प्रिय सत्य बोले, अप्रिय सत्य और प्रिय असत्य न बोले। शुष्क कलह उत्पन्न करने वाले वचन न बोले। समस्त शुभ आचरणो मे लगे रहना चाहिए। शरीर के सभी अंगो, नखों, नाभि को हथेली से बिना मन्त्र के नहीं छूना चाहिये, प्रच्छन्न गुप्त बालों को छोड़ देना चाहिये। देवताओं, श्रेष्ठ ब्राह्मणों और गुरुओं की सेवा करनी चाहिये। अपनी रक्षा के लिए ईश्वर की सेवा करे। परवश कार्य को छोड़ दे। सुख की इच्छा करने वाला अपने वश के कार्य करे। आत्मा में संतोष धारण करने वाला धार्मिक बने। अर्थ और काम यदि धर्महीन हों तो त्याग देना चाहिये। वाणी, हाथ, चरण और नेत्र से चंचल नहीं होना चाहिये। परद्रोही, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, वृद्ध, बालक, रोगी वैद्य, जाति बिरादर-संबंधी, भाई-बन्धु, माता-पिता, भाई, पत्नी-पुत्री और नौकरों से झगड़ा नहीं करना चाहिये। जो व्यक्ति विद्यवान न हो उसे गाय, सोना, भूमि, अश्व, गृह, अन्न तिल और घृत दान में नहीं लेना चाहिये। दूसरों के तालाब में नहीं नहाना चाहिये। सप्तपिडो को लेकर नदी, देवनिर्मित्त खोदे गये तालाब और झरनों में स्नान करना चाहिये। क्रोधी, मूर्ख, रोगी, नौकर, गणिका और विद्वानों द्वारा निन्दित तथा बढ़ई, गायक और कायर द्वारा दीक्षित सरोवर में स्नान न करे। कल्याण की कामना वाले व्यक्ति को निन्द्य, प्राणदण्डप्राप्त व्यक्ति, कलङ्कित, ठग, वेश्यापुत्र, कैदी तथा वैद्य[1] के अन्न और शूद्र द्वारा

१. तुलना कीजिये **महाभारत**, अनुशासन, १३५.११,१४,१५. में चिकित्सक, वेश्या, कलङ्कित व्यक्तियों के अन्न को खाने का निषेध है।

जूठा, सूखा, बासी और अधपका अन्न नहीं खाना चाहिये । ध्यानमग्ना निर्भया ब्राह्मणों को यथाशक्ति दान देना चाहिये । प्रजा को अतिशय तृप्त करके तथा चन्द्रसूर्य को देखकर इष्टभार्या, सनातन ऐश्वर्य एवं ब्रह्मलोक को प्राप्त करने के इच्छुक को सूर्य के लिये छत्र और दो उपानह[1] देना चाहिये । अत्युत्तम सम्बन्ध, धन, कुल की उन्नति के इच्छुक को श्य्या, गृह, कुशबंध, पुष्प, उदक, मणि, दधि, मत्स्य, पयस, मांस, शाक आदि को देना चाहिये । शत्रु और सुनार का अन्न कभी न खायें । अपढ़ व्यक्ति का साथ न दे, उनका जल, अन्न, तिल, दीप, भूमि, स्वर्ण, गृह वस्त्र, और गाएँ न ग्रहण करे ।

आध्यात्म ज्ञान में निरत होकर देवता, अतिथि, गुरु और भृत्य की संस्तुति करनी चाहिए । इस प्रकार पवित्र लक्षण वाला सम्यक आचार तुम्हे बताया । सूर्य-भक्त का यह ब्रह्मा द्वारा निर्मित लक्षण आयु, लक्ष्मी, यश और समृद्धि का कारण है ॥११॥ आचार युक्त पुरुष लोक में और परलोक में प्रसन्न होता है । आचारण से ही आयु बढ़ती है और अशुभ लक्षण मिट जाते हैं ॥१२॥ दुराचारी पुरुष संसार में निन्दित होता है वह निरन्तर दुर्भाग्य, व्याधि और अल्पायु वाला होता है ॥१३॥ इसलिये सूर्य-भक्त को सदैव सदाचारी[2] होना

---

१. **महाभारत,** अनुशासन, १३६.१० में श्राद्ध में जूता और छाता ग्रहण करने का विधान है, अनुशासन ६६ में जूते के दान का महत्त्व बताया गया है । सूर्योपासक के लिये इनके दान का औचित्य **महाभारत,** १३-८५ एवं पुराणों में आये जमदग्नि-रेणुका-आख्यान में देखा जा सकता है । श्रीवास्तव, **सनवरशिप इन ऐन्सिन्ट इण्डिया,** पृ० १९७, **साम्बपुराण,** ४५.

२. **महाभारत,** शान्ति १९३. भट्टाचार्य, बी०, **दी कलि वर्ज्याज.** काणे, **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र,** ३, ९२६-९६८.

चाहिये। ऐसा व्यक्ति सूर्य देवता की प्रियता को प्राप्त करता है और अचल वैभव को प्राप्त करता है ॥१४॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण का चौवालीसवाँ अध्याय[1] समाप्त होता है।

१. यह अध्याय ९५०-१०५० ई० के मध्य **साम्ब-पुराण**, में प्रक्षिप्त किया गया, देखिए हाजरा, स्टडीज, भाग १. पृ० ९३.

अध्याय ४५

साम्ब बोले—हे ब्रह्मन ! आपने सूर्य द्वारा निर्मित छत्र का वर्णन किया। जो छत्र एवं पादुका का दान देता है वह इन्द्रलोक को जाता है। हे भगवन ! आप यह रहस्य बताये कि किस प्रकार सूर्य-विनिर्मित छत्र और पादुका का दान किसी ब्राह्मण को देना चाहिये ॥२॥ नारद बोले—प्राचीन काल में जैसे यह घटना हुई वैसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ, प्राचीन काल में क्रीड़ा में भृगुवंशीय जमदग्नि[1] ने बाण चलाये ॥३॥ छोड़े गये उन बाणों को उनकी पत्नी रेणुका ने सूर्य के देदीप्यमान तेज से ले आकर शीघ्र दे दिया ॥ ४ ॥ तदन्तर उस धनुष की डोरी के और बाण के मनोहर शब्द से प्रसन्न होकर उन्होंने पुन बाण छोड़े और उसने फिर उन्हें लौटा दिया ॥५॥ इसके पश्चात ज्येष्ठामूल नक्षत्र में सूर्य के मध्यान्ह में होने पर पुनः बाणों को छोड़कर महर्षि जमदग्नि ने रेणुका से यह कहा ॥६॥ हे विशालाक्षि ! हे सुभ्रु ! जाओ धनुष से निकले हुए इन बाणों को ले आओ ताकि मैं उन्हें फिर छोड़ूँ—इस प्रकार मुनि ने कहा ॥७॥ इस कार्य के लिये जाती हुई वह व्याकुल सुन्दर तरुणी रेणुका वृक्ष की छाया में खड़ी हो गयी, उसके दोनों कमल तुल्य पैर और सिर सूर्य की किरणों से संतप्त हो गये ॥८॥

१, जम्दग्नि की यह कथा **महाभारत**, अनुशासन, ९५-९६ से ग्रहण की गई है। इस अध्याय के श्लोक संख्या ३ब-९, १०-२५, २७-२९-३१अ, ३२, ३४ब, ३५ब-३८ तथा ३९ क्रमशः **महाभारत**, अनुशासन, ९५, ७-१३, १५-१७अ, १९, २०ब-२८ तथा ९६, १-२अ, ३अ, ४-८अ, १२, १३ब-१५ १८-१९, २०-२१ से ग्रहण किये गये हैं।

मुहूर्त भर वहाँ रुककर पति के शाप के भय से विकल होकर उस कल्याणी यशस्विनी ने पुनः बाणों को ले आकर पति को दे दिया ॥ ९ ॥ पसीने में नहाई हुई रेणुका को देखकर बुद्धि से कष्ट को जान कर जमदग्नि ने रुष्ट होकर कहा—क्यों देर से आयी हो ? ॥१०॥ रेणुका ने उत्तर दिया कि मैं सूर्य की किरणों से पीड़ित हो गयी । अत्यधिक तीखे सूर्य के तेज से मेरा सिर और पैर संतप्त हो गया था[1] ॥११॥ इसलिए वृक्ष की छाया में बैठकर मैंने इतनी देरी की । इस बात को सुनकर जमदग्नि ने क्रुद्ध होकर संतप्त करने वाले सूर्य को ललकारा ॥१२॥ उन्होंने चढ़े हुए धनुष को तथा अनेक बाणों को लेकर उसी ओर मुँह किया जिस जिस ओर सूर्य जाते थे ॥ १३ ॥ तब ब्राह्मण का रूप धारण करके सूर्य जमदग्नि के पास पहुँचकर बोले—आप क्रुद्ध क्यों हैं ? सूर्य ने आपका क्या अपराध किया है ? ॥१४॥ सूर्य तो सम्पूर्ण संसार में विद्यमान जल को किरणों के द्वारा ग्रहण करता है और जल ग्रहण करके वर्षा काल में बरसाता[2] है ॥१५॥ उससे अन्न पैदा होता है जो हे विप्र ! मनुष्यों के लिये सुखदायक है । वेद में ऐसा कहा और पढ़ा जाता है कि अन्न ही प्राण है ॥१६॥

हे ब्रह्मन ! इसलिये संसार के कल्याणार्थ रश्मियों से घिरा हुआ वह सूर्य सातों द्वीपों वाली पृथ्वी को जल की वर्षा से आप्लावित करता है ॥१७॥

---

१. सूर्य के तापनशील स्वभाव का प्रकटीकरण महाभारत एवं पुराणों में किया गया है देखिये श्रीवास्तव, **सन-वरशिप इन ऐन्शियन्ट इण्डिया**, पृ०, १९५-९६.

२. सूर्य के वर्षाकारक पक्ष का वर्णन **महाभारत**, (३.३-६७, ७१, १४६); **विष्णु-पु०**, २.९-७,९,१२,१३, १४, १६, **मार्कण्डेय-पु०**, २७.२३. **रामायण**, ६.१०५.१३, **मनु-स्मृति**, ३.७६. **वशिष्ठधर्मसूत्र**, ११.१३, आदि में निरन्तर किया गया है तुलना कीजिये **वायु पु०**, ३१.३७, **ब्रह्माण्ड पु०**, २.१३.१२५, **ऋग्वेद**, १.१६४.१४.

हे ब्राह्मण ! उसी जल से औषधियाँ, लतायें, पत्र और पुष्प आदि उत्पन्न होते है और वर्षा से ही प्राय: सभी प्रकार के अन्न उत्पन्न होते है ।।१८।। उसी से जातकर्म, व्रत, उपनयन, गोदान आदि तथा समस्त वर्णों की समृद्धियाँ होती है ।। १९ ।। यज्ञ और दान कार्य होते हैं बीजसंचय आदि समुच्चय अन्न से अच्छी प्रकार चलते है । हे भार्गव ! आप तो सब जानते हो हैं ।। २० ।। संसार में जितने भी रमणीय कार्य हैं वे सब अन्न से ही होते हैं ।।२१।। हे विप्र ! आप सब जानते हैं जो कुछ मैने कहा है। इसलिये हे भृगुवंशश्रेष्ठ ! मैं आपसे याचना करता हूँ । आप सूर्य पर क्रुद्ध व्यर्थ में हैं ।। २२ ।। इस प्रकार महात्मा सूर्य के कहे जाने पर महातेजस्वी जमदग्नि ने उनका दास्य भाव स्वीकार कर लिया[1] ।।२३।। तब वह भगवान सूर्य देवता ने अग्नि समान उन मुनि से मीठी वाणी में पुनः बोले ।।२४।।

हे विप्र ! निरन्तर संचरण करने वाले सूर्य का आधार संचरणशील है । यह बताए कि निरन्तर चलते हुये सूर्य को आप कैसे जान पाते हैं ? ।।२५।। इस प्रकार कहने वाले ब्राह्मण रूपधारी सूर्य देवता को पहचानकर ज्ञानयुक्त आत्मा उन महर्षि जमदग्नि ने यह वचन कहा ।। २६ ।। मैं ज्ञान नेत्रों द्वारा रवि को अचल अथवा चल जान लेता हूँ, हे पाप रहित, अत: आज मैं दण्ड देकर अवश्य विनय का पाठ पढ़ाऊगा ।।२७।। हे दिवाकर ! अपरान्ह वेला में आप निमेष भर ठहरते है वहाँ मैं आपको जान लूंगा इसमें विचारने की कोई बात नहीं है ।।२८।। सूर्य बोले—हे श्रेष्ठ धनुर्धर ! विप्रश्रेष्ठ ! निश्चय ही आप मुझे जान लोगे किन्तु आप मुझे अपना उपकारी समझे आपके समक्ष दृष्टि-गोचर हुआ हूँ ।।२९।। समस्त लोक की रक्षा के लिए प्रवृत्त दुष्प्राप्य दीप्त

---

१. **महाभारत,** अनुशासन, ९६ में इस कथा में कहा गया है कि सूर्य द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी जम्दग्नि का क्रोध शान्त नहीं हुआ । **साम्ब-पुराण** साम्प्रदायिक सौरोपासना से सम्बन्धित है अस्तु सूर्य की श्रेष्ठता सुन कर जम्दग्नि को शान्त होते हुए यहाँ बताया गया है ।

रश्मियों वाले ऐसे मुझको अपने ज्ञान नेत्रों से जान लिया ॥३०॥ तब हँसकर भगवान जमदग्नि ने लोकप्रकाशक सूर्य को प्रेमभरी दृष्टि से देखकर कहा ॥३१॥ इस ताप के चले जाने का समाधान सोचो जिससे सुखपूर्वक मार्गगमन हो और परम अक्षय की प्राप्ति हो ॥३२॥

ब्राह्मण को छत्र[1] देना चाहिये इससे वह सुखी होता है । हे सुरोत्तम ! आपके ऊपर मेरा क्रोध नहीं है ॥३३॥ समस्त लोकों का कल्याण करने वाले मुझे दिखाई पड़ने वाले आप हैं । जमदग्नि के ऐसा कहने पर भगवान सूर्य ने उन्हें छाता और पादुका दिया ॥३४॥ उन्होंने मुनिश्रेष्ठ जमदग्नि से यह उत्तम वचन कहा — हे महर्षि ! मस्तक की रक्षा करने वाला यह छत्र मेरी रश्मियों का निवारण करने वाला है ॥३५॥ इसे ग्रहण कीजिये और पैरों में पहनने के लिये ये जूते हैं । आज से इस संसार में छाते और जूते का प्रचार होगा ॥३६॥ जो लोग ब्राह्मण को छत्रदान[2] देगें वे पुण्यात्मा परलोक में परम आयु एवं सुख प्राप्त करेंगे ॥३७॥ उनका निवास इन्द्रलोक में होगा । अप्सराओं से घिरे रहेंगे ॥ ३८ ॥ और जो चिकने तेल से उपलिप्त जूते दान देगा वह मनुष्य मरने के बाद गोलोक में निवास करेगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार कहकर लोक पावन भगवान सूर्य उन महर्षि को शान्त करके वहीं पर अन्तर्ध्यान हो गये ॥४०॥

---

१. द्रष्टव्य है कि मग-परम्परा के प्रभाव में भारतीय सूर्य-मूर्तियों को पादुका-युक्त बनाने की प्रथा प्रचलित हो गई थी इसी विदेशी परम्परा का भारतीयकरण इस आख्यान के माध्यम से किया गया है देखिये बनर्जी, जे०, एन०, मिथ्स एक्सप्लेनिंग सम ऐलियन ट्रेट्स आफ नार्थ इण्डियन सन आइकन्स, **इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली**, २८, (१९५२).

२. छत्र एवं उपानह के महत्त्व के लिये देखिये **महाभारत**, अनुशासन, ९५, १७-१९.

हे युदश्रेष्ठ साम्ब ! मैंने भी पुण्य बढ़ाने वाली छत्र और पादुका-दान की वह कथा उनसे कही जैसे सूर्य ने कही थी ॥४१॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में पैंतालीसवां अध्याय[1] समाप्त होता है।

१. हाजरा, स्टडीज, भाग १ पृ० ९३ के अनुसार ४४-४५ अध्यायों को ९५०-१०५० ई के मध्य प्रक्षिप्त किया गया परन्तु ये अध्याय साम्ब-पुराण के प्रारम्भिक भाग के अंग हैं।

अध्याय ४६

साम्ब ने कहा—हे भगवान ! मैं सप्तमी-तिथि[1] का विधिक्रम सुनना चाहता हूँ, आप महामुनि ! सम्यकपूर्वक क्रमशः कहें ॥१॥ नारद ने कहा—महाबाहु साम्ब ! सप्तमियों का श्रेष्ठ विधान सुनो ! भक्तिपूर्वक तुम पूछ रहे हो तुम्हे बताऊँगा ॥२॥ हे यदुकुलश्रेष्ठ ! जैसा कि विवस्वत सूर्य ने बताया है शुक्ल पक्ष में रविवार के दिन जब सूर्य उत्तरायण हों ॥ ३ ॥ और जब पुन्नामधेय नक्षत्र हो तब ज्ञानियों एवं ऋषियों के द्वारा सप्तमीव्रत ग्रहण करना चाहिये । यह व्रत समस्त कामनाओं के फल को प्रदान करने वाला है ॥ ४ ॥ सप्तमियाँ सात बताई गई हैं उनके नाम मुझसे सुनो, पहली मन्दार के पत्तों से, दूसरी काली मिर्चों से ॥ ५ ॥ तीसरा नीम के पत्तों से, चौथी फलों से, पाँचवी अनोदना[2] है और छठी विजय सप्तमी, सातवीं

---

१. विभिन्न प्रकार के सप्तमी व्रतों का निरुपण अन्य पुराणों एवं निबन्धों में भी आता है—**मत्स्य पु०**, ७४-८०, **पद्म पु०**, ५.२१.२१५-३२१, **भविष्योत्तर पु०**, ४३-५३, **नारद पु०**, १ ११६.१-७२. **कृत्यकल्पतरु**, व्रत, १०३-२२५. हेमाद्रि, **चतुर्वर्गचिन्तामणि**, व्रत० १.६३२-८१०. **वर्षक्रिया-कौमुदी**, ३५-३८, **तिथितत्त्व**, ३३-४०, **व्रतरत्नाकर**, २३१-२५५.

२. **बि०** में अनादिनी अशुद्ध है इसके स्थान पर अनोदना होना चाहिये ।

कामिका[1] नाम की सप्तमी है अब इनकी विधि सुनो ।। ६ ।। (इन समस्त सप्तमियों में) मनुष्य ब्रह्मचारी बने, जितेन्द्रिय हो, शौचयुक्त हो, जप एवं होम से समन्वित हो और सूर्य-पूजा में लीन हो ।।७।। पंचमी में पुरुष अपना निर्यास करे, षष्ठी के दिन सम्भोग न करे, मदिरा और माँस का त्याग करे ।।८।।

एक एक करके मन्दार[2] के पत्तों को समर्पित करता हुआ सप्तमी के दिन भक्षण करे ।।९।। तदनन्तर एक एक करके बढ़ाए गए मिर्चों[3] का भक्षण करे,

---

१. कामिका अशुद्ध प्रतीत होता है, कामदा होना चाहिये क्योंकि कामिका व्रत सप्तमी पर न होकर मार्ग कृष्ण २ पर होता है जिसमें स्वर्णचक्र प्रतिमा का पूजन होता है, **अहिल्याकामधेनु०**, २५१. जब कि कामदा सप्तमी व्रत का फाल्गुन शुक्ल सात पर विधान है जिसमें सूर्य-पूजा होती है । **भविष्य-पु०**, १.१०५. १-९. उद्धरित हेमाद्रि, व्रत, १.७२८-७३१, **कृत्यकल्पतरु**, १६९-७२.

२. मन्दार सप्तमी व्रत माघ शुक्ल सात पर होता है, पंचमी पर हल्का भोजन, षष्ठी पर उपवास, सप्तमी व्रत, मन्दार की पूजा, मन्दार पुष्प को खाना, अष्टदलकमल बनाना, और सूर्य की विभिन्न नामों से पूजा, मन्दार स्वर्ग के पाँच वृक्षों में परिगणित हैं; विस्तार के लिए देखिए हेमाद्रि, **चतुर्वर्ग-चिन्तामणि**, व्रत, १.६५०-६५२, **पद्म पु०** ५.२१. २९२-३०६, **कृत्यकल्प-तरु**, व्रत २१९-२२१, **मत्स्य पु०**, ७९. १.१५.

३. मरिचसप्तमी व्रत में शुक्ल सप्तमी सात पर सूर्य पूजा, ब्राह्मण भोजन, 'ओं खखोल्काय' मन्त्र के साथ १०० मिर्चें खाने पड़ते हैं । हेमाद्रि व्रत, १.६९६,

उसी प्रकार नीम[1] के पत्तों को भी एक एक करके बढ़ाना चाहिये ॥१०॥ इसी प्रकार फल नाम वाली सप्तमी[2] में फल के द्वारा ही विधान होता है और अनोदना-सप्तमी[3] के दिन भी इसी प्रकार ओदनरहित[4] भोजन खाना चाहिये ॥११॥ रात दिन केवल वायु का भक्षण करके विजयसप्तमी[5] का पालन

१. निम्बसप्तमीव्रत वैशाख शुक्ल सात से प्रारम्भ कर एक वर्ष तक किया जाता है। कमल के चित्र पर 'खखोल्क' नामक सूर्य की स्थापना, मूलमन्त्र है 'ओं खखोल्कायनम:', सूर्य-प्रतिमा के समक्ष १२ आदित्य, जय, विजय, शेष, वासुकि, विनायक, महाश्वेता एवं सुवर्चला की स्थापना, सप्तमी को निम्बदलों का सेवन तथा सूर्य-प्रतिमा के समक्ष शयन, कर्त्ता समस्त पापों से मुक्त हो जाता हैं देखिये **कृत्यकल्पतरु**, व्रत, १९८-२०३, हेमाद्रि, **चतुर्वर्ग चिन्तामणि**, व्रत, १.६६७-७०१. **निर्णयामृत**, ५२.

२. फलसप्तमी भाद्रपद शुक्ल सात एवं मार्गशीर्ष शुक्ल सात पर होती है। इन दोनों तिथियों की फलसप्तमी के विस्तृत विवरण के लिये देखिये क्रमशः **कृत्यकल्पतरु**, व्रत, २०४-२०५, हेमाद्रि, व्रत, १.७०१-७०२, **भविष्यपुराण** १.२१५. २४-२७. तथा **मत्स्य पु०** ७६-१.१३, **कृत्यकल्पतरु**; २१३-२१४, हेमाद्रि, व्रत, १-७४३-७४४, **पद्म पु०**, ५.२१.२४६-२६२.

३. अनोदनासप्तमीव्रत के विस्तार के लिये देखिये हेमाद्रि, **चतुर्वर्ग चिन्तामणि**, व्रत, १.७०२-५; **कृत्यकल्पतरु**, व्रत, २०५-२०८, **कृत्य-रत्नाकर**, १२१-१२३.

४. ओदन में भक्ष्य, भोज्य एवं लेह्य (चाटना) सम्मलित है किन्तु जल ओदन नहीं है अस्तु जल ग्रहण किया सकता है।

५. रविवार से युक्त शुक्ल सात पर होती है विस्तार के लिए देखिये हेमाद्रि, व्रत, १, पृ० ७०७-७१६, **गरुड पु०**, १.१३०-७.८, ९

६. विस्तार के लिए देखिये **कृत्यकल्पतरु**, व्रत, १६९-१७२, हेमाद्रि, व्रत, १.७२८-७३१.

करना चाहिये ॥१२॥ इसी प्रकार कामिका (कामदा) सप्तमी[1] का पालन करके अलग अलग पत्तों पर इन सप्तमियों का नाम लिखकर ॥ १३ ॥ नए घड़े में उन पत्तों को जल दे। उन पत्तों के रहस्य के विषय में जो बिलकुल न जानता हो ऐसे किसी बच्चे या मनुष्य से किसी एक पत्ते को निकलवाए और इसी रीति से प्रत्येक पक्ष में करे ॥१५॥ जब वे सातों पत्ते प्राप्त हो जाएं तो वही कामिका है। इस प्रकार ये सात-सप्तमियां स्वयं भगवान सूर्य द्वारा बताई गई हैं ॥१६॥

हे साम्ब! जो व्यक्ति ऐसा करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। मन्दार के पत्तों से धन मिलता है और मिर्चों से प्रिय व्यक्ति का संगम। नीम के पत्तों से रोग का नाश, फल से अभीष्ट पुत्र-लाभ, अनोदना से धन-धान्य और विजया से विजय, कामिका से समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है जो भी मनुष्य अथवा स्त्री यह सप्तमी-व्रत करे इसमें कोई संशय नहीं ॥१६॥ जो लोग निरन्तर इस सप्तमी-व्रत का पालन करेंगे उन्हें सूर्य-लोक प्राप्त होगा। उनके लिये त्रैलोक्य में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥२०॥ जो व्रती संयतेन्द्रिय सूर्य के भक्त हैं वे प्रभूत दक्षिणा वाले यज्ञों द्वारा प्राप्त होने वाले फल को प्राप्त करते हैं ॥२१॥ इस प्रकार के व्रतों से मनुष्य अन्य तपस्याओं से न प्राप्त होने वाले फलों को ॥२२॥ सप्तमी-व्रत का पालन करके प्राप्त करता है और निश्चित रूप से उसका निवास सूर्य-लोक में होता है ॥२३॥ ब्रह्मा, इन्द्र और रुद्र के लोक में उसकी अप्रतिहत गति होती है। वह व्यक्ति कभी भी अंधा, कोढ़ी, पुरुषार्थहीन (नपुंसक), अंगहीन और निर्धन नहीं होता ॥२४॥

जो व्यक्ति सप्तमी-व्रत[2] का पालन करता है उसके वंश में उत्पन्न होने वाला प्रत्येक व्यक्ति पत्नी, हाथी, घोड़ा सवारी ऐसे विविध तत्वों को अवश्य

१. देखिये पृ० २०८, टिप्पणी ६.

२. सप्तमी-व्रत की महिमा के लिए देखिये **विष्णुधर्मोत्तर पु०** ३.१६६.१-७.

ही प्राप्त करता है ॥२५॥ हे साम्ब ! जो सप्तमी-व्रत करता है निश्चय ही विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है, धन का इच्छुक सम्पत्ति प्राप्त करता है और स्त्री-इच्छुक व्यक्ति रुपवती भार्या प्राप्त करता है और पुत्र-चाहने वाला व्यक्ति वेद-ज्ञान-सम्पन्न चिरंजीवी पुत्र-पुत्री को प्राप्त करता है ॥२७॥ हे साम्ब ! भोगार्थी व्यक्ति इस व्रत के करने से तरह तरह के वैभवों को प्राप्त करता है, जो व्यक्ति अज्ञान, प्रमाद, अथवा लोभ के कारण व्रत भंग करे ॥२८॥ वह या तो तीन रात तक भोजन न करे अथवा केश का मुंडन करे-इस प्रकार प्रायश्चित करके पुनः व्रत प्रारम्भ करे ॥२९॥ जब सात सप्तमियाँ समाप्त हो जायें तब व्यक्ति को सूर्य की अभ्यर्चना माला और धूप आदि से करना चाहिये ॥३०॥ ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक भोजन कराना चाहिये, ऐसा व्यक्ति अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है। सप्तमी के दिन पवित्र ब्राह्मणों को जो वस्तु दी जाती है ॥३१॥ वह वह पदार्थ अक्षय हो जाता है और सूर्य-लोक को चला जाता है।

हे साम्ब ! इस प्रकार तुमको उत्तम सप्तमी-पर्व-विधि बताई। अब पुनः एकाग्र मन होकर सुनो— व्यक्ति शुक्ल पक्ष की बारह सप्तिमयो[1] को गोमय का आहार करे ॥३३॥ अथवा चूर्णीभूत पत्तों को खाए अथवा दूध पिये अथवा एकमात्र भिक्षा ग्रहण करे ॥३४॥ अथवा जल का आहार करे तथा विविधि प्रकार के पुष्पोपहारों, मनोहर नैवेद्यों ॥ ३५ ॥ नाना प्रकार की गंधों, धूप, गुग्गुल और चन्दन, खिचड़ी और खीर आदि विविध

---

१ निबन्ध साहित्य में चैत्र शुक्ल सप्तमी से प्रारम्भ करके १२ मासो तक बारह शुक्लपक्षीय सप्तमियो के व्रत का उल्लेख किया गया है देखिये हेमाद्रि, व्रत, १.१.१७३, **अहल्याकामधेनु**, ८५१. **विष्णुधर्मोत्तर पु०**, ३.१८२-१.३. इसे द्वादश सप्तमी-व्रत कहा गया जब कि माघ शुक्ल सप्तमी पर प्रारम्भ होनी वाली एक वर्ष तक की सप्तमियों के व्रत को द्वादशाह सप्तमी व्रत कहा गया है हेमाद्रि, व्रत, १.७२०-७२४

अन्नों तथा आभूषणों से दिवाकर की उपासना करे ॥३६॥ सोना इत्यादि दान देकर द्विजों की पूजा करे। ऐसा व्यक्ति मृत्योपरान्त जो फल प्राप्त करता है उसे सुनो ॥३७॥ वह व्यक्ति मन और पवन के वेग से चलने वाले, वैदूर्य (नीलम)[1] मणि के रत्नों से युक्त, किंकिणियों के समूह से युक्त स्वर्णमय विमान पर बैठकर ॥३८॥ तथा कुण्डल, अंगद आदि आभूषणों से भरा पूरा होकर तथा अप्सराओं द्वारा गाया जाता हुआ विचित्र मालाओं और अलकारों से युक्त होकर सूर्य-लोक को जाता है ॥३९॥ हे साम्ब! पुण्य का अंत हो जाने पर पुनः किसी महान वंश में उत्पन्न होता है इस प्रकार प्रत्येक मास एकाग्रचित होकर सूर्य की पूजा करनी चाहिये और प्रयत्नपूर्वक प्रत्येक मास में उनके नामों का यथाक्रम पाठ करना चाहिये।

मधुमास में विष्णु और वैशाख में अर्यमा ॥४१॥ ज्येष्ठ में विवस्वान, आषाढ़ में अंशुमान, सावन में पर्जन्य, भाद्रपद में वरुण, क्वार में इन्द्र ॥४२॥ कार्तिक में धाता, अगहन में मित्र, पूस में पूषा ॥ ४३ ॥ माघ में भग, फागुन में त्वष्टा इस प्रकार क्रमशः उन नामों द्वारा सूर्य की पूजा करनी चाहिये[2] ॥४४॥ व्रत का उपदेश उस व्यक्ति को नही देना चाहिये जो अपना शिष्य न हो या सूर्य का भक्त न हो ॥ ४५ ॥ हे साम्ब! जो पापकर्मी हो, उसे भी नहीं बताना चाहिये। जो व्यक्ति इस व्रत का पाठ सदैव करता है वह इह लोक में सुख प्राप्त करके सूर्य-लोक में समृद्धि प्राप्त

---

१. **वि०** में वैडूर्य अशुद्ध है वैदूर्य होना चाहिये।

२. **विष्णु पु०** २.१० में इन १२ आदित्यों के नाम और उनसे सम्बन्धित मासों का उल्लेख किया गया है। द्रष्टव्य-सिद्धेश्वरी नारायण राय, **पौराणिक धर्म एवं समाज**, पृ० ४८ तुलना कीजिये **साम्ब-पुराण**, ९-३-४.

करता है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में सप्तमीकल्प नामक छियालिसवाँ अध्याय[1] समाप्त होता है ।

---

१. इस अध्याय को **साम्ब-पुराण के** मूल भाग का अंश माना गया है और इसका रचना-काल ५००-८०० ई० के मध्य माना गया है हाजरा, **स्टडीज,** १. पृ० ९३ पद्य १-३अ, ४ब-५अ, ९ब, २२ब-२३अ, २५ब-२६अ, २७ब-२८अ तथा ३८-३९ के अतिरिक्त यह पूरा अध्याय **भविष्य पु०**, १. २०८, ६, ४-५, ७.१६ अ, १७-१८ अ, २१-२३ब, २४अ, २७अ-२८-३५ तथा १-२. ९ १-५अ, ६ब-१२अ १३ब-१४अ. और १५ब-१६अ में संग्रहीत है ।

अध्याय ४७

नारद बोले—अब मैं जप-यज्ञ[1] का विधि-क्रम बताऊँगा। जिन जिन उपायों से उसे सम्पन्न करना चाहिये मैं उसे कहता हूँ ॥ १ ॥ जप-यज्ञ समस्त यज्ञों में सर्वोपरि है। विधिपूर्वक इसके करने से भगवान भास्कर प्रसन्न होते हैं ॥२॥ जो मनुष्य कोई अन्य कार्य करता है अथवा कुछ नहीं करता है इस जप-यज्ञ करने मात्र से वह श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करता[2] है॥३॥ जो महान पापों से युक्त हैं अथवा जो अन्य कार्य करने वाले हैं वे सबके सब सूर्य-जाप (खखोल्क जप[3]) से उन समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥४॥ जो लोग एकचित्त होकर इस जप-विधि का आचरण करते हुए सन्यास ग्रहण करते हैं उसे वैसा न करने पर दुष्ट चित्त वाले असुर हिंसित करते हैं ॥५॥ मूँगा, सोना, मोती, मणि, रुद्राक्ष, पुष्कार (नीलकमल), कुश, अरिष्ट;[4]—जीव-पुष्प और शंख से सूर्य का यज्ञ करना चाहिये ॥६॥ वह यज्ञ भी शब्द

---

१. यज्ञो के विभिन्न प्रकार बताये गये हैं जिसमें जप-यज्ञ भी एक है सर जान वुडराफ, **इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्रशास्त्र**, पृ० ९९-१००.

२. जप के महत्व के लिये देखिये **मनुस्मृति**, २-८७, **वशिष्ठ-धर्मसूत्र**, २६.११, **शंखस्मृति**, १२.२८, **विष्णुधर्मसूत्र**, ५५-२१. वुडराफ **इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्रशास्त्र**, पृ० १०२-१०३

३. सूर्योपासना का मूल मन्त्र है।

४. रीठा अथवा नीमफल

काया, और मन की वृत्ति के अनुसार तीन प्रकार[1] का कहा गया है। उसके भी तीन प्रकार के फल हैं—सौ, हजार और दस हजार ॥७॥ मणि द्वारा आधा लाख, रुद्राक्ष द्वारा दस हजार, पुष्कर द्वारा आठ हजार और कुश से चार हजार ॥८॥

जप[2] करने पर अच्छा फल मिलता है। मूँगे से यज्ञ करने पर अनन्त फल होता है, सोने से यज्ञ करने पर करोड़ गुना और मोती से लाख गुना फल बताया गया है ॥९॥ बहेड़े के बीज से जप करने पर हजार फल होता है और जीवक से जप करने पर पांच सौ और शंख से जप करने पर सौ का फल होता[3] है ॥१०॥ जप करता हुआ व्यक्ति यदि थूके, बकवास करे या जम्हाई ले तो वह पृथ्वी पर बैठकर आचमन करे। पानी छुए अथवा गोबर छुए ॥ ११ ॥ यदि जप करते समय जप माला नीचे गिर जाये तो वृक्षस्थल से उसे ऊपर उठाना चाहिये ॥ १२ ॥ दाहिने अंगूठे को बीच मे रखकर एक एक मनके को क्रमशः खिसकाकर जप प्रारम्भ करना चाहिये ॥१३॥ माला में मनकों की संख्या एक सौ आठ, चौव्वन अथवा सताइस

---

१. तुलना कीजिये **तन्त्रसार**, उद्धरित **इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्रशास्त्र**, पृ० १०३, जिसके अनुसार जप वाचिक, उपांशु, तथा मानस इन तीन प्रकार का होता है। देखिये **लघु हारीत**; ४. पृ० १८६, **मनुस्मृति**, २.८५ **शंखस्मृति**, १२. २९.

२. विधान द्वारा मन्त्रोच्चारण ही जप है किन्तु मन्त्र का वास्तविक अर्थ जाने बिना उच्चारण व्यर्थ है देखिए **षट्कर्मदीपिका** उद्धरित **इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्रशास्त्र**, पृ० १०२, टिप्पणी-२

३. **शंखस्मृति**; १२ के अनुसार अक्षमाला में स्वर्ण, मोती, रुद्राक्ष, पद्माक्ष, पुत्रजीवक, कुश आदि के मनके होने चाहिये तुलना कीजिये **बृहतपराशर** ५. पृ० ८५, **लघु व्यास**, (जीवानन्द, २, पृ० ३७५)।

होना चाहिये[1] ॥१४॥ जप करते समय संख्या की गांठ का लंघन नहीं करना चाहिये ॥१५॥ बिछौने पर बैठकर प्रसन्न भाव से जप करना चाहिये।

अन्तरात्मा संयत हो और मुँह देवता की ओर हो। ग्रहण लगने पर अथवा बादल से बिजली के गिरने पर, दुःस्वपन में, समुद्र लांघते समय ॥१७॥ उत्पात और अनिष्ट आने पर अथवा महापातक व्यक्ति द्वारा बोले जाने पर साधक मनुष्य को गायत्री मंत्र के द्वारा एक सौ आठ बार जप करना चाहिये ॥१८॥ इस प्रकार मैंने पवित्र जप की विधि संक्षेप में बता दी, अब मुद्राओं का लक्षण सम्यक् रुप से बता रहा हूँ ॥ १९ ॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में जप-विधि नामक सैतालिसवाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. अष्टोत्तरशतां कुर्याच्चतुः पञ्चशिका च तथा। सप्तविंशतिका कार्या ततो नैवाधमादिसा।" **स्मृतिचन्द्रिका**, १. पृ० १५३.

२. जप के विस्तृत विवरण के लिए देखिये **स्मृतिचन्द्रिका**, १. पृ० १५२-१५३, **मदनपारिजात**, पृ० ८०, **वीर०** आह्निक प्रकाश, ३२६-३२८.

३. यह अध्याय १२५०-१५०० ई० के मध्य प्रक्षिप्त किया गया देखिये **हाजरा, स्टडीज**, भाग १, पृ० ९३.

अध्याय ४८

नारद बोले—अब मैं मुद्राओं[1] का लक्षण सम्यक पूर्वक बता रहा हूँ ॥१॥ सूर्य देव बोले—हाथ को शिखाओं पर रखकर मनुष्य को अरुण इत्यादि विजय एवं मूलमन्त्र सहित मुद्रा-बन्धों[2] को क्रमानुसार सम्पन्न करना चाहिये ॥२॥ तर्जनी अंगुलियों को थोड़ा थोड़ा मोड रखे और अंगूठे को सिर पर रखे ॥३॥ और कनिष्ठिका अंगुलियों को पृष्ठ लग्न करे तो यही विश्वात्मा (सूर्य) के रथ की मुद्रा बताई गई है ॥ ४ ॥ दोनों अंगूठों में मध्यमा और अनामिका को मिलाये और शेष को ऊँचा रखे तो यह उनके अश्वों की मुद्रा कही गई है ॥५॥ दाहिने और बायें हाथ से सर्प के फण की तरह आकार बनाए तो वह चक्र की मुद्रा है ॥ ६ ॥ दोनों हाथों को पीठ से सटाये, कनिष्ठिका को गोदी से छुआए और अंगुठों को सीधा खड़ा रखे ॥ ७ ॥ यह अरुण की मुद्रा बताई गई है ॥८॥

---

१. मुद्रा तान्त्रिक पूजा का एक विशिष्ट विषय है। मुद्रा के अनेक अर्थ होते हैं जिनमें चार अर्थ तान्त्रिक प्रयोगों से सम्बन्धित हैं (१) आसन (२) अंगुलियों एवं हाथों का प्रतीकात्मक ढंग (३) पंच मकार (४) वह नारी जिससे तान्त्रिक योगी अपने को सम्बन्धित करता है देखिये काणे, **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र**, (हि०) ५, पृ० ६५-६६.

२. इस अध्याय में वर्णित मुद्रायें अंगुलियों एवं हाथों के संयोग से उत्पन्न प्रतीकात्मक ढंग से सम्बन्धित है। आसन के दृष्टिकोण से (**तान्त्रिक टेक्स्ट्स**, भाग १, ४६-४७) के अनुसार सूर्य की केवल एक मुद्रा है-पद्म।

अरुण, इन्द्र, रवि और त्वष्टा इनकी मुद्राएँ अलग अलग हैं ॥ ९ ॥ यह एक दूसरे से मिली न हों, यम और सूर्य एक साथ संश्लिष्ट हों ॥१०॥ त्वष्टा और अरुण यम के मूल में लगे हों तथा उर्ध्व गौर के विधाता से जुड़े हुये बुद्धिमान सूर्य हों ॥११॥ इस मुद्रा को अमृता कहते हैं ॥१२॥ जब अंगुलियाँ बायीं मुट्ठी में लगी हों और एक दूसरे के साथ तर्जनी में लगी हों ॥१३॥ वरुण इत्यादि के प्रसंग में अंगुलियां एक दूसरे से संलग्न न हों ॥१४॥ ऐसी स्थिति में नेत्राकृत मुद्रा कही जाती है ॥ उठे हुए बायें हाथ में नीचे मुख करके ॥१५॥ जब अंगुलियाँ एक दूसरे की गोदी में संलग्न हों और शेष संकुचित हों ॥१६॥

तो उसे मुद्रा-कवच[1] कहते हैं। रवि और चन्द्रमा के मूल से प्रारम्भ करके ऊपर की ओर जब ॥१७॥ आगे की ओर झुकी हुयी समस्त अंगुलियां को छुए तो उसे वसु-मुद्रा कहा जाता है ॥१८॥ नीचे झुके हुए बायें हाथ में दाहिने हाथ को ऊपर की ओर करके ॥१९॥ अरुण, रवि, इन्द्र चन्द्रमा और त्वष्टा का स्मरण करे ॥२०॥ और अंगुलियाँ एक दूसरे के रन्ध्र से निकलती हुयी हों, दाहिने हाथ का अंगूठा उठा हुआ हो ॥२१॥ तो उसे दण्ड मुद्रा कहते हैं ॥२२॥ इसी का नाम खंग मुद्रा है ॥ अरुणास्त्र का स्पर्श न करके सूर्यास्त्र का जब संकुचन हो ॥२३॥ और बायें हाथ के करतल पर रवि की कल्पना हो ॥२४॥

बायें हाथ की कलाई पर स्पर्श हो तो उसे अंकुश मुद्रा कहते हैं ॥२५॥ दाहिने हाथ की अंगुलियों के अग्रभाग थोड़े झुके हुए हों यम और धाता अंगुलियाँ जब पीठ से लगी हुयी हों और शेष उठी हुयी हों तो उसे षट्त्रिंश मुद्रा कहते हैं ॥ २७ ॥ जब यम सूर्य से और अंशुमान स्वर्ण-

---

१, देखिये पोडूवल, आर० के० **ऐडमिनिस्ट्रेटिव रिपार्ट आफ दी आरक्लाजिकल डिपार्टमेन्ट,** (११०६) पृ० ८ ने अनेक मुद्राओं का वर्णन किया है जिनमें कवच, नेत्र और चक्र का भी उल्लेख है।

रेतस से मिल कर ऊपर उठी हुयी हो और पृष्ठ लग्न हों ॥ २८॥ तो उसे व्योमशिखा[1] मुद्रा कहते हैं। इस प्रकार मैंने मुद्राओं[2] का पवित्र लक्षण बताया जिसको सम्यक रुप से प्राप्त करने पर मनुष्य श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करता है[3] ॥ २९ ॥ इस प्रकार साम्बपुराण में मुद्रालक्षण नामक ४८वां अध्याय[4] समाप्त होता है।

---

१. तुलना कीजिये व्योम-मुद्रा, हेमाद्रि, व्रत, १, पृ० २४६-४७.

२. मुद्राओं के विस्तृत विवरण एवं तुलना के लिए देखिये **वीरमित्रोदय** पूजाप्रकाश, तथा आह्निकप्रकाश, **स्मृतिचन्द्रिका**, १. पृ० १४६-१४७, **देवी भागवत**, ११.१६.९८-१०२. **आर्यमन्जुश्रीमूलकल्प**, पृ० ३८०.

३. **आर्यमन्जुश्रीमूलकल्प**, पृ० ३७६. के अनुसार मुद्राओं एव मन्त्रों के संयोग से सभी कर्मों में सफलता मिलेगी और तिथि, उपकरण आदि की अवश्यकता ही नही पड़ेगी क्योंकि मुद्रा देवों को आनन्द देती है **शारदातिलक**, २३.१०६.

४. तन्त्र से प्रभावित होने के कारण इस अध्याय का रचना काल १२५०-१५०० ई० के मध्य माना जाता है देखिये हाजरा, **स्टडीज**, भाग १. पृ० ९६ भ्रष्ट पाठ एवं तन्त्र के टेकनिकल पक्ष से सम्बन्धित होने के कारण कही कही केवल भावार्थ ही दिखाया जा सका है।

अध्याय ४६

नारद बोले—अब शौच, स्नान, करन्यास[1], दैनिक सूर्यानुष्ठानात्मक योग-ज्ञान और विशेषकर उनके देवताओं के विषय में सुनो ॥१॥ जो व्यक्ति दीक्षित हो, सूर्य-भक्त हो, श्रद्धावान हो, बुद्धिमान हो, उसी को सर्वार्थसाधन रुपी इस शास्त्र को बताना चाहिये ॥ २ ॥ पवित्र स्थान में बैठकर पहले विधिपूर्वक आचमन करे। मौन होकर अवगुण्ठन[2] बनाकर सूर्य के सम्मुख मुँह करे ॥३॥ उत्तर की ओर मुँह करके सबसे पहले मिट्टी और जल ले शौच करे, नीचे से गुदा तक शौच करे ॥ ४ ॥ हाथों के जल से पाद-प्रक्षालन करे और पहले मिट्टी लगाकर बाद में कोहनी से कलाई तक हाथ धोये ॥५॥ जनेऊ धारण करके जल पीकर हृदय को दो बार और तत्पश्चात अन्य समस्त इन्द्रियों को स्पर्श करे ॥ ६ ॥ इसके पश्चात पुनः सूर्य की धूप का हृदय से तीन बार स्वाद लेकर जल पिये और सिर मुँह तथा शिखा के ऊपर अन्य इन्द्रियों का स्पर्श करें ॥ ७ ॥ फेन और गुल्ल

---

१. न्यास की अनेक श्रेणियाँ है जिनमें करन्यास एक है देखिये **शारदा-तिलक**, ४.२६-४१, राघवभट्ट ने इनकी व्याख्या दी है। तुलना कीजिये **देवीभागवत**, ११.१६.७६-९१.

२. एक मुद्रा विशेष जिसमें अंगुलियाँ सीधे बन्द करके हाथ को नीचा करके प्रतिमा के चारों ओर घुमाया जाता है ।

से युक्त जल से बायें अंगूठे के ही सहारे पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुँह करके खड़ा हो जाय ।। इस प्रकार साम्ब-पुराण का ४९वाँ अध्याय[1] समाप्त होता है ।

---

१. यह अध्याय **साम्ब-पुराण** के उत्तर भाग का अंश है हाजरा, वही पृ० ९३.

अध्याय ५०

नारद बोले—अब इसके उपरान्त शास्त्रों में निदेशित पूजा-पिण्ड के तथ्य को बता रहा हूँ जो कि मन्त्र और मुद्रादि के योग से अभीष्ट फल प्रदान करने वाला है[1] ॥१॥ मूलमन्त्र से उत्पन्न बीजों को अंगूठे के क्रम से विन्यस्त करके अंगों के मन्त्र से अंगों में आत्म-मुद्रा द्वारा कहे—॥२॥ ओम विश्वात्मा को नमस्कार है यह रथ का मन्त्र है। ओम हरि को नमस्कार है यह अश्वों का मन्त्र है। ओम सर्पों को नमस्कार है यह वासुकि का मन्त्र है। ओम ऋत्विक विधाता को नमस्कार है यह पाद्य[2] का मन्त्र है। ओम आदित्य को नमस्कार है। मिहिर[3]! आओ! आओ अपने वर्ग में बैठो, इसके पश्चात ठः ठः[4] का उच्चारण करना चाहिये। यह मंवाहन मन्त्र है। ओम खखोल्क[5]

---

१. **आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प**, पृ० ३७६ के अनुसार मुद्राओं एवं मन्त्रों के संयोग से सभी कर्मों में सफलता मिलती है।

२. सूर्य के विभिन्न अवयवों एवं साधक के अंगों का तादात्म्य करके विभिन्न मुद्राओं जैसे रथ, अश्व, अरुणादि आदि का उल्लेख किया गया है।

३. मिहिर—मगों की सूर्योपासना के सूर्य देवता का नाम देखिये फ्रेन्क क्युमान्ट, **दी मिस्ट्रीज आफ मिथ्रा** पृ० ३०

४. विपत्तिनाशक वर्ण है।

५. **वि०** में खषोल्काय मुद्रित है जो अशुद्ध है।

के लिए ठः ठः के साथ नमस्कार है यह मूलमन्त्र[1] है। ओम आकाशव्यापी सर्वलोक स्वामी बैठो, ठः ठः के साथ यह स्थापन-मन्त्र है। हृदय में ओम अर्क के लिये ठः ठः के साथ नमस्कार है। सिर में ओम प्रदीप्त के लिये ठः ठः के साथ नमस्कार है। शिखा में विपिट के लिये ठः ठः के साथ नमस्कार है। नेत्र में ओम लोकचक्षु ठः ठः के साथ नमस्कार है। कवच में ओम प्रभाकर के लिये ठः ठः के साथ नमस्कार है। अस्त्र में ओम महातेजस के लिये हुं फट[2] के साथ नमस्कार है। संरोधन मन्त्र है ओम गणेश सहस्त्रकिरण सरोधत्म को ठः ठः के साथ नमस्कार है। सन्निधान मन्त्र है ओम आकाश मे विकसित होने वाले जगच्चक्षु सानिध्य करो ठः ठः के साथ उच्चारण करे। पाद्य मन्त्र है ओम ह्रॅरि टि चिरिटय दीप्तांशु को नमस्कार है। अर्घमन्त्र है ओ गभस्ति केलिकिलिकालिकालि सर्वार्थसाधन के किकिकि इं को नमस्कार है। स्नान-मन्त्र है सवित्र और वरुण को नमस्कार है। वस्त्र-मन्त्र है। ओम षष नेत्र और सहस्त्रकिरण शरीर वाले को नमस्कार हैं। गन्ध-मन्त्र है ओम पिंगल अच्छ-अच्छल को नमस्कार है। पुष्प मन्त्र है ओं अहि अहि लिहि लिहि हिम मालाधर एवं तेजोधिपति को नमस्कार है, धपू-मन्त्र है ओम ज्वलितार्क को नमस्कार है। ओम मिहिर एवं चित्रधारी को नमस्कार है। ओम अंगों को नमस्कार है। महाश्वेता को नमस्कार हैं। दण्डपाणी को नमस्कार है। ओम अरुणादेवी को नमस्कार है। ओम पिंगल को नमस्कार है। ओम अरुणादि को हुं के साथ नमस्कार है। ओम हरिकेशादि रश्मि-पतियों को नमस्कार है! ओम पुंजकस्थलि आदि अप्सराओं को नमस्कार है। दीप्तानन आदि किरणों को नमस्कार है। ओम क्षुपादि भूतमातृकाओ

---

१. यह मूलमन्त्र कृत्यकल्पतरु, व्रत, पृ० ६; भविष्य पु०, ब्रह्मपर्व, २१५-४, मे भी आया है।

२. 'हुं फट' रहस्यात्मक वर्ण अस्त्र-मन्त्र के साथ विघ्नकारक शक्तियों को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त होता है।

को नमस्कार है। ओम ग्रहों को हुं के साथ नमस्कार है। ओम दिग्देवों को नमस्कार है। ओम तेजोधिपति को नमस्कार है यह दीप-मन्त्र[1] है। अर्क एवं गृहों के अमृत को नमस्कार है। यह अर्घ मन्त्र है। ओम सुषोल्काय को ठः ठः के साथ नमस्कार है। ओम अंशुमान, देव, यज्ञपति को ठः ठः के साथ नमस्कार है। नैवेद्य-मन्त्र है। ओम कुंदल एवं दिव्य आद्यप्रिय शक्ति को नमस्कार है। जपन्यास मन्त्र है। ओम दिव्य रुप वाले सर्वभूतात्मा, सर्वतेजोधिपति भानु लोकचक्षुष (सूर्य) को सर्वार्थसाधिनी यज्ञ क्रिया करे। ठः ठः के साथ संहार मन्त्र है ओम हे विरोचन! संहार करो संहार करो! सर्वलोक प्रिय शान्तात्मा सूर्य को प्रणाम है यह शुद्धि मन्त्र है सहस्त्र किरण वाले खखोल्क सूर्य की शरण में हम जाते हैं वह रवि हमे सत्प्रेरणा दें। यह नमस्कार[2] का मन्त्र है। इसके बाद सूर्यहृदय मन्त्र द्वारा दान दे। बारह आदित्य रुपी शरीर वाले हे सूर्य! आप अपने वर्ग के साथ जाये। विसर्जन मन्त्र है ओम हिलि हिलि[3] देव जाओ जिस प्रकार आप आये थे—स्वाहा। ओम ठः ठः के साथ चण्डपिंगल को प्रणाम है। यह विहार मन्त्र है। पदपिण्ड द्वारा श्रेष्ठ पूजा बताई गई है जो कि मुक्ति देने वाली है

१. यहाँ आवाहन, स्थापन, संरोधन, सन्निधान, अर्घ, स्नान, गन्ध; पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य, पुनः अर्घ, जपन्यास संहार, शुद्धि, नमस्कार गायत्री, विसर्जन इन पूजा कृत्यों का उल्लेख किया गया है अन्य तान्त्रिक ग्रन्थों में इन उपचारो का विस्तार से वर्णन है देखिये **ज्ञानमाला**, उद्धरित राघव भट्ट, **निबन्ध-तन्त्र**, **५५. फेतकारिणी तन्त्र**, ३. **सनत्कुमार तन्त्र**, **शिवार्चणचन्द्रिका मन्त्ररत्नावली**, **स्वतन्त्र तन्त्रकालीतन्त्र**, उद्धरित सर जान वुडराफ, **प्रिन्स-पिल्स आफ तन्त्र**, पृ० ७८१-७८५.

२. वैदिक गायत्री के अनुकरण पर सूर्य-गायत्री मन्त्र है।

३. हिलि युनानी सूर्य देवता हिलियास का रुप लगता है बराहमिहिर ने सूर्य के लिये हेलि शब्द प्रयुक्त किया है।

पवित्र है, सदा बल और आरोग्य प्रदान करने वाली है। दूसरी पिण्ड-पूजा का विधान है। पदपिण्ड के द्वारा मैंने संक्षेप में पूजा-विधि बताई। अब संक्षेप में मुझसे वर्णित किया जाता हुआ उस श्रेष्ठदेवता को मुझसे सुनो! ओम उस विश्वात्मा को प्रणाम है। ओम उस रथांगों को प्रणाम है। ओम खखोल्क को नमस्कार है। यह मूल मंत्र है॥ ओम अर्क को प्रणाम है हृदय स्पर्श करे। ओम दीप्त को प्रणाम है शिरस्पर्श करे। ओम चिपिट को प्रणाम है। शीर्ष स्पर्श करे। जगच्चक्षु को प्रणाम है नेत्र को स्पर्श करे। ठः ठः के साथ प्रभाकर को प्रणाम है। यह कवच है। हुं फट के साथ महातेज को प्रणाम है। यह अस्त्र है। ओम के साथ देवांग, महाश्वेतादि, अरुणादि, हरिकेशादि, पुंजक स्थली आदि सबको नमस्कार है। गणाधिपतियों को प्रणाम, छायादि को प्रणाम ग्रहों को प्रणाम, दिग्देवताओं को प्रणाम, इस प्रकार सूर्य-हृदय[1] से समस्त आवाहनादि कार्य होना चाहिये॥ इन तथा अन्य मन्त्रों से विधि है। इस प्रकार साम्ब पुराण में पूजाविधान नामक ५०वाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. इस अध्याय में प्रयुक्त सूर्य के विभिन्न नामों की व्याख्या के लिये देखें श्रीवास्तव, **सन वरशिप इन ऐन्शियन्ट इण्डिया**; टेकननिकल शब्दों के अर्थ के लिए देखिये वुडराफ; **प्रिन्सपिल्स आफ तन्त्र**.

२. यह अध्याय ४८, ४९ अध्यायों से विषय वस्तु द्वारा सम्बन्धित है अस्तु यह भी उत्तरकालीन है देखिये हाजरा, वहीं.

अध्याय ५१

ओम ह्रूं चन्द्रमा को प्रणाम है, ओम हुं मंगल को प्रणाम है। ओम हुं बुद्ध को प्रणाम है। ओम हुं बृहस्पति को प्रणाम है, ओम हुं शुक्र को प्रणाम है। ओम हुं शनि को प्रणाम है-यह ग्रहों[1] के मंत्र हैं। ओम सुराधिपति इन्द्र को नमस्कार है, ओम तेजोधिपति अग्नि को प्रणाम है। ओम प्रेताधिपति यम को प्रणाम है। ओम रक्षाधिपति को प्रणाम है। ओम जलाधिपति वरुण को प्रणाम है। ओम प्राणाधिपति वायु को प्रणाम है, ओम यक्षाधिपति कुबेर को प्रणाम है, ओम सर्वात्मा शंकर को प्रणाम है, ओम विद्याधिपति को प्रणाम है, ओम सर्व-लोकाधिपति ब्रह्मा को प्रणाम है, ओम सर्वनागाधिपति शेष को प्रणाम है। यह दिग्देवताओं[2] के मन्त्र हैं। अब इसके उपरान्त मैं स्नान[3] की उत्तम विधि

---

१. तान्त्रिक ग्रन्थों में विधान है कि सर्वप्रथम विघ्न डालने वाले देवताओं, भूत-प्रेतों आदि को सन्तुष्ट करना चाहिये अस्तु ग्रहों एवं दिग्देवताओं की प्रारम्भ में पूजा की गई है। देखिये वुडरफ, **प्रिन्सिपिल्स आफ तन्त्र**, पृ० ६८५, ग्रहों की पूजा के विषय में देखें बनर्जी, जे० एन०, **डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी**, पृ० ४४३-४४८.

२. दिक्पालों की संख्या एवं नाम विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न है देखिये बनर्जी, वही, पृ० ५१६-५२३.

३. **निबन्धतन्त्र, ज्ञानमाला, फेत्कारिणीतन्त्र**, उद्धरित वुडराफ, **प्रिन्सिपिल्स आफ तन्त्र**, पृ० ७८२-८४ तथा अन्य ग्रन्थों में वर्णित पूजा-उपचारों में स्नान आता है।

बनाऊँगा। हृदयादि मन्त्रों के द्वारा निर्मल जल में सुन्दर तीर्थ में स्नान करे ॥१॥ मन से ही सिर से अंगों में मिट्टी लगाकर पवित्र तीर्थों का ध्यान करके सिर से जल में डुबकी लगाए ॥२॥ धर्मास्त्र नेत्र के द्वारा ब्राह्मण को मन्त्र युक्त करे। तदनन्तर पूरक आदि प्राणायाम[1] द्वारा सात बार खखोल्क मन्त्र द्वारा सूर्य को देखे ॥३॥ त्वचा और अंगूठे इत्यादि के क्रम से मन्त्र संयोग विन्यस्त करे तब अपने हाथ के दोनों तत्वों की संख्या द्वारा अरुणादि को ॥४॥ तदन्तर अमृत नाम वाली मुद्रा का ध्यान करे। पूरकाकुल वायु द्वारा जठराग्नि को जलाना चाहिये ॥५॥ कुम्भक प्राणायाम द्वारा वायु को रोक कर तीनों पापों-(कायिक, वाचिक एवं मानसिक) को नष्ट करे। रेचक प्राणायाम द्वारा वायु को निकाल कर हृदय की शुद्धि करे ॥६॥ पुनः पूरक प्राणायाम द्वारा वायु को खींचकर तेजपिण्ड सूर्य को पिये और उस तेज को खखोल्क मन्त्रों से अपने शरीर में प्रविष्ट करे ॥ ७ ॥ हृदय, मस्तक, मूल भाग, नेत्र, हाथ और हृदय आदि अंगों को तत्त्वयोगपूर्वक विन्यस्य करे ॥८॥

तदन्तर शुद्ध स्वर्ण के समान प्रभावाले बारह दल वाले कमल पर आसीन सूर्य देवता का आत्मा में ध्यान करना चाहिये[2] ॥९॥ इस प्रकार करके मन्त्र मुद्रा के योग से परम भक्ति के साथ पूजा सम्पन्न करे ॥१०॥ जैसे काठ के द्वारा काठ का मंथन करके अग्नि उत्पन्न कर ली जाती है ॥ ११ ॥ उसी प्रकार मन्त्र इत्यादि के बल से निष्कल से सकल[3] सूर्य का आवाहन करके सम्यक रूप

१. पूरक, रेचक एवं कुम्भक के अर्थ के लिये देखिये वुडराफ, **इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्रशास्त्र**, पृ० १३६.

२. तान्त्रिक पूजा में उपासक और उपास्य का तादात्म्य स्थापित करने का विधान है देखिए **गन्धर्वतन्त्र**, ११ (ध्यान) देखिए **दी सरपेन्ट पावर**

३. तान्त्रिक अद्वैत में विश्वास करता है अस्तु देवी अथवा देवता निष्कल है किन्तु प्रारम्भिक अवस्था में तान्त्रिक उसकी पूजा सकल रूप में करता है। तान्त्रिक परम्परा में निष्कल-सकल के विवाद के लिए देखिए **प्रिन्सपिल्स आफ तन्त्र**, पृ० ६४५-६८०.

से योगादि से प्रसन्न मन से पूजा करनी चाहिये ॥१२॥ सूर्य-मन्दिर में, नदी के तट पर, गोशालाओं में, उपवनों में, प्रफुल्लित कमल-वनों में, नदियों और तालाबों में ॥१३॥ नदियों के संगम में, तीर्थों में, पर्वतों में, वनों में, धर्मपीठों मे, समान देशों मे, कुश, पुष्प और फल से सयुक्त स्थान मे ॥१४॥ जो प्रदेश बजर न हो और पानी से भरे पूरे हो अथवा जहाँ भी मन चाहे पूजा करनी चाहिये ॥१५॥ भूमि, सूर्य, अग्नि, जल, प्रतिमा, महायज्ञ, स्वर्ण अथवा ताम्रपात्र में पूजा करनी चाहिये ॥१६॥

मन्त्र-विधान के बिना मनुष्यों की पूजा व्यर्थ होती है। वह पूजा नमस्कार युक्त होने पर सौ गुना अधिक फलवती होती है ॥ १७ ॥ विधिमन्त्र चाहे छोटा हो, मध्यम अथवा उत्तम हो परन्तु क्रमशः सहस्र, लक्ष और कोटि मात्रा में फल प्रदान करता है ॥१८॥ प्रत्येक पूजा-विधि मंत्र-जाप के द्वारा उत्तम होती है ॥ पादपिण्ड द्वारा मध्यम और पिण्ड[1] द्वारा ही कनीयस कही जाती है ॥ १९ ॥ व्योमाकृत, व्योमशिखा इन मुद्राओं का उपयोग आवाहन विसर्जन एवं खखोल्क के शोषण में तृप्तिरक्षा द्वारा करे ॥ २० ॥ रथ, रथादि और दिक्पालो की पूजा में मुद्रा सहित पूजा उत्तम है, जपविधि मध्यम है और शालपद्म अपेक्षाकृत कम है। ॥ २१ ॥ पहले आवाहन[2], तब स्थापन,

---

१. नित्यातन्त्र के अनुसार एकाक्षर मन्त्र को पिण्ड कहते हैं—वुडराफ, **इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्रशास्त्र**, पृ० ८६.

२. तान्त्रिक पूजा के उपचारों-आवाहन, स्थापन, रोध, सान्निध्य, पाद-प्रक्षालन, अर्घ, स्नान, वस्त्र, लेपन, पुष्प, धूप, विभूषण, दीप, बलि, अर्घ्य, जप, न्यास, स्तवन, यज्ञ, संहार, शुद्धि, पान, विहार विसर्जन आदि का उल्लेख यहाँ किया गया है विस्तृत विवरण एवं तुलना के लिए देखिए **ज्ञान-माला, निबन्धतन्त्र, फेतकारिणी शिवार्चनचन्द्रिका, मन्त्ररत्नावली, स्वतन्त्रतन्त्र** उद्धरित, **प्रिन्सपिल्स आफ तन्त्र**, पृ० ७८२-७८४.

रोध, फिर पाद-प्रक्षालन, तदन्तर क्रमशः अर्घ्य, स्नान, वस्त्र, लेपन, पुष्प ॥२२॥ धूप, विभूषण और अन्य विधियों के द्वारा अंगों को तथा अन्यान्य देवों का पूजन यथाक्रम करना चाहिये ॥२३॥ दीप, बलि, अर्घ्य, जप, ध्यान स्तवन, यज्ञ, संहार, शुद्धि, पात, विहार ॥२४॥

विसर्जन, निर्हार-इन सबको पृथक पृथक यथोचित अपने अपने मंत्रों द्वारा भक्तिपूर्वक करना चाहिये ॥२५॥ कलाहीन सूर्य को कलायुक्त बनाकर मंत्र से आवाहन करें जिस देव के आगमन का उदाहरण दिया गया है उसे बुलाना चाहिये ॥२६॥ कमल में उनका उपवेशन ही स्थापन कहा गया है। दूसरे स्थान पर उसके गमन में विघात होना ही रोध कहा गया है ॥ २७॥ जहाँ एकाग्रमन से बैठाया जाये उसे सानिध्य कहते हैं। पैर धोने के लिये जो जल है वही सूर्य देवता का पाद्य है ॥२८॥ सोने-तांबे के पात्र में चन्दन और जल रखकर तथा हाथ में पानी और फल लेकर ॥२९॥ घुटनों के बल बैठकर सूर्य को अर्घ्यदान दे और तब चन्दन की राशि और रोली द्वारा अवलेपन करें ॥३०॥ लाल कमल के न मुरझाये हुए तथा सुगन्धपूर्ण फूलों और कलियों, गन्धधूपादि से पूजा करें ॥३१॥ कर्पूर, गुग्गुल, खस, अगरु, चन्दन और तुरुष्क[1] के चूरों से सुगन्धित धूप दिखाना चाहिये ॥३२॥

अनेक प्रकार के रत्नों और शातकुम्भ[2] आभूषणों द्वारा मन ही मन खखोल्क सूर्य देवता को भूषित करे ॥ ३३ ॥ शरीर के अवयवों इत्यादि और सभी देवताओं की यथाविधि पूजा पुष्पयुक्त चन्दन एवं जल से करनी चाहिये ॥३४॥ प्रभूत मात्रा में साठ दीपक सूर्य को समर्पित करना चाहिये और शंख इत्यादि से घोष करना चाहिये ॥ ३५ ॥ वंशी और वीणा के स्वर

१. अर्थ स्पष्ट नहीं है।

२. स्वर्ण-शिशु०, ६.६, नैषध, १६.३४.

से पवित्र निर्हिर की श्रद्धा एवं मन[1] से निर्दिष्ट विधान के द्वारा उपासना करे ॥ ३६ ॥ यत्नपूर्वक खखोल्क मूल-मंत्र का जप करना चाहिये । पाद्यादि समस्त पूजाओं को और जप को तीन बार करना चाहिये ॥३७॥ खखोल्क हृदय एवं रथों के अंगो का न्यास, गुण और शरीर का सम्यक वर्णन ही स्तव कहा जाता है ॥३८॥ मन्त्र और मुद्रा के भी विशेष योग से, राज्यादि पवित्र द्रव्यों से देवयजन, वषट्[2] और स्वाहा[3] के साथ करना चाहिये ॥३९॥ यह समस्त अग्नि-क्रियायें अग्नि में बताई गयी है । पूजाविधान सहित इन सब क्रियाओं को करने के बाद ॥४०॥

जहाँ संहृति की जाती है उसे संहार कहते हैं । पूजाविधि से इन सब में यदि द्रव्य-मुद्रा हानि हो ॥ ४१ ॥ यदि कोई शरीर से उत्पन्न होने वालेदोष हो तो विशुद्धि से उसका सम्मुनयन सिर, मन, वाणी, दृष्टि और शुद्धि बुद्धि से करना चाहिये ॥४२॥ घुटनों से और हाथों से सात प्रकार का प्रणाम बताया गया है । विप्र को उद्दिष्ट करके यथाशक्ति सात बार प्रारम्भ में प्रणाम करना चाहिये ॥४३॥ अपनी शक्ति के अनुसार गुणवान विप्र को दान देना चाहिये । पुनः निष्कल से सकल करके ॥४४॥ विसर्जन मंत्र द्वारा पुरुषोत्तम की प्राप्ति होती है । और होम का भस्म लेकर भी पुण्य होता है ॥४५॥ इस होम भस्म को उत्तर दिशा में गाड़ देना ही निर्हार बताया गया है । जो पूजा आगम से होती है उसे आनन्द कहा गया है ॥ ४६ ॥ इन सबको पुष्प सहित चन्दन आदि से मन्त्र, मुद्रा, ध्यान, योग आदि द्वारा एकाग्रचित्त

---

१. **कौलावलीतन्त्र** में कहा गया है कि न्यासादि व्यर्थ है यदि भाव का अभाव है, उद्धरित **प्रिन्सपिल्स आफ** तन्त्र पृ० ७३२-३३.

२. देवता को आहुति देते समय उच्चारण किया जाने वाला शब्द

३. देवताओं के उद्देश्य से आहुति देते समय उच्चारण किये जाने वाला शब्द

से प्रातःकाल से प्रारम्भ करके बिना रुके हुए दोपहर तक मन्त्रपरायण होकर सम्पूर्ण पूजा सम्पन्न करनी चाहिये[1] ॥४८॥

शान्ति के निमित्त की गई शान्ति और पुष्टि को मैंने गान्तवान कहा है और दूसरे ज्योतिरत्न तथा अग्नि को ज्योतिर्ज्ञान कहा गया है ॥४६॥ शुक्र, हरित, अत्यग्नि, सर्पि, त्रिनाभि, अहगि और ऋग्विधामा—ये अश्व बताये गये हैं ॥५०॥ अंत में ओंकार सहित नमस्कार करना चाहिये। हृदय और रथ आदि के क्रम से ॥५१॥ पहले आदित्य का आवाहन और पुनः मिहिर का आवाहन अपने वर्ग से ह और बाद में नमस्कार सहित स्वाहा की कल्पना की गई है ॥५२॥ यह ओमकारादि से संयुक्त आकाश-मंत्र है। खखोल्क के लिए हविदान यह मूल-मन्त्र है ॥५३॥ स्थापना में इस प्रकार कहना चाहिये-प्रगव से उत्पन्न होने वाला दिव्य व्योम व्यापी सर्वलोकाधिपति ऐसे हे सूर्य! बैठो बैठो ॥ ५४ ॥ जो अर्क है, प्रदीप्ति है, त्रिपिट है, जगच्चक्षु है, प्रभाकर है उसी महातेजस्वी का यह मंत्र खखोलकादि है ॥ ५५ ॥ यह स्वाहा से अन्त होने वाला प्रणवादिक तत्त्व है ॥ हुंकार के साथ कवच[2] का पाठ करना चाहिये और हुं फट इस अस्त्र-मन्त्र को जपना चाहिये ॥५६॥

जो गायनाधिपति है, सहस्त्रकिरण है और संगीतात्मा है इस प्रकार ओम प्रारम्भ में और स्वाहा अन्त में कहकर संरोध करना चाहिये ॥५७ ॥ ओम आकाश को प्रकाशित करने वाले जगच्चक्षु हे सूर्य देव! आप मेरे पास आयें-इस प्रकार स्वाहा में अन्त होने वाला सान्निध्य-मन्त्र है ॥ ५८ ॥

---

१. यहाँ तान्त्रिक परम्परा की पूजा निर्दिष्ट है तुलना एवं विस्तार के लिये देखिये सर जान वुडराफ, **प्रिन्सपिल्स आफ** तन्त्र

२. रहस्यपूर्ण अक्षर (हुं हूँ) जो कि रक्षाकवच की भाँति प्ररक्षक समझे जाते हैं।

ह्रांचिरींटिचिरींटिर-यह दीप्त-मन्त्र कहा गया है। इसी प्रकार नमः शब्द से अन्त में जुड़ा हुआ यह प्रणवादिक पाद्य-मंत्र पढ़ना चाहिये ।।५६।। किलि कालि काली तथा किरणों से युक्त उस सूर्य देवता को नमन इस प्रकार हुंकार सहित सर्वार्थसाधक मन्त्र को दो बार कहे ।।६०।। अन्त में नमस्कार करके अर्घ-मन्त्र का निर्देश करे और इस मन्त्र का स्थापन में पाठ करे। सविता और वरुण को प्रणाम है ।।६१।। अन्त में नमस्कार की परिकल्पना करके सहस्त्रनेत्र सूर्य को प्रणाम करें—इसे वस्त्र-गन्ध-मन्त्र समझना चाहिये ।।६२।। ह्रिलि और महामालाधरा को प्रणामादि करके अन्त में नमस्कार की परिकल्पना करके सहस्त्रनेत्र सूर्य का पुष्पमंत्र इस प्रकार बताया गया है ।। ६३ ।। ज्वलितार्क, मिहिरज्वल, विचित्र रत्नधारी सूर्य को नमस्कार है यह भूषण मन्त्र ।।६४।।

महाश्वेता[1], दण्डपाणि[2], अरुणि[3], पिंगल[4], इन सब के प्रारम्भ में ओम अन्त में नमः संयुक्त होने चाहिये ।।६५।। अरुण, सूर्य, अंशुमाली, धाता, इन्द्र, रवि, गभस्ति, यन, स्वर्णरेता ।।६६।। त्वष्टा, मित्र और विष्णु ये बारह

१. सरस्वती का विशेषण अथवा पृथ्वीदेवी सूर्य की सेविका देखिए **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया,** पृ० ३११-३१२.

२. दण्डनायक (यम) सूर्य का द्वाररक्षक

३. सूर्य का सारथि-मूर्तऊषा, "आविष्कृतारुण पुरः सरः एकतोऽर्कः" **शकु**० ४.१.

४. सूर्य का अनुचर (अग्नि)-प्राणियों के शुभ-अशुभ कर्मों का लेखक

आदित्य[1] हैं जो कि क्रमश: माघ इत्यादि महीनों में तपते है ।। ६७ ।। इन सब नामों को प्रारम्भ में ओम और अन्त में हुंकार सहित नमस्कार करना चाहिये ।।६८।। हरिकेश, रथौजा, पुंजिकस्थल, क्रतुस्थल, विश्वकर्मा, और रथस्वन ।।६९।। रथचित्र, मेना, सहजन्या, विश्वव्यचा, माठर, सहित रथप्रोत, ।। ७० ।। प्रमलोचन्ती, अनुम्लोचन्ती, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, विश्वाची घृताचीको ।।७१ ।। अर्वाग्वसु, सेनजित, सुषेण, उर्वशी, पूर्वचित्ति–इन सबको मन्त्रविधान सहित संयुक्त करना चाहिये ।।७२।।

दीप्तानन, कुमार, धृगि, योगवह, विराट्, केशी, माठर, अनन्त, निक्षुभा, तेजोवाह-ये बारह अर्कगणाधिप बताए गये हैं। इनकी पूजा प्रणव आदि मे और अन्त में नम: कहकर इनके नाम सहित करनी चाहिये ।।७४।। क्षमा, मैत्री, प्रभा, श्यामा, रोचि, दीप्ति, सुवर्चला[2], इन सात माताओं को अन्त मे नम: कहकर संयुक्त करना चाहिये ।।७५।। वक्र, शुक्र, गुरु, मंगल, शनि केतु, और बुध आदि इन नव ग्रहों को हुंकार और प्रणव सहित संयुक्त करें ।।७६।।

---

१. बारह आदित्यों के नाम पुराणों में भिन्न भिन्न मिलते हैं। प्रारम्भिक पुराणों और **साम्ब-पुराण** के प्रारम्भिक भाग (६-३, ४) में निर्दिष्ट और इस उत्तरकालीन भाग में वर्णित १२ आदित्यों की सूची पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि इसमें नवीन नाम—अरुण, रवि, गभस्ति, स्वर्गरेतस, सूर्य—आ गये है जब कि भग, पूषन, वरुण, विवस्वत, पर्जन्य लुप्त हो गये है। प्रारम्भिक पुराणों में आदित्यों के सूची के तुलनात्मक अध्ययन के लिये देखिये **पौराणिक धर्म एवं समाज**; पृ० ४८.

२. द्रष्टव्य है कि यहाँ सात मातृकाओं के नाम सूर्य की शक्तियो के रुप में दिये गये है जो सौर-पुराण के लिये स्वाभाविक है जब कि अन्य ग्रन्थो मे शिव और विष्णु की शक्तियों के नाम के रूप में सप्तमातृकाओं का उल्लेख किया गया है देखिए उत्पल; (**बृहतसंहिता**, ५७-५६,) **मार्कण्डेय पुराण**, ४४-१२ बनर्जी, **डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी**, पृ० ५०३-८.

इन्द्र, अग्नि, यम, निऋृति, वरुण, वायु, कुबेर, शंकर, ब्रह्मा और शेष-ये दिग्पाल हैं ।।७७।। इन सबको नमस्कार सहित संयुक्त करना चाहिये इसके अनन्तर नमस्कार करना चाहिये ।।७८।। तारादि तेजों के स्वामी जो आप द्वारा नमस्कृत है, और अमर अर्क को निवेदन के समय ।।७९।। जलकुन्दल, दिव्य, आद्य प्रिय को जो प्रारम्भ में ओम और बाद में नमो का उच्चारण करता इसे वह मंत्र पढ़ता है ।।८०।।

अंशुमान और देव–इन दो शब्दों का गायन करना चाहिये । ओम, स्वाहा इस प्रकार आदि और अन्त में संयुक्त न्यासमन्त्र का उदाहरण है ।। ८१ ।। सर्वप्रथम 'नमस्ते' इस प्रकार कहकर प्रारम्भ करना चाहिये । दिव्यरूप वाले सर्वभूतात्मा और सर्वतेजस्वी सूर्य देवता को प्रणाम है ।।८२।। अधिपति, भानु, लोकचक्षु सूर्य को नमस्कार एवं ओंकार सहित कहना चाहिये यह स्तोत्र-मन्त्र है ।।८३।। नमस्कार मे अन्त होने वाली पूजा का उदाहरण दिया गया । होम में स्वाहा और वषट् शब्दों के उच्चारण से तर्पण करना चाहिये ।।८४।। प्रारम्भ में ऊँचे स्वर से समायुक्त दो पद का उच्चारण करके विरोचन इत्यादि स्वाहा में अन्त होने वाले मन्त्र के संहार में कहना चाहिये ।।८५ ।। प्रारम्भ में सर्वलोक विजयी शान्तात्मा सूर्य को प्रणाम करना चाहिये । स्वाहा में अन्त होने वाले शुद्धि-मन्त्र को कहना चाहिये ।।८६।। पहले खखोल्क इत्यादि मन्त्र द्वारा तदुपरान्त 'विघ्न, सहस्त्रकिरण और धीमही आदि मंत्रों द्वारा स्तवन करें ।।८७।। सूर्य हमें प्रेरणा दें इस प्रकार ओंकार से युक्त स्वाहा में अन्त होने वाली नमस्कार-विधि कही गई है ।।८८।।

'स्वर्गेण', 'द्विर्गच्छ' इसके द्वारा और 'द्वादशादित्य' इन मन्त्रों द्वारा ओंकार सहित सूर्य की पूजा करें ।। ८९ ।। गच्छदेव इत्यादि मन्त्र द्वारा एवं प्रणावादि मन्त्र द्वारा अन्त में विसर्जन करें ।।९०।। प्रारम्भ में ओंकार

---

१. ग्रहों की इस सूची में सूर्य और चन्द्र का उल्लेख नहीं दिया गया है ९ ग्रहों की पूजा के लिए देखिये बनर्जी, वही, पृ० ४४३-४४५.

सहित चण्डपिंगल इत्यादि स्वाहा में अन्त होने वाले मन्त्र द्वारा निर्माल्य हरण करें ।।९१।। प्रारम्भ में कही गई देवीभुवोभाग की शुक्ल मिट्टी में चतुष्कोण बनाकर ।।९२।। गोबर से उस मिट्टी एवं भूमि को लीपकर चन्दन और अगरु के पंक से पूजा-मण्डल[1] बनाये ।। ९३ ।। आगे कहे जाने वाले विधान के द्वारा सनातन रथ का चित्र बनाये । पूजा-विधान में वहाँ देव रवि को स्थित करना चाहिये ।। ९४ ।। सात साल अश्वों से युक्त एक चक्के वाले सूर्य के रथ[1] को अरुण से युक्त बनाये ।।९५।। रथ के मध्य में बारह दलों वाला कमल बनाये और बीच में वह्नि, शंख और शिखा के समान उज्ज्वल कर्णिका की कल्पना करें ।।९६।।

आवाहन मन्त्र से तथा व्योम-मुद्रा से एकत्र किन्तु पृथक रश्मिसमूह बनाये ।।९७।। उस सूर्य के समान तेज को मूल-मन्त्र के द्वारा पिंडीकृत्य करके तदनन्तर उसे स्थापन मन्त्र द्वारा आकाश में स्थापन करें ।।९८।। उस कमलदल मे विद्यमान षड्बीज और प्रणव से अन्वित सूर्य देवता की पूजा करें जैसे हृदय आदि ६ अङ्गों द्वारा योग समन्वित होता है ।। ९९ ।। काष्ठ से पैर तक ढके हुए हाथ में कमल लिए हुए महाप्रभाव वाले बारह आदित्यों वाले उस सूर्य देवता का चिन्तन करे ।।१००।। सिर, हृदय, शिखा और कवच-इन अंगों को क्रमशः व्योम मूर्धनि में पूजे ।।१०१।। कमल के पत्ते के अगले भाग में ज्वलद, महाश्वेता, दण्डपाणि, अरुण, पिंगल ।। १०२ ।। आदि को केसर के मूल मे रखकर कमल के पत्र में केसराग्र में पहले की

---

१. कमल रुपी मण्डल द्वारा सूर्य की पूजा के लिए देखिये वुडराफ, **दी सरपेन्ट पावर.**

२. सूर्य के रथ की पूजा वैदिक एवं पौराणिक है देखिये **पौराणिक धर्म एवं समाज,** पृ० ५४ परन्तु तान्त्रिक परम्परा में मण्डल द्वारा इसकी पूजा एक विशिष्ट देन है ।

ही भाँति समर्चना करके ॥ १०३ ॥ उस स्थान पर चित्रित तेजोरूप सूर्य का चिन्तन करें और बारह आदित्यों तथा रुद्रादिकों को क्रमानुसार विन्यस्थ करें ॥१०४॥

हरिकेश, रथ, रथौजस-इन सबको दाहिने और बांये भाग में युक्त करना चाहिये ॥१०५॥ इन सबके द्वारा विश्वकर्मा के अगल बगल मेना और सहजन्या से युक्त रथचित्र का निर्माण करना चाहिये ॥१०६॥ पश्चिम में अश्व के समीप विश्वव्यचा होना चाहिए, अगल बगल माठर का निर्माण होना चाहिये ॥ १०७ ॥ प्रम्लोचा और अमला तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि ये देवाधिदेव सूर्य के समीप होनी चाहिये ॥१०८ ॥ विश्वाची और घृताची से दायां बायां भाग युक्त होना चाहिए। अर्वावसु[1], सेनजित सुषे [ ] को ऊर्ध्व में होना चाहिये। प्रारम्भ में कहे गये दीप्तानलादि बारह अर्कगणाधिप है ॥ १०९ ॥ और उन दोनों के साथ उर्वशी[2] तथा पूर्वचित्ति क्रमानुसार होना चाहिये ॥११०॥ उन्हे तथा प्रारम्भ करके उस कमल दल को प्रत्येक संधि मे विनयस्थ करना चाहिये ॥१११॥ तदन्तर दिशाओं मे चन्द्रादिक दिकदेवताओं को इन्द्रादिक के क्रम से विन्यस्थ करे। वासव आदि को भी विन्यस्थ करे ॥ ११२ ॥

इस प्रकार देवों की स्थापना करके पूजन प्रारम्भ करे। अब मैं यथावत रूप से जैसे पहले बताया है वैसे मन्त्रों को बता रहा हूँ ॥११३ ॥ ओम विश्वात्मा को प्रणाम, हृदय, ओम शुक्रज्योतिष को प्रणाम, ओम चित्र-ज्योति को प्रणाम ओम सत्य ज्योति को प्रणाम, ओम ज्योतिष्मान अग्नि को प्रणाम, ओम शुक्र को प्रणाम, ओम हरित को प्रणाम, ओम अत्यग्नि को प्रणाम। इस

---

१. महाभारत, ३.१३८. के अनुसार अर्वावसु रैभ्य मुनि के पुत्र थे, वे सूर्य-भक्त थे।

२. इन्द्रलोक की एक प्रसिद्ध अप्सरा, पुरुरवा की पत्नी

प्रकार क्रमशः अश्वों का संग्रह करना चाहिए। ओम सर्प को प्रणाम जो वासुकि-हृदय है, ओम चित्रनाभि को प्रणाम जो चक्र-हृदय है, ओम अरुण को प्रणाम जो अरुण-हृदय है, ओम ऋत्विक् विधाता को प्रणाम जो पद्म-हृदय है। ओम आदित्य को नमस्कार 'मिहिर, आओ आओ हूँ ख ठः ठः' यह सर्व आह्लादन मन्त्र है। ओम खखोल्क को प्रणाम ठः ठः जो मूलमन्त्र हैं। ओम व्योमव्यापी सर्वलोकाधिपति सूर्यदेव बैठो बैठो ठः ठः के साथ यह स्थापन-मन्त्र[1] है, अर्क, प्रदीप्त, विपिटि, जगच्चक्षु, पद्माकर (हुं ठः ठः के साथ) और महा-तेजस (हु फट के साथ) क्रमशः सबको हृदय, सिर, शिखा, नेत्र, कवच और अस्त्र के लिए प्रणाम है। ओम गणाधिपति, सहस्रकिरण, संरोधात्मा सूर्य को प्रणाम। यह संरोध-मंत्र है। ओम आकाश-विकासी जगच्चक्षुष, सूर्य देवता को प्रणाम, हे देव! आप समीप आये (ठः ठः के साथ) यह सन्निधापन-मत्र है। ओम इरिटिचिरिट दीप्त अग्नि वाले सूर्य देवता का नमन यह पाद्य-मत्र है। किरण युक्त सूर्य देवता को नमन जो किलि किलि कालिक लि सर्वार्थसाधिनी ककि ककि हु को नमन है, सविता वरुण को नमन यह स्नान-मत्र है। ओम खख नेत्र वाले सहस्र सिर वाले सूर्य को नमन यह वस्त्र-मंत्र है। पिंगल को नमन यह गन्ध-मंत्र है। ओम हिलि हिलि महामालाधर तेजोधिपति सूर्य को नमन यह पुष्प-मंत्र है ओम ज्वलितार्क को नमन यह धूप-मन्त्र है विचित्र रत्नधारी मिहिर को नमन यह भूषण-मंत्र है अथवा आनिम्ब मन्त्र के द्वारा पूजा करनी चाहिये। प्रारम्भ में ओम के साथ महाश्वेता को नमन, दण्डपाणि को नमन, अरुणादेवी को नमन ओम हुं सहित पिंगल को नमन, ओम हुं सहित अरुण को नमन ओम हुं के साथ सूर्य को नमन, ओम हुं सहित अंशुमाली, धाता, इन्द्र, रवि, गभस्ति, यम, स्वर्णरेतस, त्वष्टा, मित्र, विष्णु को नमन-यह आदित्य-

---

१. यहाँ तान्त्रिक-पूजा के विभिन्न उपचारों का उल्लेख किया गया है तुलना के लिए देखिये **ज्ञानमाला, निबन्धतन्त्र, शारदातिलकचन्द्रिका,** उद्धरित वुडराफ, **प्रिन्सपिल्स आफ तन्त्र,** पृ० ७८३-८५.

नाम के मन्त्र है। हरिकेश, रक्षक्रुच्छ, रथीजस, पुंजिकस्थला, क्रतुस्थला, विश्वकर्मा, रथस्वन, रथचित्र, मेनका, सहजन्या, विश्वव्यचस, रथप्रीत, अशमाठर, प्रम्लोचन्ति, अनुम्लोचन्ति, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, विश्वाची, घृताची, आर्वागवसु, सेनजित, सुषेण, उर्वशी, पूर्वचित्त-इन सबको प्रणाम यह रश्मिपति के अप्सराओं के मन्त्र है। प्रदीप्तानन, कुमार, धृणिप, अगावह, विराज, केशी, सुरराज, अरिष्ट, माष, अनन्त, निक्षुभ, तेजोवह-इन सबको प्रणाम-यह गणाधिपों के मंत्र है। ओम क्षुपा, मैत्री, प्रेमा, श्यामा रोचिष, दीप्ति, सुवर्चला को प्रणाम-यह मातृ-मंत्र है। ओम हु सहित-चन्द्र शुक्र, बृहस्पति, मंगल, शनैश्चर, राहु, केतु, बुध, इन्हें प्रणाम, यह ग्रहो के मंत्र है। ओम सुराधिपति इन्द्र को, तेजोधिपति अग्नि को, प्रेताधिपति निऋति को, जलाधिपति वरुण को, प्राणाधिपति वायु को, यक्षाधिपति कुबेर को सर्वविद्याधिपति शंकर को, सर्वलोकाधिपति ब्रह्मा को, सर्वनागाधिपतिति शेष को प्रणाम ये दिग्देवताओं के मंत्र है। ओम तेजोधिपति को प्रणाम यह दीप-मंत्र है। अर्क को प्रणाम। हे देव! अमृत ग्रहण करें। यह नैवेद्य-मंत्र है। ओम जलकुंदल, दिव्य आतोद्यप्रिय सूर्य को नमन यह आतोद्य-मंत्र है। ओम अंशुमान, देवगोप सूर्य को ठः ठः के साथ प्रणाम यह पूजा का जपन्यास-मंत्र है। ओम दिव्य रुप वाले सर्वभूतात्मा। तेजोधिपति लोक-चक्षुष भानु को नमस्कार ॥११४॥ इसके पश्चात क्रमशः मंत्र-मुद्रा आदि द्वारा अग्निक्रिया बताऊंगा। हृदय में अर्क का उल्लेखन एवं धारण करना चाहिए ॥११५॥ घी, चावल और मंदार पुष्प से] आहुति देनी चाहिए यह पूजा बताई गई है ॥११६॥ हे विरोचन! आप संहार करें (ठः ठः के साथ) यह उपसंहार-मंत्र है॥ ओम सर्वलोकप्रिय शान्तात्मा सूर्य को (ठः ठः के साथ) नमन यह शुद्धि-मंत्र है॥ सहस्त्रकिरण सूर्य को हम समर्पित हैं वह सूर्य हमें सत्प्रेरणा दे[1] नमस्कार विधि में अर्क-हृदय-मन्त्र से दान देना चाहिए है द्वादशादित्य जैसे आप आये थे उसी प्रकार अपने

---

१. यह सूर्य गायत्री मन्त्र है।

अपने वर्ग में जाये। इस प्रकार स्वाहा करें यह विसर्जन मन्त्र है। ओम चण्ड पिंगल को प्रणाम यह निर्माल्य मंत्र है॥ इस यज्ञ को जो प्रतिदिन अथवा रविवार को विधिपूर्वक करता है उसका फल सुनो॥११७॥ आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, बल, तेज, यश और निस्सन्तान, पुत्रों को प्राप्त करता है तथा सूर्यलोक को जाता है॥११८॥ अष्टपुष्पिका की विधि देवताओं ने कहा-हर समय उत्साहपूर्वक सूर्य में भक्ति रखनी चाहिए। आचार्य के, गुरुओं के और इस रविशास्त्र के ज्ञाता के कार्य में भक्ति करनी चाहिये॥ ११९॥ पंचमी के दिन हवि का भोजन करके सायंकाल में दांत साफ करे और भोजन करके नियम पूर्वक व्रत धारण करे॥१२०॥

व्यायाम, सम्भोग, क्रोध, मत्स्य, मांस, विषैले तीर से मारे हुए पशु का मांस, हिंसा, मधु शिलापृष्ठ एवं कांस्य में भोजन—इन सबका त्याग कर दे॥१२१॥ षष्ठी में एवं सप्तमी में ऋतुमती स्त्री का स्पर्श, तेल का स्पर्श देवता पर चढ़े पुष्प का लंघन वर्जित बताया गया है।॥१२२॥ हे सूर्य देव! ऐसा कहा गया है कि आप सकल और निष्कल दोनों हैं यह बताने की कृपा करें॥१२३॥ देव बोले—सूर्य जिस प्रकार सकल निष्कल कहा गया है उसे मेरे द्वारा बताया जाता हुआ सुनो॥१२४॥ यह संसार प्रारंभ में व्यापारहीन, द्रोहहीन, मलहीन, ज्ञानहीन, निरानन्द और निरात्मक था॥१२५॥ तत्त्व-चिन्तकों ने उस सद एवं असद रूपी अनित्य अव्यक्त कारण को प्रधान प्रकृति के रूप में कहा है॥१२६॥ जो कि गन्ध, रंग, रस से हीन एवं शब्द और स्पर्श से विवर्जित जगत की योनि है और सर्वार्थ सनातन देवशब्द—है जिसे समस्त जीवों का परम महान कारण कहा गया है वह आद्य अज, सूक्ष्म त्रिगुण और अव्यय है॥१२८॥

उसे श्रेष्ठ पुरुष और परम परमेश्वर कहा गया है जिससे यह सारा स्थावर एवं संगम संसार व्याप्त है॥१२९॥ वह जगत की सृष्टि, एवं संहार

का कारण कहा गया है, असंख्य गुणों से वह युक्त है तेजो रुप समन्वित है ॥१३०॥ वह अव्यक्त कारण है त्रिगुणात्मक है स्वयं एक है इस प्रकार सूर्य को बताया गया है ॥१३१॥ वह श्रेष्ठ देवता योग का आश्रय लेकर सर्वतत्व-वेत्ता है ॥ ऐसे उस देवता ने प्रजाओं की सृष्टि करने के उद्देश्य से जल उत्पन्न करा ॥१३२॥ एकीभूत समुद्र में विद्यमान जलराशि को नारा कहते है उसमें सृष्टि करने के कारण उन्हे नारायण कहा गया है[1] ॥१३३ ॥ उस निर्विभाग एकार्णव के जल में नारायण खखोल्क सूर्य देवता ने अकेले शयन किया ॥१३४॥ एक लाख दिव्य वर्षों तक उस जल में तेजमण्डल सूर्य स्वय शयन करते रहे ॥१३५॥ समय बीतने पर स्वर्णमय अण्हे का निर्माण करके उसमें अनेक शक्तियों से समन्वित स्वयं को निर्मित किया ॥१३६॥

प्रकाश करने वाला वह देवता खखोल्क रूप में विख्यात हुआ उसी के अन्य नाम विराट पुरुष और ब्रह्म हुए ॥ १३७ ॥ सुखादि पांच तत्वों का कारण होने से निगमज्ञों ने उसे खखोल्क कहा ॥ १३८ ॥ गर्भस्त यह सूर्य हिरण्य से घिरा होने के कारण हिरण्यगर्भ नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १३९॥ विशाल होने के कारण अथवा वर्धनशील होने के कारण उसे ब्रह्मा कहा गया ॥१४०॥ देवताओं में महान होने के कारण महादेव और लोकों के ऊपर प्रभावशाली होने के कारण महेश्वर कहा गया ॥१४१॥ समस्त प्रजाये उससे उत्पन्न हुयी है इसलिए प्रजापति कहा गया। पूर्णत्व के कारण वह स्वयं उत्पन्न हुआ अतएव स्वयम्भुव कहा गया ॥१४२॥ हजार मस्तकों वाला हजार चरणों और मुखों वाला तथा हजार भुजाओं वाला वह प्रथम पुरुष कहा जाता है ॥ १४३ ॥ संसार में जो कुछ भी प्रकाशक, तेजोरुप दिखाई पड़ता है वह सब लोक कारण सूर्य के ही रुप में विद्यमान है ॥१४४॥

---

१. मनु० १/१० में इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दी हैं–आपो नारा इतिप्रोक्ता आपो वै नरसूनवः, ता यद् स्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।"

वह सूर्य समस्त उपाधियों से मुक्त नित्य, सदासदात्मक, विज्ञान मात्र तथा अव्यक्त है उसे श्रेष्ठ कारण कहते हैं ॥ १४५ ॥ अव्यक्त से प्रकृति[1] उत्पन्न हुयी, प्रकृति से, सदासद गुण वाला महत्, महत्तत्व से अहंकार और अहंकार से समस्त इन्द्रियाँ ॥ १४६ ॥ इन्द्रियों को और तन्मात्र को उस खखोल्क पुरुष प्रभु ने अपने में प्रविष्ट करके समस्त जीवों का सृजन किया ॥१४७॥ चारों दिशा उसी खखोल्क के कारण से व्याप्त है। महदादि विकार के कारण व्यक्त जगत उत्पन्न हुआ ॥ १४८ ॥ वह सूर्य जब मन के साथ संयोग करता है तो समस्त जीवों की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है ॥ १४९॥ अपने दिन के अंत में वह स्वयं आत्मसुख के लिए शयन करता है ॥१५० ॥ जगने पर वही सूर्य पुनः महाभूतादिकों के साथ त्रिगुणात्मक सृष्टि करता है ॥१५१॥ इस प्रकार वह सहस्त्र किरण सात अश्वों वाला सूर्य चराचर मय संसार को बनाता है और नष्ट करता है ॥ १५२॥

वह तपता है, प्रकाश करता है, गरजता है, बरसता है, वही जलपति है और संभृत वड़वानल है ॥१५३॥ वही कालाग्निरुद्र है जो कि नीललोहित वर्ण वाला है वह सर्वतेजोधिपति है, योगी है महान है ॥ १५४॥ वह आदि-अंत विहीन है, ब्रह्मा है, अक्षर है उससे अधिक श्रेष्ठ देवताओं का भी देवता और कोई नहीं है ॥ १५५ ॥ चराचरमय यह संसार उसी के द्वारा बनाया गया प्रलय में अपने में सभी को समेट लेता है ॥१५६॥ वह चित्रभानु सूर्य अपनी किरणों से त्रैलोक्य को संतप्त करता है वर्षा के कारण वही पर्जन्य के नाम से विख्यात है ॥१५७॥ उसी महान तेजोरुप युगान्तकालीन अग्नि से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समावृत है ॥ १५८ ॥ संहार-काल में संवर्तक[2] अग्नि बनकर वही

---

१ यहाँ पर सृष्टि की उत्पत्ति साँख्य दर्शन के आधार पर बतायी गई है देखिये लारसन, जी० जे० जी, **क्लासिकल सांख्य,** पृ० १६६-२२७.

२. प्रलयाग्नि, 'इतोऽपि वडवानलः सह समस्त संवर्तकैः'' **मर्त**०. २.७६

बारह आदित्यों के रूप से त्रैलोक्य को भस्म करता है ।।१५९।। ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य[1] के रूप में वह क्रमशः सृष्टि, पालन और संहार करता है ।।१६०।।

पूर्व दिशा में उदित होकर पश्चिम दिशा की ओर जाता हुआ, मेरु[2] की प्रदक्षिण करता हुआ सारे संसार को प्रकाशित करता है ।।१६१।। समस्त जीवों के शरीर को आच्छादित करके वह विद्यमान होता है इसीलिए सर्वलोकधारी वह सूर्य अरुण कहा गया है ।। १६२।। निरन्तर जिससे सृष्टि उत्पन्न होती है और जिसमें निरन्तर विद्यमान रहती है उसे ही निगमज्ञ और मनीषी सूर्य कहते हैं ।।१६३।। अंशु को ही किरण कहते है अस्तु उसका नाम अंशुमान है उसका ऐश्वर्य श्रेष्ठ है । देवता राक्षस सभी उसके वशीभूत हैं ।। १६४ ।। इदि धातु परम ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त होती है इसीलिए उसे इन्द्र कहते हैं ।।१६५।। जो तीनों लोकों का परिभ्रमण करता हुआ रक्षित करे उसी को रवि[3] कहते हैं । गभस्तियों के समायोग के कारण उस देवता को गभस्ति कहते हैं ।।१६६।। चूँकि वह यमन करता है इसलिए उसको यम कहते हैं प्रजाओं का सर्जन करते समय इसका सुवर्णमय रेतस द्रवित हुआ इसलिये इस दिवाकर को सुवर्णरेता कहते हैं ।।१६७।। चूँकि यह प्रजाओं की सर्जना करता है, इसलिए

---

१. ब्रह्मा, विष्णु एवं सूर्य का समन्वयात्मक रूप निर्दिष्ट किया है देखिये श्रीवास्तव, **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया** पृ० ३१७-३१९.

२. उपाख्यानों में वर्णित एक पर्वत का नाम जिसके चारों ओर ग्रह घूमते है ।

३. इस अध्याय के १६६-७० तथा ६६-६७ में वर्णित बारह आदित्यों के नामों और **साम्ब-पुराण**, ४.६; ९-३ आदि में वर्णित बारह आदित्यों के नामों में भिन्नता है ।

इसे त्वष्टा कहते हैं और इस रूप में वह समस्त औषधियों में विद्यमान है ॥१६८॥

चूँकि यह सूर्य स्नेहपूर्वक समस्त जीवों पर कृपा करता है इसलिये जगत बंधुवत होने के कारण उसे मित्र कहते हैं ॥१६९॥ जिस आदित्य की रश्मियों के द्वारा यह सब कुछ उत्पन्न हुआ उसे प्रवेशनशील एवं व्यापनशील होने के कारण विष्णु कहते हैं ॥१७०॥ प्रणव से युक्त होकर वह सप्तबीज कहा गया है उस तेजस्वरूप खखोल्क देव का मूल-मन्त्र है ॥१७१॥ उस सूर्य देवता का दीपक ओंकार है मकार साम्प्रदायिक अक्षर है। और पूज्य कार्य में स्वाहा तथा नमस्कार की स्थापना होती है ॥१७२॥ बचे हुए तीन वर्ण जिसे खखोल्क कहा गया है महाभूत के भेद से वह फिर पाँच रूपों में बंट जाता है ॥१७३॥ खकार को ही आकाश कहा गया है जो कि आदि और अन्त हीन है और उसका गुण शब्द है ॥१७४॥ खकार को गर्जन एवं सर्जन होने के कारण वायु कहा गया है इसका गुण स्पर्श है ॥१७५॥ ओंकार को तेज समझना चाहिये और इसका गुण रूप है ॥१७६॥

प्रलयात्मक होने के कारण लकार को वरुण कहते हैं इसका गुण रस है ॥ १७७ ॥ ककार से पृथ्वी का स्मरण होता है पूर्व के चार गुणों से युक्त होने के कारण पाँच गुण हो जाते हैं ॥१७८॥ खखोल्क के रूप में जो पाँच महाभूत बताये गये हैं प्राण इत्यादि. पाँच वायु, बुद्धि और इन्द्रिय ॥१७९॥ पाँच कर्मेन्द्रियाँ सत्वादि तीन गुण, मन, बुद्धि और अहंकार–ये तीन और ॥१८०॥ खखोल्क और बीज ये सब मिलाकर उन्नीस है ॥ इन २६ से सब कुछ व्याप्त है ॥१८१॥ वही यह सूर्य देवता अपने को अपने ही द्वारा उत्पन्न एवं अनुष्ठित करके संसार का पालन और प्रलय करता है ॥१८२॥ यह आदित्य निरन्तर अपनी किरणों से तपता है, सहस्र किरणों से घिरे हुये इसे कुम्भनिभ कहते हैं ॥१८३॥ यह सूर्य नदियों, नदों

और सारे समुद्र से किरणों के सहारे जल ग्रहण करता है[1] ॥१८४॥

अस्त वेला में सूर्य का प्रकाश किरणों के सहारे अग्नि में प्रवेश करता है और दिन वेला में वही अग्नि सूर्य में प्रवेश कर जाता है ॥१८५॥ इस प्रकार परस्पर प्रवेश से यह सूर्य दिन और रात, प्रकाश तथा उष्णता की वृत्ति पालित करता है ॥१८६॥ वही ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश्वर देव है वही ऋक् है, यजुष है और साम है ॥१८७॥ उदय काल में ऋचाओं से, मध्याह्न में यजुषों से, सायंकाल में सामों से दीप्त होता है ॥१८८॥ उसकी तीन रश्मियाँ नीचे पृथ्वी लोक को, चार तिरछे पितृलोक को और तीन ही ऊपर देवलोक को प्रकाशित करती है ॥१८९॥ सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा विश्वव्यच, संयत, सुरथ ॥१९०॥ उदाहृत ये बनाए गये हैं जो कि सूर्य की सहस्र किरणों से प्रकाशित है ॥१९१॥ इस प्रकार सूर्य देवता रश्मियों से समूचे संसार को प्रकाशित करता है और क्षीण होते हुए चन्द्रमा को भरता है ॥१९२॥

इस प्रकार स्वरूप उद्दिष्ट सर्वव्यापी दिवाकर विविध वर्णों से युक्त होकर पाप नाशक बनता है ॥१९३॥ निष्कन्द स्कन्द की मुख से कहा जाता हुआ सुनने के पश्चात, उस देवता की महायज्ञ-विधि को सुनो ॥१९४॥ सर्वाभिलषित फल को प्रदान करने वाले[2] इस सविता देवता को प्रणाम है। बिना दीक्षा लिये हुये जो व्यक्ति इस तंत्र का विचार करता है शीघ्र ही वह कुष्ठ-युक्त होता है और मरने के बाद नरक में जाता है ॥१९५॥ जो व्यक्ति उदार हृदय

१. सूर्य का उपकारक पक्ष अन्य पुराणों (**विष्णु पु०** २.९७-९) तथा **महाभारत** में निरन्तर निर्दिष्ट है देखिये **पौराणिक धर्म एवं समाज**, पृ० ५४-५५.

२. इस अध्याय में वर्णित सूर्य की अवधारणा की तुलना कीजिए **साम्ब-पुराण**, अध्याय, ५, ७., ९, १४ आदि.

हो, कुल सम्पन्न हो, शील और धर्म मे निरत हो, प्रज्ञावान हो, जितेन्द्रिय हो उस सूर्य-भक्त को यह ज्ञान देना चाहिये[1] ॥१६६॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में ५१वाँ अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. इस अध्याय के अनेक पद्य **साम्ब-पुराण**, अध्याय ७ और ६ से संग्रहीत है जैसे ५१.१२६-३६ = ७.६-७; ५१.१३६ – ७.१६ब-२०अ, ५१.१४०अ = ७.१७ब; ५१.१४१अ = ७.१६ब, ५१.१४१ब = ७.१७अ, ५१.१४२ अ = ६.१८अ, ५१.१८७-१६१अ = ७.५४-५५, ५८ब-५६अ और ६२-६३; ५१.१६३ = ६.१६; ५१,१६४-१६५अ = ६.३१; ५१.१६५ब-१६६अ = ६.२५, ५१.१६८अ = ६.३८ब, ५१.१७० = ६.३६.

२. यह अध्याय उत्तरकालीन है और १२५०-१५०० ई के मध्य तान्त्रिक परम्परा को प्रविष्ट कराने के लिए प्रक्षिप्त किया गया देखिये हाजरा, **स्टडीज**, १, पृ० ६३.

अध्याय ५२

अब मैं यह उत्तम ज्ञान वाला रहस्य बताऊँगा जो कि भगवान सूर्य द्वारा सूर्य का रहस्य जो प्रकाश है, बताया गया ।।१।। पहले भूमि और अन्य स्थानों का यथाविधि शोधन करे और उस वसुधा को वर्णक्रमानुसार शुद्ध करे ।।२।। तदन्तर न्यास-मंत्र के द्वारा सकलीकृत[1] करके सूर्य देवता को अधिवासित करे और सूर्य-मण्डल का चित्र बनाकर दत्तचित्त होकर ।।३।। एकान्त में, नदी के तट पर, तीर्थों में, मन्दिरों में- पुष्पों से लदे उद्यानों में, चित्रों से भरे राजभवनों में ।।४।। अथवा आकाश के नीचे जहाँ भी मन रुचे दोषवर्जित भूप्रदेश में पूजा करे ।।५।। ब्राह्मण हो तो पृथ्वी श्वेत होनी चाहिये, क्षत्रिय हो तो लाल, वैश्य हो तो पीली और शूद्र हो तो काली[2] ।।६।। चारों ही वर्णों का यथावत प्रयोग होना चाहिये इसके बाद मंगलजनक शब्दों का निरीक्षण करे ।। ७ ।। प्रशस्त वचन को ग्रहण करे और अप्रशस्त को छोड़ दे। घी और मधु से उपलिप्त गूलर से हवन करे ।।८।।

---

१. सूर्य निष्कल है किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से वह सकल है इसलिये मण्डल द्वारा उनके सकल रूप की पूजा का विधान है देखिए श्रीवास्तव, **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**, पृ० २३६

२. विभिन्न जातियों के लिए विभिन्न वर्ण की भूमि का विधान तत्कालीन समाज में प्रचलित स्तर-विन्यास की ओर संकेत करता है देखिए, प्रभु पी० एन०, **हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन**, पृ० ३०२

इसके बाद पहले कहे अनुसार मन्त्र सहित सूत्र का न्यास करे, सिन्दूर सुई और ग्रन्थि को छोड़ देना चाहिए ॥ ९ ॥ कपास, वल्कल, क्षौम और कौशिक वस्त्रों को यथोचित रूप से हाथ से नापकर समर्पित करे ॥ १० ॥ हृदय-मंत्र से अभिमंत्रित प्रथम सूत्र को एन्द्रदल में तथा अष्ट दल के बीच में पद्म को नियुक्त करे ॥११॥ गायत्री मंत्र से सूर्य का चिन्तन करे। षडक्षर मंत्र का एकाग्रचित्त से जाप करे ॥१२॥ सत्व, रजस और तमस-इन तीन गुणों से युक्त राजस लक्षण कहा गया है ॥१३॥ ४ द्वारों से सुशोभित अत्यन्त क्षीण तथा स्थूल, कुश बिन्दुविवर्जित दिव्य मण्डल[1] का चित्र बनाए ॥१४॥ आठों दिशाओं में तथा सुविदिशाओं[2] में आयुधों का चित्र, पूर्व में ओंकार और पश्चिम पत्ते में खकार निर्मित करे ॥१५॥ दक्षिण पत्र में खोकार और उत्तरी पत्र में लकार, वायुकोण में यकार और अग्निकोण में स्वाकार ॥१६॥

नैऋत्यकोण में हाकार और ईशान कोण में क्षकार, कर्णिका में महा-तेजस्वी देवता का रूप बनाये ॥१७॥ उनके हृदय के बीच में श्वेत संस्थिता देवी का विन्यास करे। आठों दिशाओं और सुविदिशाओं में निशादेवी को नहीं बनाना चाहिए ॥ १८॥ पूर्वी प्राकार के बीच में कवर्ग और पंचमहाभूत और दक्षिणी भाग में चवर्ग, पंच बुद्धि-इन्द्रिय, पश्चिम में टकार वर्ग और पंचकर्मेन्द्रियां, उत्तर में तवर्ग और पांच तन्मात्राएँ, ईशान कोण में पवर्ग

---

१. यद्यपि मण्डल द्वारा सूर्यपूजा तान्त्रिक परम्परा की विशिष्टता है तथापि **मत्स्य पु०**, ७२.३०, ९२.१५, ६४.१२.१३. ७४.६-९. में आठ दलों वाले कमल का चित्र है और सूर्यपूजा के लिए घेरेदार गड्ढे का उल्लेख है। **ब्रह्म पु०** २८-२८ में भी कमल चित्र पर सूर्य के आवाहन का उल्लेख है। तुलना के लिए देखिए **ज्ञानार्णव**, २३.१५-१७, **बृहत्संहिता**, ४७, **महानिर्वाणतन्त्र**, १०.१३७-३८.

२. दो दिशाओं का मध्य बिन्दु.

और अव्यक्त ॥६०॥ आग्नेय में नकार वर्ग और बुद्धि, नैऋत्य में [illegible] वर्ग, वायव्य में ह, ल और मन, दूसरे प्राकार में पूर्व दिशा में सुरेन्द्र, [illegible]कोण में अग्नि, दक्षिण में यम, नैऋत्य में निर्ऋति के अधिपति पश्चिम में वरुण, वायव्य में वायु, सौम्य में सोम, ईशान में ईशान के मुद्रा[illegible] [illegible] करे। तीसरे प्राकार में अशनि, शक्ति, दण्ड, खड्ग, शंख, गदा और [illegible] का चित्रण करे तथा दूसरे पुर में दिशाओं और विदिशाओं में [illegible]मुद्रा देना चाहिए। पूर्व से प्रारंभ करके लोकपालों का आवाहन करे। चौथे आवरण में व्योम पुष्प, बलि और उपहार रखे। ओंकार प्रारम्भ में और स्वाहा अन्त में हो, तदन्तर अग्नि की स्थापना करके आचार्य पगड़ी बाँधकर भूषित होकर भूमि को खोद खोदकर घी और कुश छिड़काकर दक्षिण दिशा में ब्राह्मण को स्थापित करके स्रुवापात्र को [illegible] करे, [illegible] की परिक्रमा करके दाहिने घुटने को जमीन पर रखकर स्रुवा हाथ में लेकर पात्र पकड़ कर छः आहुतियाँ दे। तदनन्तर सान्निध्यकरण को [illegible] वाली इस लक्षण वाली अग्नि को [illegible] कर कुण्डाश्रय [illegible] सूर्य को मन्त्र से आवाहन करे। तदनन्तर शिष्य के लिये [illegible] पाँच पाँच आहुतियाँ दे तब दण्ड और मेखला स्थापित करे। पूर्व की ओर से भक्तों को प्रवेश कराए जो कि हृदय-मन्त्र से अभिमन्त्रित हों, वस्त्र बंधे हुए मुख वाले हों और तीन बार परिक्रमा किये हुये हों, घुटनों के बल जमीन पर बैठकर सिर झुकाकर क्षमा याचना करे ॥[illegible]॥ उसके पुष्प का निर्देश करे। उसी यज्ञ में रवि सहित उसका नाम स्मरण करे ॥[illegible]॥ हृदय में महाश्वेता, भगवान सूर्य का ध्यान करते साधन को देखे तो वह दीक्षित कहा जाता है ॥ २३ ॥ इसके बाद साधक [illegible] अग्नि

स्थापना करके एक एक आहुति प्रदान करे तब अष्टपुष्पिका[1] दिलाए ॥ २४ ॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण में ५२वा अध्याय[2] समाप्त होता है।

---

१. बाण, **हर्षचरित**, पृ० १०३. ने अष्टपुष्पिका द्वारा पूजा का उल्लेख किया है। उदयादित्य वर्मन के सडोकॅ काक थाम अभिलेख में भी अष्टपुष्पिका द्वारा अष्टतनु का उल्लेख है देखिये मजुमदार, **इन्सक्रिप्सन्स आफ कम्बुज**, पृ० ३७७.

२. अध्याय ४७-५२ तक एक इकाई माना गया है। इनका रचना काल १२५०-१५०० ई० के मध्य माना गया है देखिये हाजरा. **स्टडीज** १ पृ० ९३.

अध्याय ५३

नारद बोले—सर्वप्रथम कर्णिका युक्त ८ पत्तों वाले पद्म का चिन्तन करना चाहिये उसके बीच में रश्मि-विग्रह भगवान भास्कर की कल्पना करे ॥१॥ हजारों दिनों के समान, करोड़ो सूर्यों के समान प्रभा वाले महातेजोमय भगवान आदित्य की बुद्धिमान उपासना करे ॥२॥ जो हरित वर्ण वाले अश्व के रथ में बैठा हुआ है जिसका सारथी अरुण है और स्वयं वह रथी सूर्य बैठा हुआ है ॥ ३ ॥ उस आदित्य का लोकशान्ति के लिए मैं आवाहन करता हूँ। हे भगवान सूर्य! आप आयें आपका यज्ञ होने जा रहा है ॥४॥ यह अर्घ्य है, यह पाद्य है, इसे ग्रहण करें। आपको नमस्कार है। आवाहित सहस्रकिरण वाले सूर्य का (ॐ ॐ का उच्चारण करे) स्वागत है। स्वागत है। आप यहां बैठें। दिव्य वनस्पतियों का रस जो गन्ध से भरा हुआ और उत्तम गन्धवाला है और समस्त जीवों के लिये आघ्रेय है उसे आप ग्रहण करें आपको प्रणाम है ॥६॥ धूप, गन्ध, गन्धादि को स्वाहा। यह गन्ध-मन्त्र है। ॐ पंच दीप को स्वाहा यह पुष्पों की दिव्य गन्ध है अब ऐसा कहकर पुष्प-छोड़े यह पुष्प-मन्त्र है ॥७॥ ब्रह्मा द्वारा प्राचीन काल में प्रथित किया यह उत्तम पवित्र यज्ञोपवीत[1] है। हे महातेज सूर्य! आप इसे ग्रहण करें आपको नमस्कार है ॥८॥

---

१. गुप्त काल के उपरान्त देवताओं को यज्ञोपवीत में सूचित किये जाने लगा देखिये बनर्जी, **डेवलेपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी** पृ० २९०-९१.

हे परमेश्वर ! यह समस्त औषधियों से समृद्ध भक्ष्य है, यह अमृत आपका भोजन है इसे ग्रहण करें। ऐसा कहकर अन्न दान करें ॥९॥ यह रत्नोज्ज्वल उत्तम आभूषणों वाला मुकुट[1] है। हे देवाधिदेव ! इस मुकुट को ग्रहण करे ऐसा कहकर मुकुट दे और नमस्कार करे ॥ १० ॥ समस्त वस्त्रों में उत्तम एवं पवित्र यह वस्त्र सूर्य के लिये है यह पवित्र दिव्य कटिभूषण[2] है, देव ! आपको नमस्कार है ॥११॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में पूजविधि-निरुपण में प्रथम पटल वाला ५२वा अध्याय[3] समाप्त होता है।

---

१. देवताओं को मुकुटधारी चित्रित किया जाता था, सूर्य को भी मुकुट से भूषित करने का विधान था देखिए **बृहतसंहिता**, ५७, ३२.४७.५७.

२. द्रष्टव्य कि यहाँ अव्यंग के स्थान पर कटिभूषण का उल्लेख किया गया है इस प्रकार सूर्यमूर्तियों का भारतीयकरण किया गया।

३. हाजरा, **स्टडीज**, भाग १ के अनुसार इस अध्याय से अध्याय ५५ (१.९७) तक एक अन्य इकाई है जो **साम्ब-पुराण,** के उत्तर कालीन भाग में आती है अस्तु इसका रचनाकाल १२५०-१५०० ई० के मध्य माना जाता है।

अध्याय ५४

देवताओं ने कहा—हे देवेश ! संक्षेप में अष्ट-पुष्पिका[1] के विषय में बताएं ॥१॥ देव बोले—ठः ठः के साथ खखोल्क के लिए स्वाहा; सर्वप्रथम खकार युक्त सहित अग्नि से युक्त ओंकार की स्थापना करे। खोंकार को दक्षिण भाग में और वकार को नैऋत्य कोण में ॥२॥ वकार को पश्चिम भाग में, स्वाकार को वायव्य में, और हाकार को उत्तर में तथा क्षकार को ईशान में स्थापित करे। ओंकार के द्वारा आवाहन करे, सान्निध्य में इसे 'ख' कहते हैं विद्या स्थापना में खोंकार को और लकार को पुष्प का कारण समझे ॥७॥ स्वाकार के द्वारा भोज्य भक्ष्य को संयुक्त करे और हाकार को योगी सदैव मुक्ति के कारण में सोचे, क्षकार को स्वयम् सदैव मुक्ति के कारण महातेजस्वी आदित्य माने, बीजसाधन में दक्षिणावर्त में साधक को रक्खे ॥ ६ ॥ तदनन्तर साधक यथान्यास मन्त्रों को प्रयुक्त करें। यही बीजाष्टपुष्पिका है। इस प्रकार साम्ब-पुराण में ५४वें अध्याय का द्वितीय पटल समाप्त होता है।

---

१. अष्टपुष्पिका के द्वारा पूजा का उल्लेख पाशुपतों के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है देखिए पाठक, वी० एस०, **हिस्ट्री आफ शैव कल्ट्स इन नार्दर्न इण्डिया**, पृ० १७-१८.

अध्याय ५५

देव बोले—जो स्वर्ग और अपवर्ग[1] के लिए है जो सर्वार्थ साधन है। उस संवत्सर नाम वाले अतुलनीय मण्डल के विषय में मैं आप से बताता हूँ ॥१॥ ऐसा आचार्य जो संयत, बुद्धिमान और सूर्यशास्त्र का पण्डित हो ऐसा ब्राह्मण जिसने क्रोध, लोभ को छोड़ दिया हो, निरामय हो और प्रशस्त हो ॥२॥ वही गुरु[2] हो और जो अभिषेक-निपुण हो, शास्त्र-भक्त हो, निरामय हो ऐसा परिचारक होना चाहिये ॥ जो कुलीन हो, पवित्र हो, देवद्विज-परायण हो, सूर्य के विधान में तत्पर हो ऐसे शिष्य प्रशंसित होते हैं ॥४॥ और भी जो लोग आर्त हों, अथवा पापरोगादि से विप्लुत हों, संतानहीन हों, धन-हीन हों, उन्हें अभिषेक[3] नहीं करना चाहिए ॥ ५ ॥ सप्तमी[4] के दिन, ग्रहण के दिन और सूर्य की संक्रान्तियों में, अन्याय पुण्य दिनों में अथवा सूर्योदय होने पर मण्डल लिखना चाहिये ॥ ६ ॥ पहले बताए गए पृथ्वी भाग जो कि विस्तृत, शुभ, और पवित्र हो, जो गायों से अध्युषित और ब्राह्मणों से अभिनन्दित हो, में मण्डल लिखना चाहिए ॥ ७ ॥ वह स्थान कण्टक, बांबी और श्मशान

---

१. मोक्ष, परमगति। "अपवर्गमहोदयार्थयोर्भुवमंशाविव धर्मयोर्गतौ। रघु०, ८-१६.

२. गुरु की योग्यताओं के लिए देखें, **प्रिन्सपिल्स आफ तन्त्र** पृ० ५२६-५४१.

३. देवता पर जल छिड़कना।

आदि से वर्जित होना चाहिये और सूर्य-हृदय-मन्त्र द्वारा अर्घ्य देकर उसे पवित्र करे ॥८॥

सांप, शूकर, चूहा, बाल, हड्डी, काष्ठ, भस्म और भूसा आदि दूर कर देना चाहिए, तदनन्तर सूर्य और गुरुदेव को प्रणाम करना चाहिये ॥९॥ उस भूमि में शिष्य संयतमन हो परिभ्रमण करे और शयन करे ॥१०॥ स्वप्नों[1] में यदि प्रासाद, मन्दिर, कानन, वृक्ष, द्रुम ॥ सिंहासन का आरोहण वस्त्र, भूषण, दधि, नारी, छत्र, ध्वज और माला देखे तो प्रशस्त होता है ॥११॥ लोभ को जीतना, बैरी का वध, रुधिर का गिरना, मांस का भोजन, मदिरा का स्वाद और रुधिरपान ॥१२॥ इस प्रकार के देखे गए स्वप्न मनोवाञ्छित को सिद्ध करते हैं। इस प्रकार चन्दन और अगुरु से युक्त हाथ से संस्कार करे ॥१३॥ उस स्थान को नाना ध्वजों से विभूषित करके क्षुद्र घण्टिकाओं के नाद से मुखारित करके डुलाए जाते रमणीय चामरों से रुचिर बना देना चाहिए ॥ १४ ॥ वह स्थान कमल पत्र के पोत से युक्त हो, कदली-स्तम्भों से मण्डित हो, मयूर की पूंछ से देदीप्यमान छत्रवाला हो और चन्दोवे से विभूषित हो ॥१५॥ बिखरे हुए नाना रत्नों वाला हो और हारों की लड़ी से तथा तोरण से शोभायमान हो। तिहाराए गये गाँठ से रहित रेशम कपास अथवा ऊनी सूत ॥१६॥

प्रशंसा योग्य होता है उस वस्त्र को सूर्य के समक्ष रखना चाहिये ॥१७॥ सौम्य के लिए ध्रुवास्पद पश्चिम और दक्षिण में हो ॥१८॥ सूर्य के कमल के बीच में पवित्र कर्णिका बनाए, कर्णिका के ही बराबर केसर हो और उसका दो गुना दल हो ॥१९॥ मण्डल सुन्दर कमल से युक्त हों; बीजपत्र २६ हो और केसर की संख्या २४ हो ॥२०॥ चार शिखरों वाला और उज्ज्वलशिखा वाला श्वेत कमल खीचे और उसके भी बाहर दूसरा चतुष्कोण बनाए ॥२१॥ चार ग्रीवा वाले ऐसे रथ के पवित्र अवयवों को बनाये और पुरावरण के बीच में कन्दरावृत अरुण की रचना करे ॥२२॥ उतने के ही

---

१. स्वप्नों के शुभाशुभ फलों के लिए देखें **धर्मसिन्धु**, पृ० ३५९-६०

बराबर उसके आधे भाग में दो दो रेखाएं खींचे ॥ २३ ॥ और पद्मगर्भ से निकली हुई पश्चिम दिशा में ॥२४॥

आयत युष्टिपद्म की कर्णिका को बताये और यष्टि के अगले भाग में दोनों बगल जुते हुए सात घोड़े निर्मित करें ॥२५॥ यष्टि के मूल से ऊपर अरुण कहा जाता है और क्षोणी को पीठ कहते है और उसके अन्त को शेषभाग ॥२६॥ कर्णिका-तेज के पिण्डरूप में बीज नाम वाले भूतादिक हैं कर्णिका को व्योम बार युक्त और केसर सहित है ॥ २७ ॥ पद्म के अगले भाग वाला मण्डल हस्ति कहा जाता है और पुर में अन्तर्व्योम स्थित भाग को बाह्याकाश समझना चाहिए उसे यष्टिपर्याय कहा जाता है ॥२८॥ रथ को संवत्सर[1] मानना चाहिए और ऋतुएं पितर है ॥२९॥ सुषुम्ना आदि जो हजारों नाड़िया सूर्य के शरीर में है उसके ऊपर उसका पीतभाग है ॥३०॥ अरुण को ही वृगि कहा गया है और छन्द अश्व बताए गये हैं ॥३१॥ पाँच वासुकि है और तीन लोक हैं इस प्रकार सूर्य देवता का वह रथ श्रेष्ठ सर्वमय बताया गया है ॥३२॥

पूर्वोदिष्ट विधान के अनुसार मनसा स्मरण करके कुश और पुष्पों से दत्तचित्त होकर उसे चित्रित करें ॥३३॥ और श्रेष्ठ देवता खखोल्क नाम से विख्यात सूर्य की उपासना करें। यह विधि नित्य है और नैमित्तिक भी है ॥ ३४ ॥ दर्पण में सुन्दर भवन में स्थित होकर तेजोदानादि दीक्षा करनी चाहिये। इस रथ में महायोग बाह्य है ॥ ३५ ॥ रथकन्दर की विधियाँ अर्थगुण सम्मित हैं ॥ बीथी आकार में दूनी बड़ी बनानी चाहिये ॥३६॥ कमल की तुल्यता के अनुसार उदिष्ट गुण ग्रीवा युक्त अरुण बनाना चाहिये सदैव यम की दिशा में बाहर असुरों को बनाना चाहिए ॥३७॥ उस कमल

१. रथ के संवत्सरात्मक रुप के लिए देखिये **विष्णु पु०, २.८ ४.** "संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम् ।"

गृह में जो द्वार बताया गया है वह भिन्न हो। रथ की बाह्य वीथियाँ दो हैं जिनकी दीप्ति प्रसिद्ध है ॥३८॥ ग्रहदिग्देवता नानु की यह कंदरा है। पश्चिमी द्वार मोक्ष नामक है जिससे शिष्यों को प्रविष्ट कराये ॥३९॥ इस प्रकार सूत्रपात का सम्पूर्ण विविक्रम बताया गया है इसके सम्यक् ज्ञान से परम गति प्राप्त होती ॥४०॥

जिस प्रथम अक्षर से इन सबके रूपों का आलेखन होना चाहिये। उस रंग गिराने की विधि बता रहा हूँ ॥४१॥ मणि, मुक्ता प्रवाल (मूंगा) व्रीहि (चावल का दाना) और धातु से उत्पन्न चूर्ण से अग्नि इन्द्र अथवा मरुत के रंग से रथ बनाये ॥४२॥ उस रथ को अस्थूल, अकृश और अक्षीण देशिका एवं अंगुष्ठ द्वारा रजोरेखा से संसक्त करे ॥४३॥ उसके नवनरात्रि में उसके मध्य में इसी को पद्मगर्भ का नवप्रयोग कहा जाता है ॥४४॥ प्रारंभ में पद्मनिर्माण करे जो कि सांसारिक पद्म की प्रभा वाला हो और उदीयमान सूर्य के समान हो जो नैष्ठिक कर्म में स्थित हो। ॥४६॥ उस पीली कर्णिका में किञ्जल्क[1] हरित रूप में निर्मित करे केसर अरुण हो और अन्दर की ओर पत्र श्वेत हो ॥४७॥ पीले अर्कपुर, शोणमस्न, पद्माग्र के संधियों में प्रत्येक दिक्देवताओं तथा हरितादि अश्वों को मानकर ॥४८॥

संध्याकालीन सूर्य के समान व्योम और स्वर्ण प्रभा के समान कन्दरा तथा श्वेत, पीत और अरुण वर्ण से यष्टि[2] बनानी चाहिये ॥ ४९ ॥ समस्त आवरण आदि को चारों वर्णों से निर्मित करना चाहिये और चारों वर्णों से ही चौक भी बनानी चाहिये ॥५०॥ जिन पूर्व स्थानों में देवादि

१. कमल का फूल—"आकर्षद्भिः पद्मकिञ्जल्कगन्धान्" उत्तर० ३.२, रघु०, १५.५२.

२. डंठल अथवा झंडे का डन्डा

बताये गए हैं उनमें उनका लेखन करना चाहिये ॥५१ ॥ इस प्रकार सूर्य मण्डल का निर्माण करके पुनः स्नान करके सम्यक चित्त होकर पूजा कर्म प्रारम्भ करना चाहिये सभी सूर्य कर्मों में मनोहर दूर्वा घास का प्रयोग करना चाहिये ॥५२॥ नैत्यिक अग्नि कार्य में इस अग्नि गर्भ में चारों ओर कुश इत्यादि का विन्यास करे ॥५३॥ पूजाग्नि क्रिया से भी अधिक महत्व की एवं महाफल देने वाली कुछ बातें है देवताओं ! मुझसे सुनो ॥५४॥ नदी के दोनों किनारों की मिट्टी, गाय की सींग से उखाड़ी गयी मिट्टी भस्म, दूर्वा, सरसों, गुरोचना ॥५५॥ सुअर के थूथन से उखाड़ा गया नागरमोथा इन सबकों आठो दिशाओं में चन्दन दल से युक्त चबूतरों पर चारों ओर पल्लवों से युक्त शैय्या और मुखों पर ॥५६॥

और गर्दन में बंधे वस्त्रों तथा कलशों पर निक्षिप्त करना चाहिये ॥५७॥ उस संवत्सर की दिशा में शुभ अग्नि स्थापित करें और अग्निकुंड को विदिशाओं[1] में कमल युक्त बनाये ॥५८॥ उस संवत्सर[2] का आर्यादि तीर्थ सहित अग्नि कुंड बारह अंगुल खोदा जाय; आठ अंगुल विस्तृत हो और भली भाँति धोया गया हो ॥५९ ॥ आर्यादि तीर्थ कुंड में आठ अगुल दूर दक्षिण दिशा में[3] दर्भ स्थापित करे और उसे मैनाक[4] पर्वत

---

१. दो दिशाओं के मध्यवर्ती बिन्दु को विदिश कहते हैं।

२. एक वर्ष में पूरा चक्कर करने वाला (सूर्य) **महाभारत**, ३.३६, २०-२३ में सूर्य संवत्सर कहा गया है।

३. एक प्रकार की पवित्र (कुशा) घास जो यज्ञानुष्ठानों के अवसर पर प्रयुक्त होती है **शाकु०** १.७, **मनु०**, २.४३; ३.२०८.

४. हिमालय और मेना के पुत्र-एक पर्वत का नाम, यही एक ऐसा पर्वत था जिसके डैने समुद्र से मित्रता होने के कारण अक्षुण्ण रहें जब कि इन्द्र ने अन्य के बाजू काट डाले थे तुलना कीजिये **कु०** १.२० देखिये अली एस० एम०, **दी जियागारफी आफ दी पुराणज,** पृ० १७.

माने । इसी प्रकार उत्तर में सात अंगुल दूर पारियात्र[1] पर्वत बनाए ॥६०॥ जिनके साथ सूर्य की पूजा पवित्र बताई गई है वही अग्नि स्वरुप हृदय में ध्यान केन्द्र होना चाहिये ॥६१॥ पूर्व मुख होकर ब्रह्मा और वरुण के समीप स्रुक और स्रुवा रखे और समस्त मनोवांछित वस्तुयें गुरू के लिये नैऋत्य कोण में रखे ॥६२॥ जिनके नोक टूटे हुए न हों जो आधे पर न टूटे हों ऐसे मूल सहित कुशों को एवं मनोहर दुर्वाघास को सूर्य के सभी कार्यों में प्रयुक्त करे ॥६३॥ इस प्रकार ब्रह्मा आदि सबके चारों ओर और अग्निगर्भ के चारों ओर उन कुशों को फैलाये ॥६४॥

स्रुवा का परिमाण चौबीस अंगुष्ठ होना चाहिये। उसका भी अगला भाग एक अंगुष्ठ के बराबर झुका होना चाहिये ॥६५॥ उससे आधा अंगुल पात्रों की नाप होना चाहिये और पाणिपात्र तल उदर होना चाहिये। उसका वृत दो अंगुल[2] होना चाहिये ॥६६॥ लाल चन्दन, काष्ठ, खैर, पीपल, पलाश तथा अन्यान्य यज्ञ के योग्य लकड़ियों से स्रुक और स्रुवा आदि बनाना चाहिये ॥६७॥ इन्हीं काठों से मूसल और ओखली, चमस[3] बनानी चाहिये। मूसल बारह अंगुल का होना चाहिये ॥६८॥ ओखली दस अंगुल की हो और चार अंगुल जमीन में गड़ी हो। इसी प्रकार चमस सात अंगुल का हो और आधा अंगुल धँसा हुआ हो ॥ ६९ ॥ चमस के

---

१. सात मुख्य पर्वतों में से एक पर्वत।

२. अंगुल माप की एक इकाई थी इसके अर्थ एवं प्रकार के लिये देखिये बनर्जी, जे०, एन०, **डिवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी**, पृ० ३१५-२०.

३. सोमपान करने का लकड़ी का चमचे के आकार का यज्ञ पात्र, **याज्ञ०**, १.१३.

पूँछ का माप परिमाण[1] में छः अंगुल का होना चाहिये । शालीन शिष्य के ललाट के बराबर लम्बाई की होनी चाहिए ।।७० ।। सूर्य के यज्ञ की लकड़ियाँ बारह अंगुल लम्बी हों, टेढ़ी न हो, आर्द्र न हों, जनेऊ कुश का बनाना चाहिये और मेखला तीन बार बँटी गई हो ।।७१।। यह मेखला मूँज की हो अथवा कुश की हो अथवा बल्वज[2] की हो । अविच्छिन्न शिखा जाल वाली हो, घृतयुक्त हो, कांचन के प्रभावाली हो ।।७२।।

यज्ञ की आग यदि चिकनी हो और गोलाकार हो तो ऐसी यज्ञाग्नि सिद्ध-कर कही जाती है । तदन्तर ओखली में मूसल द्वारा ।।७३।। सूर्य के मूल-मंत्र का जाप करते हुए हविष्य को चार अंगुल तक पीसना चाहिये ।। ७४।। मूल से पायसु को चार अंगुल तक शान्त करना चाहिये इसके बाद अधिवासित शिष्यों को प्रवेश कराना चाहिये ।।७५।। जिसे उद्देश्य करके चित्र लिखा गया हो उसे पहले प्रवेश कराये । वह शिष्य पगड़ी बांधे हो, शान्त हो, श्वेत चन्दन से चित्रित हो ।। ७६।। अचंचल हो, अक्रोधी हो, और श्वेत वस्त्र से विभूषित हो, गाय की पूँछ से सूर्य-हृदय का जाप करते हुए ।।७७।। गुरु शिष्य का अभिषेक करे और शिष्य गुरु का अभिषेक करे और शिष्य गुरु को बछड़े सहित गाय दान में दे ।।७८।। गाय सुन्दर रुप वाली हो, शान्त हो, सोने की जंजीर और वस्त्र से विभूषित हो, उसके खुर श्वेत वस्त्रों से ढके हों ऐसी गाय को द्वार से ही सदा लाये ।।७९।। तदन्तर उसे प्रवेश कराकर यष्टि के समक्ष स्थापित करे । सम्यक रुप से शान्त गुरु शिष्य के कायिक, वाचिक और मानसिक मल को दूर करे ।।८०।।

इस त्रिविधि पाप को सूर्य-हृदय आदि मंत्रों द्वारा दूर करे, घुटनों के

---

१. परिमाण माप के लिये प्रयुक्त होता है । देखिए **बृहत्संहिता**, ५७, ३, २८.

२. **मनु०** २.४३ के अनुसार यह एक प्रकार की मोटी घास होती है ।

बल जमीन पर बैठकर और फूलों से अंजलि भरकर ॥ ८१ ॥ 'खखोल्क' इस मंत्र द्वारा पुष्पों को कमल पर चढ़ाये। वह पुष्प कमलचक्र में बने हुए जिस देवता के आगे गिरे ॥८२॥ वही उसका कुल-देवता तथा सर्वार्थ-साधक है। उस उत्पन्न साक्षात ब्रह्मरूपी परमात्मा को चारों ओर देखकर ॥८३॥ तब उस कुल-देवता खखोल्क को यत्नपूर्वक क्रम से प्रणाम करे और पद्म राग अथवा स्वर्ण से युक्त सबको निविष्ट करे ॥८४॥ इसके बाद गुरु शिष्य को ईशान दिशा में लाकर कुशासन पर बैठाये और तब राजा यज्ञ करे ॥८५॥ गुरु कुश के अग्रभाग से कलश से जल लेकर पूरब की ओर मुँह किये हुए शिष्य का सूर्य-मंत्रों से अभिषेक करे॥८६॥ शिष्य के अभिषेक-काल में ब्राह्मण लोग क्रमानुसार तीनों देवों की उपस्थिति में त्रिशिक्षा[1] का पाठ करे ॥ ८७ ॥ 'अस्यवासोद्वयम' इस मंत्र द्वारा स्थापना करें, 'आकृष्णेन,'—इस मंत्र द्वारा यजुषों की आठ आहुतियाँ तीन बार दे ॥८८॥

आदित्य-व्रत वाले और श्वेत वस्त्र वाले शिष्य को सब लोग संयत मन होकर साम द्वारा अभिषेक करे ॥८९॥ तदन्तर अग्नि के समीप जाकर और सूर्य-हृदय-मंत्र द्वारा कुश से उस शिष्य को शुद्ध करके गुरु स्वयं होम करे। ॥९०॥ गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन ॥९१॥ चूड़ाकर्म, उपनयन[2] स्नान, पेय एवं यज्ञों आदि कार्यों में कुशों के अग छूकर सम्पन्न करे ॥९२॥ तब कुश युक्त हाथ से शिष्य की मूर्द्धादि के कारण अनाहत शिखा को काटकर घी में लपेटकर अग्नि में दग्ध कर दे ॥९३॥ अथवा मस्तक भाग को छूकर कुशों का हवन कर दे और पाक संस्था[3]

---

१. त्रिशिक्षा से अभिप्राय है त्रिवेद अर्थात ऋक, **यजुष** और **साम**।

२. विस्तृत ज्ञान के लिये देखिये राजबली पाण्डेय, **हिन्दू संस्कार**, ; **महानिर्वाणतन्त्र**, अध्याय ८.

३. गृहयज्ञ, **मनु०** २.१४३. पर **उलूल्क की टीका**

हवि: संस्था[1] तथा होम संस्था[2] कार्यों को करे ।।९४।। पहले कही गयी विधि के अनुसार शुद्ध घृत से शिष्य स्रुक-स्रुवा से यज्ञ करे ।।९५।। तब शिष्य सामने बैठकर अपने गुरु को कुश से छुए ।। और तब गुरु स्वयं भुवनों के साथ सूर्य का यज्ञ करे ।।९६।।

अंत में अभितर्पण में वषट्कार करना चाहिये जो इस प्रकार है ।।९७।।२ ओम प्रारम्भ में और ठ: ठ: बाद में कहकर कालाग्निरुद्र के लिए, कालरुद्रों के लिए, भस्मरुद्रों के लिये, श्वेताधिपति के लिये, पिंगल रुद्रो के लिए, कालरुद्रो के लिये, हिरण्यवर्ण के लिये, काल के लिये, लोहित्य के लिये, रक्तपिंगल के लिये, अनन्त के लिये, पुण्डरीकाक्ष के लिये, सहस्रशीर्ष के लिये, महोज्ज्वल के लिये, सज्ज्वल के लिये, आशीविष के लिए; अनन्त के लिये, वरुण के लिये, अविचि के लिये, रौरव के लिये, तामिस्र के लिये, तामस के लिये, अन्ध-तामिस्र के लिये, शीत के लिए, उष्ण के लिए, सन्तापन के लिये, सुप्रतपन के लिये, संहत के लिए, काकोलूक के लिये, पद्मलोचन के लिये, संयमन के लिये, जम्बुक के लिये, उलूक के लिये, व्याघ्र के लिये, पूतिमृत्तिक के लिये, कालसूत्र के लिये, सूचीमुख के लिये, लौहशंकु के लिये, क्षुरधारोपम के लिये, बिरीक के लिये, दंशक के लिये, तप्तकुंभोपम के लिये, पूयशोणितप्रवाह के लिये, कूटपर्वत के लिये, तीक्ष्णशल्य के लिये, चक्रपिण्ड के लिये, सतुण्ड तार्क्ष्य के लिये, मेदोसृकपूयप्रवाह के लिये, क्रकचच्छेदन के लिये, अस्थिभंजन के लिये, तप्तवालुक के लिये, पंकलेपन के लिये, निरुच्छवास के लिये, यमल पर्वत के लिए, कूटशाल्मलि के लिये, इन सबको आहुति स्वाहाकार मंत्रों सहित प्रदान करना चाहिये। ब्रह्मा बोले — दस भागों में बंटे हुए इस यज्ञ के पुन: बारह भाग है और हे देवेश ! उस विधान में आपका अत्यधिक विस्तार

---

१. एक प्रकार का यज्ञ

२. ब्राह्मणों द्वारा किये जाने वाले दैनिक पंचयज्ञों में से एक यज्ञ जिसे देवयज्ञ कहते हैं।

है[1] ।।९८।। उन तंत्रों में आपकी श्रेष्ठ भक्ति बताई गयी है और महान तपस्या से अत्यन्त विस्तृत सिद्धि प्राप्त होती है ।। ९९ ।। हे देव ! तत्त्वार्थ की सिद्धि के लिये उस श्रेष्ठ रहस्य को बताए, प्रत्येक मंत्र के प्रयोगार्थ को और ध्यान-सिद्धि को तत्त्वतः बताये ।।१००।। आपने यह जो अचिन्त्य परम रहस्य मुझे बताया इस तंत्र में, हे प्रभो ! जितनी मन्त्र-सिद्धि विद्यमान है वह बताए ।।१०१।। सूर्य बोले—पूछे जाने पर उस आदि देवता ने सत् और असत् रूप वाली सृष्टि का व्याख्यान किया । असत् से सर्वप्रथम १६ आत्मावाला वर्ण[2] उत्पन्न हुआ ।।१०२।। इसके बाद क्रमशः सत्ताइस वर्ण हुए । तदन्तर सृष्टि के लिए दोनों से निरमंथन के पश्चात बीस वर्ण और उत्पन्न हुए ।। १०३ ।। आदि में सात प्राण स्थान में मंथन करने पर पच्चीस अयोनिज देवता परमेष्ठी आदि उत्पन्न हुए ।।१०४।।

वक्र रूप से मंथन करने पर परमेष्ठी के दक्षिण भाग से पारमेष्ठ्य उत्पन्न हुए, पुनः वाम भाग में मंथन करने से पुत्र उत्पन्न हुआ, ।।१०५।। और पुनः वाम भाग के मथन से नासिका से उत्पन्न होने वाले जुड़वे अश्विनी कुमार पैदा हुए ।।१०६।। तब उनके सबके अवरोधार्थ सृष्टि के संहार का कारण वह प्रणवान्त कारण काल उत्पन्न हुआ ।।१०७।। इस प्रकार मूर्धभाग मे और अन्य अंगों से सृष्टि हुयी ।।१०८।। शिव द्वारा निर्मित देवी के हृदय के अग्र भाग में उस देवता की दक्षिण भुजा में समस्त क्रियाओं की स्थापना करनी चाहिये ।।१०९ ।। भुवनाधिपति सूर्य उसके बीजयोनि है और सृष्टि

---

१. द्रष्टव्य है कि अध्याय ५५ के ९८ श्लोक से अध्याय ८३ तक यह पुराण शैव विचारधारा से प्रभावित है देखिए हाजरा, आर० सी० दी साम्ब पुराण, ए सौर वर्क आफ डिफरेन्ट हैन्डस, **अनाल्स आफ भण्डारकार ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट**, ३६, (१९५५-५६) पृ० ८३-८४.

२. शक्ति वर्णमय है विस्तार के लिये देखिये वुडराफ, **दी गारलैण्ड आफ लेटर्स**, पृ० २१४-२२७.

उनके चरणों से निकली हुयी प्रसूति मात्र है ॥११० ॥ जीवों के रूप में विद्यमान विश्व नाम से विख्यात यह सृष्टि उन्हीं से उत्पन्न हुयी है ॥१११॥ उनके जठर भाग में संसार की प्रकाशक अग्नि विद्यमान है ॥ अब मैं उस देवता के लिंग का दीर्घ विस्तार बता रहा हूँ ॥११२॥

आकाश मण्डल को व्याप्त करके ६० रथ्या के बराबर उस देवाधिदेव का तेज है जो कि विश्वव्यापी और अक्षर है ॥११३॥ परमात्मा शिव[1] के बराबर उस प्रकाश को समझना चाहिये । हे प्रभो ! दश कोटि लोक के बराबर उन मन्त्रों को समझना चाहिए ॥ ११४ ॥ वह प्रकाश पाताल दिशा में विनस्थ होकर अपनी शक्ति से सुरक्षा प्रदान करता है ॥११५ ॥ यही उस देवाधिदेव सूर्य का शिवात्मक रहस्य है इसे जानना चाहिए, ध्यान धरना चाहिये और पूजना चाहिये और यज्ञ करना चाहिये ॥ ११६ ॥ मनीषियों ने योग में कहा है कि इस कर्म को एक रस होकर करना चाहिए इसे जानकर सुख से सिद्धि प्राप्त होती है और संदेह करके विपरीत फल होता है । हे पितामह ब्रह्मा ! यह मैंने आपके ज्ञानार्थ शरीर का विस्तार बताया ॥११७॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में ५५ वें अध्याय में तृतीय पटल[2] समाप्त होता है ।

---

१. सूर्य एवं शिव की एकात्मकता के लिये देखिए श्रीवास्तव, **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**, पृ० २६४-६६, सन वरशिप इन वालि, **पुराणम**, (जनवरी १९७५) पृ० ६७.

२. अध्याय ५३ से ८३ तक को एक इकाई माना जा सकता है जिसे **ज्ञानोत्तर** कहा गया है । तान्त्रिक ग्रन्थों के समान इन अध्यायों को **'पटल'** कहा गया है । इनका काल १२५०-१५०० ई० के मध्य माना गया है हाजरा, वही, पृ० ९३.

अध्याय ५६

वहाँ उस (सूर्य-रहस्य) में तीन तत्त्व हैं—बीज-तत्त्व, वर्ण-तत्त्व और योनि-तत्त्व ॥१॥ चार पदार्थ है निष्कल, सकल, सिद्ध, पंचविंशकभाव ॥२॥ अब उस सूर्य के हृदय-तत्त्व का रहस्य बता रहा हूँ जो कि गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है। उस सूर्य-हृदय मे ऊपर सात स्रोत हैं और बारह नाल हैं ॥३॥ उस कमल की पंजिका कर्णिका पाँच मकार की बताई गयी है, केसर सोलह प्रकार की और उसका पद्म बारह दलों वाला है ॥ ४ ॥ सात उसके शृंग हैं, अपार मेरु और मंदर से विभूषित हैं और बारह योनियाँ है जो प्रत्येक यंत्र[2] में प्रतिष्ठित है ॥५ ॥ इस प्रकार एकाक्षर श्रेष्ठ बीजवान प्रभु सूर्य-तत्त्व के निर्मथन से उत्पन्न हुआ जो आधी कला की मात्रा के बराबर है ॥६॥ हृदय में विद्यमान उस देवता की आत्मा अर्धकला से युक्त सात प्रकार की है ॥७॥ इस प्रकार सात शृंगों से और सात कलाओं से युक्त यही श्रेष्ठ

---

१. वे० में **निष्कलं** मुद्रित है **निष्कलं** होना चाहिये।

२. यन्त्र द्वारा पूजा तन्त्र-पूजा का एक विशिष्ट अंग है इसे चक्र भी कहा जाता है। धातु, पत्थर, कागज अथवा किसी अन्य वस्तु पर खोदी हुई अथवा तक्षित या रंजित ज्यामितीय आकृति को यन्त्र कहते हैं जो किसी देवता विशेष को प्रसन्न करने के उद्देश्य से बनाया जाता है देखिये **कुलार्णव-तन्त्र**, ६.८५-८६., **रामपूर्वतापिनी उपनिषद**, १०.१०९, **शारदातिलक**, ७.५३-६३.२४. **अहिर्बुध्न्यसंहिता**, अध्याय २३-२६, जिम्मर; **मिथ्स ऐण्ड सिम्बल्स इन इण्डियन आर्ट ऐण्ड सिविलाइजेशन** पृ० १४० १४८

बीज उस सूर्य-देवता का है ॥८॥

प्रारंभ में जो पन्द्रह संज्ञायें बतायी गयी है वह यह नहीं है। विन्दु सहित विसर्गों को यथाक्रम जानना चाहिये ॥९॥ अकार से प्रारम्भ करके ओंकार तक के वर्ण प्रथम केसर में विद्यमान है। ककार से प्रारम्भ करके हकार के अंत तक द्वितीय केसर में विद्यमान है ॥१०॥ अकार से प्रारम्भ करके क्षकार तक यन्त्र संख्या के अनुसार पचास वर्ण[3] है यही उस देवता के हृदय पद्म के बीज योनि कहे जाते है ॥ ११ ॥ इसका ध्यान करके पापविहीन होकर मनुष्य बंधन मुक्त हो जाता है जो व्यक्ति विधिपूर्वक दीक्षा लिए हुये है इस बीज योनि से उत्पन्न होने वाले मण्डल में ॥ १२ ॥ निष्कल, सकल और सकल-निष्कल सूर्य का सारा स्वरूप ध्यान-योग से प्राप्त करता है ॥१३॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर नामक ५६वें अध्याय में तृतीय पटल समाप्त होता है।

३. शरीर में ६ चक्र है और कुल ५० दल है वर्णमाला के अक्षर भी ५० है, देखिए काणे, **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र** (हि०) ५- पृ० २४-२५

अध्याय ५७

अब मैं वह तत्त्वज्ञान बता रहा हूँ जो इन बीजों से भी अधिक श्रेष्ठ है, जो ज्ञान अत्यन्त गोपनीय है और आदि-अंत विहीन है ॥१॥ सृष्टि के प्रारम्भ में धर्म के वशीभूत होकर आदि पुरुष ने समस्त जीव की सृष्टि की ॥२॥ सर्वप्रथम उस आदि पुरुष से अवर्ण[1] उत्पन्न हुआ जो न विवृत था न संवृत ॥३॥ वह वर्ण उस विराट पुरुष के जिह्वा के मध्य में विद्यमान हुआ, वर्ण-संहार से इ और मन से उ वर्ण पैदा हुआ ॥४॥ उसके अन्त में बिन्दु[2] उत्पन्न हुआ और सबके बाद शाश्वत प्रभु, वायु के निर्धारण से कंठ में विसर्ग युक्त हकार पैदा हुआ ॥ ५ ॥ बाद में अह से वर्णों की उत्पत्ति स्वयं हुई । अवर्ण के अपर वर्णों के साथ अनुलोम योग होने से एकार उत्पन्न हुआ ॥६॥ विलोम विधि से यकार उत्पन्न हुआ और ओंकार तथा वकार उत्पन्न हुए ॥७॥ ओकार के ही साथ ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत उत्पन्न हुए । ऋकार और लृकार ये सब स्वर जिह्वा के अग्रभाग से उत्पन्न हुए ॥८॥

ये दोनों वर्ण परस्पर संहत हैं जिह्वा के मध्यस्थ हैं और अंशत: प्रविष्ट है ॥९॥ आकार और ऐकार इनका प्रारम्भ बिन्दु ईकार का अर्द्ध भाग है यही इन सबका विस्तार लक्षण है अब विंद्यातत्त्व की सिद्धि के लिये स्पर्श

---

१. आदि-पुरुष से वर्णों की उत्पत्ति के लिये देखिए सर जान वुडराफ **दी गारलैण्ड आफ लेटर्स**, पृ० २१४-२२७.

२. बिन्दु शक्ति के सर्जनात्मक तत्त्व को कहते है विस्तार के लिए देखिए सर जान वुडराफ, **दी गारलैन्ड आफ लेटरस** पृ० १२६ १४२

वर्णों का उपदेश दिया जा रहा है ॥१०॥ कवर्ग आदि के संदर्भ में जिह्वा के मूल भाग और दाढी का परस्पर स्पर्श होता है ॥ तीसरे प्रकार के वर्ग वे है जिनमें तालु का स्पर्श होता है ॥११॥ और चतुर्थ वर्ग के वर्ण वे हैं जिनमे मूर्धा भाग का स्पर्श होता है, पाँचवें वर्ग के वर्ण वे है जिनमें होठों का स्पर्श होता है ॥१२॥ लकार दन्तमूल से उत्पन्न होता है और चौथा वर्ग अर्थात तवर्ग होंठ और दांतों के संयोग से उत्पन्न होता है ॥१३॥ उष्म वर्ण नासिका से प्रभावित होते हैं ॥ ये सब वर्ण आद्यान्त विहीन है और सृष्टि करने के इच्छुक उस सूर्य देवता से उत्पन्न हुये विद्या-तन्त्र की वृद्धि के लिये इन्हें जानना आवश्यक है ॥१५॥ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ औ अं और अः ये सोलह स्वर हैं। क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, यह स्पर्श वर्ण हैं। य र, ल, व, यह चार अन्तस्थ वर्ण हैं। श, ष, स, ह, यह ऊष्मवर्ण है। क ख ग घ ये यम वर्ण कहे जाते हैं। नपुंसक वर्गों के विषय में तृतीय अध्याय में बताया जायेगा ॥१६॥

इस प्रकार साम्ब-पुराण में ५७वें अध्याय[1] में बीजोत्तर नामक चतुर्थ पटल समाप्त होता है।

१. इस अध्याय का रचना काल १२५०-१५०० ई० के मध्य माना गया है देखिए हज़ारा- वही, पृ० ९३

अध्याय ५८

प्रारम्भ में गिनाये गये स्वर हैं और बाद में आये हुए वर्ण स्पर्श संज्ञक है ।।१।। द्वितीय के अन्तिम चतुर्थ ये उत्तम माने गये है चतुर्थ वर्ग के तीन वर्ण और तृतीय वर्ग के दो वर्ण श्रेष्ठ हैं ।।२।। द्वितीय और प्रथम वर्ग के चार वर्ण अनुनासिक कहे जाते हैं ।।३।। यही वर्ण शोभन जन सृष्टि के मूल .. इनमें से चार वर्ण विवर्ण कहे जाते हैं और तीन बिन्दुओं से दीपित हैं ।।४।। स्वरों की यह सन्तति दीपनी है, बीजिनी है और पावनी है जो श्रेष्ठ निर्वाण की इच्छा करे, उसे नित्य इन वर्णों का जप करना चाहिये ।।५।। यह चालीस अक्षरों की अविनश्वर सृष्टि परमशक्ति सूर्य द्वारा संसार में चारिणी के रुप में स्थापित कर दी गई है और यह परम शक्ति[1] से समन्वित ६ ।।७ ।। इस प्रकार ५८वें अध्याय में ज्ञानोत्तर बीजप्रसव नामक पंचम पटल समाप्त होता है ।

---

१. अक्षरों की उत्पत्ति के लिये देखिए काणे, **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र** (हि०) १, पृ० ५१

अध्याय ५६

इन वर्णों के क्रमशः सात विभाजन हैं और प्रणव आदि वर्ण तीन प्रकार से भिन्न हैं ।।१।। प्रणव को अन्तस्थ और सप्तम प्रसव माना जाता है । इन वर्णों के जो आदि पद हों उनको अन्यों से युक्त करना चाहिये ।।२।। समस्त सृष्टि के प्रवर्तन के लिये यही वर्ण-योनि मुख्य[1] हैं और प्रतिलोम विधान से सृष्टि होती है ।।३ ।। इस प्रकार साम्ब पुराण के ५६वें अध्याय में ज्ञानोत्तर बीजस्वर प्रसव नामक छठा पटल समाप्त होता है ।

---

१. वर्णों के विषय में विस्तार के लिए देखिए वुडराफ, **प्रिन्सपिल्स आफ तन्त्र**- पृ० ५०५-५२८

अध्याय ६०

इसका यत्न पूर्वक ध्यान धरना चाहिये क्योंकि यह वर्ण समुदाय समस्त संसार की सेवा करता है। यह आत्मतंत्र में विद्यमान भवचारिणी परम शक्ति है ।।१।। ॐ अं ॐ इं ॐ यह व्योम व्यापी (सूर्य) के लिये है ।। सातों के अनुषंग[1] से क्रमशः वर्णो का सम्पुट होना चाहिये ।। पादान्त में स्थित यह बीज नामक योनियां है । ॐ अं व्योमव्यापी सूर्य के लिये हैं ॐ इं और अां यह व्योम के लिये है, ॐ आ ईं ॐ व्यापिन व्योम के लिए है । ॐ इं अं ॐ व्योम व्यापी के लिए भूति[2] का चुम्बन करे । इस प्रकार मैंने विस्तार पूर्वक वर्णों की प्रकृति[3] बताई ।।२।। अब काल और आत्मा का प्रसूति मंत्र राज की मुक्ति के लिए बताऊँगा जैसा कि शास्त्र का विनिश्चय है । हे प्रभु ! यह सम्पूर्ण संवत्सर तीन नाभिकों वाला चक्र है ।।३।। उस चक्का में बारह तीलियाँ हैं और तीन सौ साठ दिन और रात्रियों का इनमें मिश्रण है[4] ।। ४ ।। इनमें कला, मुहूर्त, दण्ड और निमिष प्रतिष्ठित हैं उसका आधा शब्द देहमय विश्वात्मा है ।। ५ ।। पाँच से युक्त सप्तक जो कि चारों ओर से बिन्दुओं से युक्त है वही विद्वानों द्वारा १६ से वर्धा हुआ है त्रिनाभि कहा जाता है ।। ६ ।। दूसरा सात से

---

१. शब्दों का पारस्परिक सम्बन्ध

२. विभूति

३. वे० में प्रभृति मुद्रित हैं, प्रकृति होना चाहिये ।

४. तुलना कीजिये विष्णु पु०, २.८.१-२०.

बद्ध कहा गया है जिसको परम कहा गया है वह नाभि के गर्भ में रहता है जिनके सात कारण है जो शूचिका को व्याप्त करके रहता है ॥७॥ ६ दीर्घ स्वर है तीस और नव में छः घटाने पर ३३ वर्ण स्वर के साथ स्थित होते हैं ग्रह (९) और नक्षत्र (२७) कारण को व्याप्त कर ऊपर वे स्थित है ॥८॥

अब मैं आगे कह रहा है कि इस तीस को ३ से गुणा करने पर ९० संख्या बनती है। शलाका में शब्द विद्यमान है उसमें बीस है ॥ ९ ॥ २४ सँख्या उसको बढाकर बैठाना चाहिये। इसके १६ भेद होते है। मध्यमा के दो कारण है ॥१०॥ २ तीस और ६ ये दो कारण हैं। १० पदों में ये आयेंगे। विद्येश्वर के जन्म के लिये एक लाख जप करना चाहिये ॥ ११ ॥ कारिका, (करका[1]) पर्श शक्ति ये सात हृदय में सिद्ध होते हैं। ॐ आं ई ऊं तथा व्योम व्यपिन ओम ये पांच विद्येश्वर प्रस्ताव में सिद्ध हैं। अ आइई उऊऋॠऌॡ एऐओ औ अं अः ये १६ तत्वज्ञान में सिद्ध होते है। कखगघङ चछजझञ टठडढण तथदधन पफबभम यरलवशषसह-ये ३३ स्पर्श ज्ञान में सिद्ध है। आहत्र[2] का प्रत्येक अक्षर आसन में समझना चाहिए। यह प्रथमा प्रधि है। चार ॐ बारह वर्ण हो सकते है। अलग से इसकी व्यवस्था है अतएव यह प्रकृत कारण से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार साम्ब-पुराण में ६०वें अध्याय में ज्ञानोत्तर में सोमसूत्र नामक सातवाँ पटल समाप्त होता है।

---

१. वज्र का द्योतक।

२. अनुवार, विसर्ग, साम्ब-पुराण ६१.९.

अध्याय ६१

नाभि से उत्पन्न होने वाले ये तीन वर्ण (ॐ=अ, ऊ, म्) सर्वत्र प्रथम पद है, परमपद है प्रत्येक के मध्य में और सभी में विद्यमान हैं ।।१।। ओंकार से प्रदीप्त अकार से लेकर मकार तक के समस्त वर्ण समस्त दिशाओं में प्रतिष्ठित हैं ।।२।। अकार से लेकर मकार पर्यन्त जो दीर्घ वर्ण है नैऋत्य दिशा में रहते है। इ वर्ग से युक्त पकार वर्ण वायु की दिशा में आश्रित है ।।३।। एकार से युक्त न ईशानकोण के बाहर अधिष्ठित हैं पहला दक्षिण मे है, दूसरा उसके भी दक्षिण में है पुनः आठ बाहर में है ।। ४ ।। दूसरे में मकार होते हैं। ऊकार और रेफ यह तृतीय पद में आश्रित हैं ।।५।। अकार से दीपित होने वाला पकार वर्ण नैऋत्य कोण में स्थित है और उसके उत्तर में पकार का द्वितीय अर्थात फ स्थित है ।। ६ ।। इस प्रकार बिन्दु नीचे शुभ पूर्व पक्ष को पूरित करता है। जैसे इन वर्णों वाला यह पूर्व पक्ष हैं इसी प्रकार इनका उत्तर पक्ष भी होना चाहिये ।।७।। दो अक्षरों में भेद नहीं है अक्षर में ही उसका निश्चय होता है ।।८।।

अ, क, च, ट, त, प, य, श अक्षरों के ८ वर्ग प्रसिद्ध हैं। ओंकार ऊपर और अनुस्वार और विसर्ग बाद में होने चाहिये।। ९ ।। ऐकार तथा दो आद्य स्वर (अ, आ), से युक्त नकार बिन्दु दीपित होकर मन्त्र बनाता है उसमें पहला दीर्घान्त है जैसे नै: उसके पश्चात नं, उसके बाद नां, उसके बाद नः ।।१०।। थकार और यकार प्रकृत स्वर से युक्त होकर तथा नाकार ये चारों विसर्ग से युक्त होकर मन्त्र बनाते हैं (अर्थात थ्यैः थ्यः थ्याः नाः) ।।११।, ओंकार के बाद य, ह, वा को जोड़ना चाहिये

इ से लेकर न पर्यन्त विसर्ग से युक्त होते हैं यही भाषा है। इसके बाद इसमें व्यापिने, शिवाय, अनंताय, अनाथाय जोड़ना चाहिये, अनाथ का अर्थ मधुमास है। इस प्रकार दूसरी प्रधि[1] सिद्ध होती है। त अक्षर मे रेफ नीचे और अनुसार ऊपर दीर्घ से युक्त करने पर मन्त्र बनता है (त्रां)। उसके बाद ह्रस्व उकार से युक्त वकार (वुं) बनता है ॥ १२ ॥ य से लेकर श तक में य को ओंकार से युक्त करना चाहिये और अन्य अनुस्वार से युक्त होंगे। र इकार से युक्त होगा ॥ १३ ॥ अ से लेकर श पर्यन्त जो ८ वर्ग हैं ये सब दूसरे अर्थात दीर्घ आ के साथ और अनुस्वार विसर्ग के साथ युक्त होकर मन्त्र बनाते हैं। इसके बाद ओंकार लगाना चाहिये। और षोडशस्थि ध्रुव, शाश्वत योग पीठ, लगाना चाहिये। मन्त्रों की तीसरी प्रधि समाप्त होती है ॥ १४ ॥ आद्या[2] यतीयकार: स्याज्ञाहृताश्वस्वरेणव: ॥ अंतरंचन मस्कारोविसर्गश्चान्त्यत: पदे ॥ १५ ॥ त्रिद्वन्त: पूर्वपक्षोर्न्न विसर्गश्चोत्तर ध्रुव: ॥ वसन्तएषविज्ञेयस्त्वग्रेग्रीष्मादय: शुभा: ॥१६॥

हृवोअहृवाअधस्तात्तव्योमअथमुपरिष्टात् ॥ इशय:आतअयइनतपअम उपज्ञामम ॥ आषयआसाअरचआरअयषोडशोविसर्ग ॥ स्थितायपरित्यागिने व्यानहाराय ॐ नम: सिद्धा: चतुर्थीप्रधि: द्वितीयान्त: माधवोमास: ॥ वसंततु: विसर्गवास्तुम: शुक्लेप्रकृत्यन्त: शावयुत: ॥ स्वरवंतौयशौज्ञेयौरेफाधन्तौयथौ स्मृतौ ॥ भकारान्तोवकारस्तुप्रसर्वोसर्व दैवहि ॥ यश्चेज्ज्ञानस्तथान्यश्चस्पृष्टोदिष्ट: सबिन्दुक: ॥ १७ ॥ अकचटतपयशाभवेदधस्ताव्योमअयमुपरिष्टात् अमइषआवअपवमअरअपरअंभअऐवइशआयअयइआस आसअगइषोडशत्वम्

---

१. तन्त्र के अनुसार जहाँ मन्त्र की समाप्ति हो उसे प्रधि कहते हैं।

२. यहाँ से लेकर ४९ श्लोक तक पाठ अक्षरों से मन्त्र बनाने की रहस्यात्मक विधि से सम्बन्धित है अनुवाद उचित नहीं है अस्तु मूलपाठ प्रस्तुत है।

ॐ नमोनमः सर्वप्रभवेईशानाय असिद्धापंचमी प्रधिः ॥ उकारोदीपितोमः स्याद्रेफादिन्द्रायुधोधनुः ॥ स्वरवन्तीयतोतेनयुयुक्तयनुतथाभवेत् ॥१८॥ स्वरवतोपचोकादिरेफान्तश्चयथायुतः ॥ पश्चात्खद्योत विज्ञेयोहृदयश्चयथोदित ॥ १९ ॥ भवेदधस्ताद्व्योमअयमुपरिष्टात् ॥ यमआरदधनअयः अततउपडः असः अवआकतरअय अउधअरऋहृ मदः षोडशोविसर्गः ॥ मूर्द्धायतत्पुरुषायव्यक्तायअघोरहृदयायच ॥ अतः स्तृतीयोरः शुक्रोमासः सिद्धाषष्टी प्रधिः ॥ असोययतोन्यश्चह्लस्वोषश्चायतोयतः ॥ मदमामध्यमैकारादगुकारेणैवदीपिता: ॥ २० ॥ अदीर्घश्चैवदीर्घः स्यात्स्वरवन्तीयशीततः ॥ दकारादिर्यऽतुश्च स्याद्दीर्घोयस्तः स्वरेणच ॥ २१ ॥ उकारवान्मकारः स्याद्रेफादितन्मनोन्नतः ॥ यद्दहन्तेचबिंदुः स्यात्पक्षेशुक्लेतुपूजितः ॥२२॥ कचटतपयशाः चारिणिअधस्ताद्व्योमअयमुपरिष्टात् ॥ आयअयआचअमयपदअववऊआइयअयअम उदयआयअतउम अरतः पायवामदेवगुह्यायसद्योजातायमूर्त्तये ॥ असिद्धासप्तमीप्रधिः ॥ ऐकारान्तोयकारः स्यादक्षरंपरमं पदम् ॥ नकारोमोनमश्चस्यात्तोगाम्यादुकारवान् ॥ २३ ॥ हीद्यायदश्चयस्तस्मादिकारान्तस्तथैववत् ॥ आवेद्विषिपुनर्यश्चगतकांतः सउत्तनः ॥२४॥

पकारांतोसरेफोद्वीतदन्तेस्वरएवच ॥ तावेतौग्रैष्मिकोमासोनमोन्तः संप्रवक्ष्यते ॥२५॥ चारिणिअधस्ताद्व्योमअयमुपरिष्टात् ॥ ऐष ॐ ङ्अन ॐ ङम अनअमङगमाहृयहृतऽगम्हृयः ॐ ङयस्ततरः अषोडशोविसर्गः ॥ ॐ यः ॐ नमोनमोनमः गह्यातिगुह्यायगोप्तेनशाचतुर्थोचः ॥ शुचिर्मासोग्रैष्मऋतुःसिद्धाअष्टमीप्रधिः हकारान्तोनकारः स्याद्धस्तुतआयतः स्वरः ॥ स्वरवंतोयशीतश्च रेफादीरोयुनश्चयः ॥२६॥ गोदीर्घाधःप्रकृत्यन्तः ककारस्तवचदीर्घवान् यकारः स्वर वान्जादियश्चैवोकारदीपितः ॥ २७ ॥ हकारान्तस्तथाकारोरेफ ऊकारवास्ततः ॥ बिन्दुरत्यपदोज्ञेयोनभस्मः पूर्वपक्षकृत् ॥२८॥ अकचटतप यशाआत्मतंत्रे ॥ अधस्ताद्व्योमअयमुपरिष्टात् ॥ हेनअघ आरींअपअसारव उप आगहृेधसक आतऔपउजयहेतउतनिधनायसर्वगोधाकृताकष्टोतिरूपसिद्धा नवमीप्रधिः ॥ षोडशर्चपरोदीर्घः पकारः स्यात्पराश्चये स्वरोदीपितः ॥ आद्य

श्चचेन्यान्नास्युश्चशुश्चैकारेणदीपित: ॥ २९ ॥ व्याख्यातोवैनमस्त्वेषयथा-वल्लक्षणान्वित: ॥ नमश्चैवोच्यतेभूयोयथावर्णोयथाक्रमम् ॥ ३०॥ आतमतेश्च अधस्ताद्व्योमअयमुपरिष्टात् ॥ आयअयअयअरआपअयन्तर अपअपयअतअन एवंविसर्ग:षोडश: ॥ अजायपरमेश्वरपरायअचेतन अपंचमोनभोमास: सिद्धाद-शमीप्रधि: ॥ स्वरएवास्तुतवनव्योम्निस्यात्सानुनासिक: ॥ पुन: सत्यश्चदीर्घ-श्चपश्चात्स्यादिनकारवान् ॥ ३१ ॥ अयमेवमथाप्रमेयस्वरेकउकारादीपित. ॥ पूर्ववच्चयकार: स्यात्तत्सर्वपुनरेवतु ॥ ३२ ॥

अकचटतपयशाताइतिस्थिते ॥ अधस्ताद्व्योमअयमुपरिष्टात् ॥ अवअन उवयइषनआवयइयनआदय इयनअधरपोडशोनिसर्ग: ॥ तेनव्योम्निऽअऊदपित् अरूपंसिद्धाएकादशीप्रधि: ॥ परेपिन्यश्चरेफान्त: स्यश्नस्यान्स्वरवांस्तत: मकार: प्रथमाश्चेत्स्युस्तेजश्चविविसर्गवान् ॥ ३३ ॥ योयोऽन्तस्थ: प्रकृत्यंतोविसर्गश्च पुनश्चलो ॥ नभस्वाएवव्याख्यातोवपाश्यश्चऋतुस्त्वयम् ॥ इनस्त्वमेअधस्ताद् व्योम अयमुपरिष्टात्इयनअपरअथअमएतअयऐतअपद्रत:षोडशोविसर्ग: यिन: प्रथम: ॥ तेज: ॥ ॐ ज्योनि: ॐ षष्ठोव: नभस्योमास: ॥ वर्षाख्यऋतु: ॥ सिद्धाद्वादशीप्रधि: ॥ इषआदिगकार: स्याद्भूयाच्चतदनंतरम् ॥ अश्चलोलान ऐकारंआद्य: स्यात्तदनन्तरम् ॥ ३४ ॥ भूकारश्चयआद्यश्चभस्मेशाद्यस्तथैवच॥ अकाराद्दिपितोन: स्यादश्चैकारेणदीपित: ॥३४॥ कचटतपयशाभूतिरधस्ताव्यो मअयमुपरिष्टात् ॥ अदुर: अयमअनअगनअभवअमअअर्नयसम अआनपऐपोडशत-त्वअरूपअनग्नेअधूपअभस्मअनादियंसिद्धात्रयोदशीप्रधि: ॥ दीर्घनिकाराश्चतव रोधूकराश्चतथैवच ॥ ऊकारांतसमोज्ञेय: सोक्षरोभयदीपित: ॥३६॥ पुनर्विस-र्गरहितोरस्वोवसुविसर्गवान् ॥ अक्षरश्शोथवक्रान्तोविसर्गेणविभूषित: ॥ ३७ ॥ भूरधस्ताद्व्योमअयमु परिष्टात् ॥ आनआनऊधऊध ॐ ॐ रभउभ ॐ आवस. षोडश: ॥ नाना नामाधूधूधू ॐ भू: ॐ भुव: ॐ स्व: आसप्तमोरस: इषोमास. ॥ सिद्धा चतुर्दशीप्रधि: ॥ ऊर्ज्जस्योर्कआदि: स्यान्नद्रकारेणदीपित: ॥ स्वरवन्तौ-षनो भूयोनिधौन: परिकीर्त्तित: ॥३८॥ ओंकारान्तोनकारस्याद्भ्रादिभोंवस्वरा-न्वित: ॥ प्रकृत्यासोमकारश्चैशकारोविदुरेवच ॥ ३९ ॥ अकचटतपयशा

महीरधस्ताद्व्योमअयमुपरिष्टात् ।। आइनअधः अमइनअयअनइनअधः ॐ नअदभअवहश अवः अनषोडशतत्त्वंअनिधननिधानोद्भवशिवशः ।। सिद्धापंच दशीप्रधिः ।। रेफपूर्वोऽकारस्यात्परोऽत्ररेणमानवः ।। आदिर्मध्य ह्यकारेणम कारश्चस्वरान्वितः ।।४०।।

पकारादीपितोह्रश्चसाक्षाद्दीर्घैरमाततेः ।। हकार अपतोदस्यादेकारेणतुदीपितः ।।४१।। वः स्यात्स्वरवान्रश्चदकारोभयतस्तथा ।। अंतवतीशरेखालक्षण तश्चशरदृतुः ।। ४२ ।। महाधस्ताद्ः व्योमअयमुपरिष्टात् ।। अरचअपअरआम अतमनपअसवअरअमआह्यत अवअसआद्यः षोडशोविसर्गः पूर्वपरआत्मनेमहेश्वरमहादेवसमाः अष्टमोदीरः ।। ऊर्जोमासः ।। शरदृतुः ।। असिद्धाषोडशी प्रधिः ।। ऐकारांतः सहैवः स्यात्तरादिस्तुछांतवः ।। नमोदीर्घौह्रकारः स्यादेकारेणतुतत्सह ।। ४३ ।। स्वरवान्वैजकारोह्यशोकारेणदीपितः ।। गआयतः प्रकृष्णावयकारस्तच्चपूर्ववत् ।।४४।। बमव्योमाधःकारेणादीपितोनुमबिन्दुकौ ।। विद्वन्तः शुक्लपक्षः स्याद्व्योमन्तः स्यादिरुच्यते ।। ४५ ।। भूम्यधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात् ।। ऐवअसरअनअमआहऐतअजआयआगइवअवउमषोडशतत्त्व चेश्वरस् ।। ह्रातेजावायो गाधिपतयेमुंचमांच ।। असिद्धासप्तदशीप्रधिः ।। चकारादिर्मशुक्लेथस्याद्रान्तोयोमवीततः पुनरेतेशकाराफोदीर्घाभूयउवचतो ।। ४६ ।। स्वरवंतोचभोद्विस्तोविसर्गश्चांलिमेपदे ।। सहऐषसमाख्यातस्सहस्यसूयसंततः ।।४७।। भूम्यधस्तादव्योमअयमुपरिष्टात् ।। अवअपरअमअलअपरअल अपअथअशअरच अमअरअवषोडशोषविसर्गः ।। वः प्रथमः ओम सर्वः ओम भवः ओम अनवमोनः ।। सहोमासः ।। सिद्धाष्टादशीप्रधिः ।। भंआअदिर्वओकारा तोदादिर्भः स्यात्स्वरगवः ।। शकारोवश्चरेफांतोद्विरकारांतोन्ततस्तथा ।।४८।।

उकारवान्सअपोथरेफान्तः पादशोततः ।। रेफाद्दीर्घः सदीर्घांत शुक्लोयबिंदु दीपितः ।।४९।। इक्कीस की संख्या में प्रधि है । सूर्यभक्त को चाहिये कि वह सुसिद्धि के लिये व्रत का आचरण करे जैसा कि आगे बताऊँगा बीज-तत्त्व (५०) के सहारे एक हजार प्राणायाम धारण करे ।।५०।। केवल वायु भक्षण करके शान्तचित्त से युक्त होकर पंचाग्नियों का सेवन क

और तीन तीन दिन तक तीन बार जल में अथवा घाम में खड़ा होकर मन्त्र का जप करे ॥ ५१ ॥ गुरु की आज्ञा से उचित भक्ष्य ग्रहण करे। परिमित भोजन करना चाहिये। योग की नित्य विधि है ॥ ५२ ॥ इस पवित्र व्रत का पालन करके मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है, समस्त सिद्धों द्वारा पूजा जाता है और उसका ज्ञान आगे बढ़ता है ॥५३॥ धनवान पुरुषों में जो दोषी होते हैं वे भी दिव्य मनुष्य हो जाते हैं। शरीर से उत्पन्न होने वाले समस्त दोष निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥५४॥ मनोरम एकान्त में व्रत का आचरण करे और अपने ही समान सहायक रखे जो कि बीज-मंत्र के जप द्वारा पाप से मुक्त हो चुका हो ॥ ५५॥ २१ इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाली व्याधियों को समझ कर ललाट में पीड़न द्वारा निवारण करना चाहिए इसके निवारण से सभी विघ्नों का निवारण होता है ॥५६ ॥

समस्त देवताओं के आहारार्थ यथाक्रम सम्यक् आचरण करे। वरुण के व्रत[1] में पानी का आहार करें अथवा बकरी का दूध पीकर रहे ॥ ५७ ॥ उस शक्तिशाली वरुण देवता के लिए जप करते समय इन विघ्नों पर ध्यान रखे-मेघों की गर्जना, बिजली, वृष्टि और समुद्र का क्षोभ ॥५८॥ वारुण व्रत करते समय मत्स्य आदि खाना चाहिए। आग्नेय व्रत[2] का आचरण करते समय कपिला गाय का घृत भक्षण करके व्रता-चरण करे। उसका सब कुछ शुक्ल वर्ण का होना चाहिये। वायु सम्बन्धी व्रत में मनुष्य वायुभक्षी हो और सफेद बकरी का दूध पिये ॥६०॥ इस

१. वरुण-व्रत के विस्तार के लिए देखिए कृत्यकल्पतरु, व्रत, ४५० हेमाद्रि, व्रत, २,९०५, मत्स्य पु० १०१. ७४. विष्णुधर्मोत्तर पु० ३.१९५. १-३

२. किसी नवमी को एक बार, पुष्पों (पाँच उपचारों) के साथ विन्ध्य-वासिनी की पूजा, हेमाद्रि, व्रत, १.९५८.५९.

व्रत में अशनिपात और 'भयंकर आँधी'-इनका विघ्न संभव है। लाल रंग की गाय का दूध पीकर इस व्रत का आचरण करें ॥६१॥ तारों का टूटना अथवा किसी प्राणी की मृत्यु-ये पड़ने वाले विघ्न हैं। इन व्रतों का आचरण करे ॥६२॥ इन्हीं में से किसी एक व्रत के करने से भूतियोनि नामक व्रत होता है। जो अन्य व्रत से सिद्ध नहीं होता वह इस व्रत से सिद्ध हो जाता है ॥ ६३ ॥ देवप्रदत्त, भूमिजन्य और स्वदेहजन्य रोगों का मन्त्र निवारण करे ॥६४॥

सूर्य का व्रत करते समय मनुष्य शाकाहारी रहे, साध्यों,[1] ऋषियों और समस्त वसुओं[2] को भली भांति उपासित करे ॥६५ ॥ यही विघ्न प्रशमन है और यही सम्पूर्ण मंत्रविधि है। अध्याय के बीच में सूर्य-तत्त्व और सूर्य-हृदय के मंत्रों का जप करे ॥६६॥ मनुष्य व्रत करते समय दृढ़ आसन वाला हो, स्थिर मन हो, जितेन्द्रिय हो, ऐसा व्यक्ति उच्च कोटि की सिद्धि को प्राप्त करता है ॥६८॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में ६१वें अध्याय में ज्ञानोत्तर में शरीर-साधन नामक आठवाँ पटल है।

---

१. दिव्य प्राणियों का विशेष समूह, मनु०, १.२२, ३.१९५.

२. एक देव समूह जो आठ हैं—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनुल प्रत्यूष, प्रभास।

अध्याय ६२

समस्त कार्यों की सिद्धि के लिए विधान बताया जा रहा है। संपुटो के तत्त्व कर्मों की सिद्धि के लिये है ॥१॥ अपनी देह को सकलीकृत करके प्राणायाम योजित करे। शिव नाम वाली और परमा नाम वाली योनि को हृदय और नाभि के सहारे ॥ २ ॥ वायु और अग्नि के नीचे ले जाकर नष्ट करे और बीच में प्राणवायु को ले आये। योगवित तुरन्त ही सिद्ध कर लेता है ॥३॥ ब्रह्मतत्त्व से तीन बार शोधित करने की क्रिया शुभ होती है ऐसा करने से जापक व्यक्ति शत्रुओं के गांव, नगर ॥ ४ ॥ घर और अनुल्लंघनीय महाबलवान प्राण को भी नष्ट कर देता है जैसे अग्नि इन्धन को ॥५॥ व्याधि, दुष्ट बाधाएँ, भौतिक अथवा दैविक विपत्ति-इन सबको सूर्यव्रती मनुष्य शीघ्रता पूर्वक नष्ट कर देते हैं ॥ ६ ॥ पृथ्वी और अरुण के बीच में बीजयोनि होती है और पहले की भाँति यहाँ भी ध्यानयोग[1] और प्राणयोग होता है ॥७॥ इन सब के अध्ययन में पूर्व विहित शान्ति का प्रयोग करे तो मनुष्य कृत-कृत्य होता है ॥८॥

किसी का द्रव्य अपहृत करने में, धरोहर लौटाने में, विनाश में और देवताओं का गृह (मन्दिर) उत्पन्न कर देने के कार्य में ॥९॥ योगी व्यक्ति इन क्रियाओं को करता हुआ सफल होता है जैसे वायु-युक्त अग्नि इन्धन को ॥ १० ॥ जो कुछ भी संसार में विद्यमान है उसे संहृत करने में यह

---

१. ध्यान योग के प्रकार के लिए देखिए वुडराफ, इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्रशास्त्र, पृ० १३८.

व्रत[1] समर्थ है परन्तु जो व्यक्ति सन्देह से युक्त है उसके लिए अन्यथा फल होता है ॥११॥ साधक व्यक्ति जब किसी रोग से युक्त होता है तो इस व्रताचरण से तत्क्षण उन समस्त रोगों को नष्ट कर देता है ॥१२॥ स्थावर, जंगम अथवा कृत्रिम जो भी विष हो उसे तत्काल यह व्रत नष्ट करता है। यदि यह सम्यक रूप से प्रयुक्त किया जाय ॥ १३ ॥ शिवसंपुट से युक्त वारुण व्रत[2] में शान्ति के लिए बीजयुक्त भूत-योनि वाले वायु का ध्यान करे, क्योंकि वह वृष्टि कराता है ॥१५॥ इस वृष्टि से षडविध रसों[3] की उत्पत्ति होती है। यह विशाल संसार वायु से ही आवेष्टित है ॥१६॥

सूर्य के अश्वों के मन्त्र का जप करें। उससे योगियों को गति मिलती है तथा व्रण, व्याधि एवं विष का लोप होता है ॥१७॥ मंत्रार्चन में मनुष्य ध्यान धरे और होम करे। उद्घाटन में तथा संहार में दशात्मक की उपासना करनी चाहिये ॥१८॥ सर्वत्र वेष्टन करके शान्ति का प्रयोग करे। परमपुट के मध्य में द्रव्यमन्त्र से पूजा करनी चाहिये। निसंदेह मन्त्रभागों से बंधकर सिद्धि प्राप्त होती है ॥१९॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर नामक ६२वें अध्याय में नवम पटल[4] समाप्त होता है।

---

१. तान्त्रिक पूजा में व्रत के महत्त्व एवं प्रकार के लिये देखिए **इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्रशास्त्र**, पृ० १००.

२. वरुण-व्रत के लिए देखिए **कृत्यकल्पतरु**, व्रत, ४५०, हेमाद्रि, व्रत, २-६०५, **मत्स्य पु०** १०१-७४; **विष्णुधर्मोत्तर पु०** ३.१६५. १-३.

३. रस छः है कटु, अम्ल, मधुर, लवण, तिक्त, और कषाय।

४. इस अध्याय का रचना काल १२५०-१५०० ई० के मध्य माना गया है देखिए हाजरा, वही, पृ० ६३.

अध्याय ६३

कभी-कभी सांसारिक कार्यों में लगे हुए साधक को दारुण रोग हो जाता है। और चिकित्सा से भी लाभ नहीं हो पाता ॥ १ ॥ मूलतत्त्व के एक ग्रह (सूर्य) को कोष्ठ में स्थापित करने पर भी तथा मनसा स्मरण करने पर भी पाप-मंत्रों से शान्ति नहीं हो पाती ॥२॥ ऐसी स्थिति में क्षेत्र से, चाण्डालों[1] की बस्ती से और अग्नि होत्र गृह से मिट्टी लेकर रोग का उपाय सोचना चाहिए ॥ ३ ॥ क्षेत्र से, चाण्डाल बस्ती से तथा दूसरे द्विजों से लाई हुई इन सब मिट्टियों को परस्पर मिलाकर बांध ले ॥ ४ ॥ कपड़े में बांधकर उनकी तीन पोटलियाँ बनाये और समार्जनतट[2] में चरु[3] की क्रिया प्रारम्भ करे ॥ ५ ॥ इस प्रकार विधान करने से कैसा ही दारुण पातक क्यों न हो ॥ ६ ॥ किन्तु जब तक वह पोटली अग्नि में उबलती है तैसे ही रोग विनष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥ बंधी हुयी पोटलियों को यथापूर्व स्थिति में रखकर वरुण की आकृति बनाकर और छुरे से चीरकर होम

---

१. वर्ण-संकर जाति जिसकी उत्पत्ति शूद्र पिता तथा ब्राह्मण माता से मानी जाती है मनु० ५.१३१. १०.१२,१६, ११.१७५.

२. सम्भवत: भंगी-बस्ती से अभिप्राय है।

३. उबले चावल आदि से देवताओं तथा पितरों की सेवा में प्रस्तुत करने के लिये तैयार की गई आहुति को चरु कहते हैं द्रष्टव्य रघुवंश०, १०/५२;५४,५६ 'देवतार्थं परमान्नम्' भारती उद्धरित वुडराफ. महानिर्वाण-तन्त्र, पृ० २२६, पाद टिप्पणी, ८.

कर दे ।।८।

आहुति के अंत में रुधिर और विष मिश्रित तेल का दिया जलाये। और अन्य दो पोटलियों को शूल से तक्षित करके हवन कर दे ।। ९ ।। तृतीय भाग को बांधकर चरु-क्रिया का समारम्भ करे। इस प्रकार बलि निवेदन करके स्नान करे तो वह विधान रोग को तत्काल नष्ट कर देता है ।।१०।। तत्काल मनुष्य चन्द्रमा की भांति निर्मल होकर शुद्धि प्राप्त कर लेता है इस प्रकार अपने हजारों रोगों का विनाश करके तब मनुष्य साध्या (साध्य देवी) की सिद्धि प्रारंभ करें ।।११।। शरीर अथवा मन के जो अत्यंत दारुण रोग हैं उन सारे पातकों को साधु सम्मत और कृतज्ञ सूर्य नष्ट करें ।।१२।। राजा, विप्र तथा अन्यान्य वर्ण[2] के लोग जो साधना के लिए सुयोग्य हैं वे इस विधान द्वारा आपत्तियों का नाश करें ।।१३ ।। यह रुद्र का वचन है कि इन सिद्ध मंत्रों से विनायक[3] दोषों का विघात अवश्य करते हैं ।।१४।। इस प्रकार साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर में ६३वें अध्याय में दसवाँ पटल समाप्त होता है।

---

१. वैदिक एवं पौराणिक परम्परा में भी सूर्य को रोगनाशक के रूप में चित्रित किया गया है देखिए श्रीवास्तव, **सनवरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया** पृ० ५४-५६.

२. राजा अर्थात क्षत्रिय, विप्र अर्थात ब्राह्मण तथा साधना योग्य अन्याय वर्णों का उल्लेख करके पुराणकार ने संकेत किया है कि समाज के सभी वर्ण साधना के योग्य नहीं थे, यद्यपि तन्त्र-पूजा में जाति-भेद नहीं होता था।

३. विनायक गणेश विघ्नो के विस्तार के लिए देखिए अलिस गेटे, **गणेश**, पृ० ३. तथा भंडारकर, **वैष्णविज्म, शैविज्म ऐण्ड माइनर रेलीजस सिस्टम्स**, पृ० १४२.

अध्याय ६४

अभिचार-विधि को सुनकर समस्त विपत्तियों को नष्ट करने वाला यह मंत्र है अधः शूलों, क्रूरग्रहों[1] तथा क्रूर भयंकर महाबली भैरवों[2] को ॥१॥ तथा महामारी वाले कुलों में उत्पन्न होने वाले समस्त रोगों को नष्ट करता है यदि कोई मन्त्र-ज्ञाता व्यक्ति मृत्यु-भूत-भयंकर यमजिह्वा[3] का यज्ञ करे ॥ २ ॥ इस यम-जिह्वा का आवाहन महारौद्र है, शत्रुपक्ष के लिए भयंकर है। यह कंटकशाल[4] दक्षिण दिशा में किया जाता है ॥३॥

---

१. **वे०** में 'गृहान मुद्रित है 'ग्रहान' होना चाहिए।

२. शिव का विनाशक रूप-इसके आठ रूप बताये गये हैं—असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कापालिन, भीषण, एवं संहार। कापालिक भैरव-रूप की पूजा करते थे देखिए डेविड एन०, लोरेन्जन, **दी कापालिकाज ऐण्ड कालामुखाज**, पृ० ८३-८५. सामान्य जन में यह धारणा प्रचलित है कि भैरव भूत प्रेतादि के समान कष्ट देते है।

३. मारण का मन्त्रानुष्ठान।

४. तान्त्रिक परम्परा में अभिचार क्रिया को स्थान दिया गया है, यद्यपि यह गौण महत्व की है क्योंकि अभिचार क्रियायें अस्थायी महत्व की है, तन्त्र-साधना का अन्तिम लक्ष्य आत्मज्ञान है। अभिचार क्रिया से अभिप्राय है हिंसाकर्म जिसके ६ मुख्य प्रकार बताये गये है इनमें से इस अध्याय में मारण का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। देखिए नारायण, दत्त श्रीमाली **तन्त्रसाधना**, पृ० ९७-९८.

नैऋत्यकोण में अथवा श्मशान भूमि में त्रिकोण यज्ञकुंड बनाये। केश से आच्छादित एवं कंटको से घिरे हुये श्मशान में करना चाहिये। ॥ ४ ॥ फिर उसमें द्वार बनाये जिसकी अर्गला कांटो से कल्पित की गई हो, अंतड़ियों की माला हो ॥ ५ ॥ और चारों ओर से बहुत से नरमुण्डों से घिरे हों ऐसे स्थान में त्रिकोण अग्निकुण्ड साधक बनाये[1] ॥ ६ ॥ रक्त से सने हुये सूत से चारो ओर यज्ञकुण्ड लपेटे, जितेन्द्रिय को श्मशान की राख से स्नान करना चाहिए और काला वस्त्र पहनना चाहिए ॥ ७ ॥ मन्त्र के आधाहन करने वाले की लाल पगड़ी हो, लाल यज्ञोपवीत हो, क्रोध में चढ़ी हुयी भृकुटियाँ हो, वह रक्तचन्दन लपेटे हो और शूल लिये हो ॥८॥

अभिचारस्थान को पुष्पयुक्त लौह निर्मित उत्तम शूल हाथ में धारण करना चाहिए और वह खैर में अथवा रक्त से लिप्त हो ॥ ९ ॥ बुद्धिमान व्यक्ति को अग्निशाला के बीच में प्रतिमा निर्माण करना चाहिए और वह प्रतिमा शत्रु के मूत्र और पुरीष से एवं अंत्रपाश से युक्त हो ॥१०॥ पैर से श्मशान वाली मिट्टी को अच्छी तरह आलोडित करके और उसमें दीमक की बाँबी की मिट्टी मिलाकर शत्रु की प्रतिमा बनायें[2] ॥११॥ खैर

---

१. अंतड़ियों की माला, नर मुण्डों से घिरे होने का विधान कापालिक प्रभाव को प्रकट करता है देखिए डैविड, एन०, लोरेन्जन, **दी कापालिकाज ऐण्ड कालामुखाज,** पृ० ८५-९०.

२. तुलना कीजिए **गुह्यसमाज,** पृ० ८४.९६ जहाँ मारण अभिचार का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, देखिए **शारदातिलक** तन्त्र, २३. १२२-१२५, तथा **प्रपञ्चसार** २३.५. **मत्स्य पुराण** ९३.१४९-५५. में विद्वेषण के संदर्भ से इसी प्रकार के अनुष्ठान का उल्लेख है। तुलना कीजिये **अग्नि पु०** अध्याय १३८. **अहिर्बुध्न्यसंहिता,** ५२-२-५८.

ो लकड़ी से उस प्रतिमा में ऊपर केश बनाये और प्रतिमा के चारों ओर
ाश लपेटकर शत्रु के प्राणों को नष्ट करे ॥१२॥ तदुपरान्त विचक्षण उस
त्रु प्रतिमा के पैरों को और मस्तक को शूल से काट दे। लोहे की स्रुवा
कर होम करे ॥१३॥ अभिचार की यह विधि दस प्रकार की बताई गई
–काले बकरे, ऊँट, हाथी, पतंगों के रक्त से एवं ॥१४॥ विष, गन्दे तेल
ौर चारों वर्णों के मनुष्यों के खून-से अभिचार विधि सम्पन्न करें,
ाये हाथ में स्रुवा लेकर दक्षिण की ओर मुँह करके ॥ १५ ॥ क्रोधपूर्वक
ानो संध्या वेला में फटकार सहित मन्त्र साधक हवन करे, तीन नरमुण्डों
ऊपर बैठकर दो नरमुण्डों के ऊपर पैर रखे ॥१६॥

मनुष्य को ऊर्ध्व, शुक्ल एवं तरुण लकड़ियों से हवन करना चाहिए।
क्त से सनी हुई खैर और नीम की लकड़ी से यज्ञ करे ॥१७॥ बुद्धिमान
[1] यथोक्त अन्य वस्तुओं से रहस्यात्मक होम करना चाहिए। जब तक
पना क्रोध नष्ट न हो जाये तब तक प्रकुपित होकर यज्ञ करे ॥१८॥
ल्पों[1] में कहा गया कि यह अभिचार अपनी सिद्धि के लिए करना
ाहिये। अभिचार से साधकों को तेरह प्रकार की सिद्धि होती है ॥ १९ ॥
त्रु का देश-परित्याग, व्याधि, धन सम्पत्ति का नाश, उनमत्तता, अंधता
सी अंग का नाश ॥२०॥ बध, बंधन, राजा का उसके ऊपर क्रोधित
जाना, अकस्मात धन का क्षय, भाग जाना, भिक्षावृत्ति, अरण्य
मन-ये १३ प्रकार की सिद्धियाँ है ॥२१॥ इन उद्देश्यों से दीप्त एवं शुद्ध
के विधिपूर्वक साधना करे तो मंत्र अवश्य ही सिद्ध होता है ॥२२॥
द्धि न होने पर अपने मंत्र का ही उत्ताडन होता है और साधक को
य हानि होती है। ॥२३॥ इस अभिचार कर्म में त्रुटि होने से क्रोधित
र शत्रु-पीड़ित मनुष्य स्वयमेव प्राणहीन होकर क्षण भर में देह छोड़
ता है ॥२४॥

---

१. छः वेदांगों में से एक जिसमें यज्ञ का विधि-विधान निहित है
। यज्ञानुष्ठानों एवं धार्मिक संस्कारों के नियम लिखे हैं।

और प्रतिलोम विधि से प्रयोग करने पर इन्द्र और ब्रह्मा सहित सबको तत्क्षण नष्ट करता है ॥२५॥ जब साधक मनुष्य संशयापन्न हो जाये तो आपत्तियों में इस मंत्र का प्रयोग करना चाहिए ॥ विपत्तियाँ शारीरिक और मानसिक दो प्रकार की बताई गई है ॥२६॥ शारीरिक कष्टों को व्याधि कहते हैं और मानस कष्टों का बहुत विस्तार है ॥२७॥ जब कोई साधक इन दारुण उपसर्गों[1] से पीड़ित होता है तो होम-मंत्र पुरस्कृत करके इन सिद्ध वाक्यों (मंत्रों) का प्रयोग करे ॥२८॥ निःसन्देह सच्चे साधक के ये योग बुद्धि से सिद्ध हो जाते हैं जो स्त्रियों के लिए लालायित हैं अथवा धन की चिन्ता में रत है उनको सिद्धि नहीं मिलती ॥ २९ ॥ जो लोग पर स्त्रियो में, अपनी भार्या में, शूद्र भार्या में अथवा परकीयाओं मे अनुरक्त हैं, जो क्रिया लोभी, अनुरोधी, व्यसनी, तृष्णा द्वारा आहत हैं ॥ ३० ॥ ऐसे व्यक्ति भी इस विधान के लिए अग्राह्य हैं जो व्यक्ति आचार्य का अत्यन्त भक्त हो, तपस्वी हो, जितेन्द्रिय हो वह ही इसे सम्यक रूप से जानकर समस्त रोगों का विघात करता है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में मारण अभिचार वाले ६४वें अध्याय[3] में ११वां पटल समाप्त होता है ।

---

१. क्षीणं हन्युश्चोपसर्गाः प्रभूताः, सुश्रुत, उद्धरित आप्टे, वही, पृ० २१२.

२. वे० में क्रियालोपी मुद्रित है 'क्रियालोभी' होना चाहिए ।

३. यह पूरा अध्याय तान्त्रिक शैव प्रभाव से अनुप्राणित है इसकी तिथि १२५०-१५०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिए हाजरा, साम्ब-पुराण ए मीर वर्क आफ डिफरेन्ट हैन्ड्स, **अनाल्स आफ भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट**, भाग ३६. पृ०८३.

अध्याय ६५

अब मैं अंग प्रत्यंग के योग से उत्पन्न होने वाले भेदों को बता रहा हूँ। दोनों के अर्थ को जानने वाला मंत्रवेत्ता इसके द्वारा शत्रुओं को मारता है ॥१॥ इस बीज[1] के प्रारम्भ में घातक (पुरुष) पहले बीजयोग से योनिस्थ स्थान स्तम्भ का निर्देश करे ॥२॥ दोनों नेत्रों में और कानों में पीला रंग, मुख में सिन्दूर वर्ण, भुजाओं और कन्धों पर हरा, उदर में काला ॥३॥ गुदा के अंगों में बहुरंगी, जांघों में नीला और चितकबरा, पैरों में कुक्कुट वर्ण प्रयुक्त करे और समस्त अंगों में बलि एवं माला धारण करे ॥४॥ तब अपने स्थान मे पूजा करे और विपरीत प्रक्रिया से रोग का नाश करे। जब व्याधि इस प्रकार प्रेम माला से पूजित होने पर भी नष्ट न हो ॥५॥ तब मंत्र करने वाले शार द्वारा उसका निग्रह करना चाहिये और उसे वर्णों से दृढ़ योनिस्थ को कीलित करके रक्षा करनी चाहिए ॥६॥ सिर पर बेल, मुख तथा नेत्रों में जमा हुआ दूध, कानों में वास्यक, एवं कील का प्रयोग करे ॥७॥ वृक्ष पर शाकज[2] और पीठ पर बादर[3] पेट तथा अन्य अधोवर्ती अंगों में चन्दन, जंघों में शनि[4] ॥८॥

निचले शरीर में देवदारु इस प्रकार क्रमशः मंत्रवित सब ओर और प्रत्येक स्थान में कील रक्खे और ॥९॥ बुद्धिमान विनाश कार्य के लिए

---

१. बीजमन्त्र

२. सागौन अथवा शिरीष का वृक्ष

३. कपास अथवा बेर का वृक्ष

४. अस्त्र की नोक

श्लेष्मातक[1] और विभीतक[2] का प्रयोग करे तथा सभी कर्मों में कीलों का सहचर रक्खे ।। १०।। अथवा रक्त से आकृति को स्नान कराए और कील रक्खे, रोग का श्रेष्ठ घात करना चाहे तो घातक विनाशक देवता का ध्यान करे ।।११।। अदग्ध को उतार कर शान्ति प्रवर्तित करे। इस प्रकार का विधान करने से चाहे स्वयं ब्रह्मा ही क्यों न हो लेकिन वह भी दावाग्नि से नष्ट हो जाता है ।।१२।। विघ्न करने वाले शत्रु की आकृति सदैव मांस में बनाई जाती है और उसकी मूर्ति को परशु से संक्रमित करना चाहिये ।। १३ ।। बुद्धिमान साधक को चाहिये कि धीरे धीरे मांस से ही योनि बीज के स्थान में सभी ओर उसका संहार करे। ।।१४।। समस्त अंगों में उत्पन्न होने वाले रोग इस विधान से चिकित्सा करने योग्य होते है। मंत्रिण उन्हें खेल खेल में ही समाप्त कर देता हैं ।।१५।। जो जो कीलक इस विधान में बताये गए हैं चार माला के उपहार से उसकी चिकित्सा करनी चाहिए ।। १६ ।।

इस प्रकार साम्ब-पुराण में ६५वें अध्याय में १२ पटल समाप्त होता है।

---

१. लिसोड़े का वृक्ष

२. बहेड़े का वृक्ष

अध्याय ६६

जब मन्त्रज्ञ सार्वलौकिकी सामान्य चिकित्सा को किसी राजा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर करता है तो इस विधि का पालन करना चाहिये ॥ १ ॥ नायकों[1] की शान्ति के लिए व्रत का आदेश पहले किया जा चुका है। अद्भुत-होम के द्वारा विनायक-तत्त्व[2] की शान्ति करे ॥२॥ समस्त कार्यों में साधक व्यक्ति अपने शरीर से नष्ट करे इसलिए समस्त उपद्रवों की शान्ति के लिए व्रत करना चाहिये ॥ ३ ॥ अन्यथा मंत्रहीन हो जाता है। अपने शरीर से यज्ञ करना चाहिये। मंत्री को चाहिए कि श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत माला पहन करके अनुलेपन करके मंत्री ॥४॥ जितेन्द्रिय बनकर, प्रशान्तात्मा बनकर, काष्ठ की तरह मौन होकर सुनियंत्रित होकर शुद्ध वर्ण वाली, विशुद्ध वंश में उत्पन्न हुयी स्त्री[3] को साथ लेकर ॥ ५ ॥ उसके साथ दस दिन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करे। मूढ़ होकर मन से भी सभोग न करे ॥ ६ ॥ दस रात्रियों के बीत जाने पर द्वितीय वर्ण वाले क्षत्रिय शरीर को समस्त पीले वर्ण वाले शृंगारो से विभूषित करके ॥७॥ श्रेष्ठ मन वाला, दृढ़ चित्त होकर क्षत्रिय का पति बनकर उसी ब्रह्मचर्य का पालन करे। वैश्य गुण से युक्त होने पर

---

१. प्रधान देवताओं से अभिप्राय लगता है।

२. विनायक विघ्नकारक देव है। देखिए गेटे, गणेश,

३. शुद्ध वर्ण की स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करने का निर्देश है जो सामाजिक स्तर-विन्यास की ओर संकेत करता है। देखिए **दी स्ट्रगिल फार इम्पायर**, ४७८-७९.

तो पीले वस्त्र पहन कर अनुलेपन करे ॥८॥

दृढचित्त होकर दस दिन तक ब्रह्मचर्य करे। कृष्ण वर्ण को काले वस्त्रों के उपहार से युक्त करे ॥९॥ सभी वर्णों को और पंचम वर्ग[1] को और गणिका को काले ही वस्त्रों से संयुक्त करे और इस प्रकार व्रत की समाप्ति[2] करके योनि-चक्र की पूजा करे ॥१०॥ इस व्रत में अपने को अभिषिक्त करके रोग को मूल से उखाड़ फेंके, जितने समय तक व्रत करे तब तक यज्ञ भी करे ॥११॥ दिन में देवता की उपासना करे, रात्रि में पूजा न करे, तुम्हारे द्वारा कहा गया यह व्रत साधकों को परम सिद्धि देने वाला है ॥ १२ ॥ समस्त सिद्धियों में लगा हुआ साधक इस व्रत का आचरण करे। हाथ पैर को चपल नहीं होना चाहिए। आंखों को चंचल नहीं होना चाहिए ॥ १३ ॥ वाणी को चपल नहीं होना चाहिए। लघु आहार वाला हो और जितेन्द्रिय हो संयत होकर इस व्रत को साधे और विपत्तियों से उद्धार करे। यह नराव्रत सब विघ्नों का हनन करने वाला है ॥ १४ ॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर नामक ६६वें अध्याय में १३वाँ पटल समाप्त होता है।

---

१. यहाँ पर चारों वर्णों का उल्लेख किया गया है पंचम वर्ण का भी वर्णन है, यह सामाजिक जाति-भेद एवं स्तरविन्यास का द्योतक है इस काल में सामाजिक स्तर-विन्यास के लिए देखिए घुरे, **कास्ट, क्लास ऐण्ड अकूपेशन; दी स्ट्रगिल फार इम्पायर,** पृ० ४७४-७५.

२. वे० में ससाप्ति अशुद्ध है, समाप्ति होना चाहिए।

३. योनिचक्रपूजा तान्त्रिकों की एक विशिष्ट परम्परा है देखिए **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र,** ५, पृ० ११३७-११३८.

अध्याय ६७

यह अत्यन्त पुण्यकारी व्रत उत्तर-साधन में किया जाना चाहिए । आधा अधम योग में और एक चौथाई अधम में ।। १ ।। प्राचीन काल में कल्प मे महातेजस्वी (सूर्य) द्वारा उस साधन में जो कहा गया अब मैं उन्हीं दिव्य एवं पार्थिव अर्थों के साधकों वाले योगों का उपदेश करूंगा ।। २।। मंत्रो की तीन योनियाँ हैं सत्व, रजस और तमस । ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र यही साधक के साध्य हैं ।।३।। अर्चना में उसी प्रकार काम संकल्प करना चाहिए जैसे अग्निकार्य में, नारी के दुःख की प्रकृति में, लिंग में तथा सर्वकामनाओं मे । ।।४।। अधिष्ठात्री देवी[1] चार भुजाओं वाली होती है नर[2] को आक्रान्त करके सुस्थित होती है । उसके दाहिने हाथ में खट्वांग होता है और बायें में कपाल ।।५।। उसके नीचे चक्कर होता है दिव्य मनुष्यों को उसकी पूजा करनी चाहिए । वह क्रूर[3] दांतों वाली है और तेज सम्पन्न है ।।६।। साधक को संयत होकर क्रम-योग से एक लाख मंत्रों का जप करके उसका सम्पुट पाठ करना चाहिए ।।७।। व्रत के अनन्तर उस साधक द्वारा काम कर्म करना चाहिए । माँस, गुग्गुल और बकरे का माँस मिलाकर ।।८।।

---

१. काली से अभिप्राय है । मृत्यु की देवी है । मारणादि अभिचार की देवी काली है देखिए श्रीमाली, **तन्त्रसाधना**, पृ० ६८.

२. परमात्मा-शिव

३. बे० में 'क्रां' अशुद्ध है क्रूरां होना चाहिए ।

तीनों संध्याओं में ताड़न क्रिया करनी चाहिए और उसके बाद प्रति सध्या में सहस्त्र बार होम करना चाहिए। जब तक कि महीना बीत न जाये ॥९॥ इस प्रकार सिद्ध किया गया मंत्र सदैव कामद होता है। यंत्रवेत्ता अथवा तन्त्रज्ञ (व्यक्ति) इस प्रकार इसे साधे ॥ १० ॥ साधक को सुन्दर सहायकों से सम्पन्न प्रसन्न आत्मा वाला, निरन्तर योगयुक्त सात्त्विक विचार वाला होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अज्ञान के कारण वेदवर्जित[1] होकर यह साधन प्रारम्भ करता है ॥११॥ तो वही देवता हीन कर्म[2] में कृत्या[3] बन जाते हैं। साधक को जंगल में काष्ठवत मौन होना चाहिए। यज्ञों और विप्रों से संयुक्त होना चाहिए अन्यथा हीन साधन होता है जिस प्रकार का साधक हो उसी प्रकार का सहायक होना चाहिए ॥ १३ ॥ तपस्वी, जितात्मा और महेश्वर[4] के प्रति नित्यानुरक्त ऐसे मंत्री को चाहिए कि तत्त्वतः समझे गए योग से साधन कर्म को प्रारंभ करे ॥१४॥ इस प्रकार का साधक व्यक्ति काल से मृत्यु प्राप्त करता है और मृत्यु के अनन्तर अनन्त लोकों को प्राप्त करता है ॥१५॥ पुण्यात्मा वह व्यक्ति पवित्र स्थान में रहता है अथवा सार्वभौमिक राजा होता है। ये साधक पृथ्वीलोक में विद्यासिद्ध होते हैं। इस प्रकार साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर नामक ६७वें अध्याय में १४ वाँ पटल समाप्त होता है।

---

१. वे० में वेध-वर्जित अशुद्ध प्रतीत होता है, वेद-वर्जित होना चाहिए।

२. हीन-कर्म से अभिप्राय आभिचारिक कृत्यों से है क्योंकि तान्त्रिक दर्शन में वास्तविक लक्ष्य हैं आत्म-मुक्ति, आभिचारिक सिद्धियाँ मान्य हैं किन्तु उन्हें गौण स्थान प्राप्त है।

३. एक देवी जिसकी यज्ञादि के द्वारा पूजा इसलिए की जाती है कि विनाशकारी एवं जादू टोने के कार्यों में सिद्धि प्राप्त हो।

४. शैव प्रभाव को प्रकट करता है, देखिए हाजरा, अनाल्स, ३६ पृ० ८३ आदि।

अध्याय ६८

अब वह साधन बताऊँगा जिससे साधक लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं। और जिससे उन्हें नाना सिद्धियों और फलों को प्रदान करने वाला विमल वेध[1] योग प्राप्त होता है ॥१॥ छः महीने के लिए यह पुरश्चरण व्रत करना चाहिए। शाकादि के विधान से अथवा जल से पहले शोधन करे ॥२॥ बाद में ६ लाख बार ओंकार का जप सम्यक चित्त से करे ॥३॥ पवित्र शरीर वाला होकर साधक वासगृह बनाकर शास्त्रोक्त विधि से उसमें देवता की स्थापना करे ॥४॥ अविनाशी विद्यांगों का अपने मंत्र-विधि के क्रम से १०००० बार एक एक करके परिवर्तित करे ॥५॥ इसके पश्चात् शास्त्र के क्रम से परिपूर्ण, विरक्त प्रदीप्त शुभ मनोवांछित मन्त्र का मन से आश्रय लेकर जप प्रारम्भ करे ॥६॥ जप के अंत में व्रत और व्रत के भी अन्त में साधन सम्पन्न करे। अस्त्रमण्डल में मंत्र के साधन में योग साध्य है ॥८॥

अपने मंत्र के आकार वाले तंत्रोक्त वेद्रय को ग्रहण करे और इस प्रकार तंत्रज्ञ यज्ञ क्रिया से साधना करे ॥ ९ ॥ होम के अंत में कही गई विधि के द्वारा साधक मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है ॥ १० ॥ मंत्र के प्रारम्भ हो जाने पर अन्यान्य सेवक मंत्र गण उद्यत और महाभयंकर लक्षित होते है ॥११॥ इसे विनाशक समझना चाहिए ॥१२॥ उठकर यदि मंत्र से अर्थ दिखाई पड़ जाय तो उसे साध्य समझना चाहिए यदि शास्त्रोक्त लक्ष्य को पा लेता है तो उसे सिद्ध मन्त्र जानना चाहिए अन्यथा वह मार देता है ॥ १३ ॥

---

१. घायल करने का अभिचार

इसके द्वारा मनुष्य विद्या की सिद्धि में अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है ॥१४॥ जो राजा सिद्ध हो जाता है वह सप्त द्वीप का अधिपति और बली होता है वह पार्थिव भोगों को भोगकर अन्त में शरीर के अन्त होने पर शिव-लोक[1] को जाता है ॥१५॥ ये सर्वकामदा उत्तम सिद्धियाँ कही गई हैं, इसके आधे को मध्यम जाना चाहिये और उसके आधे को अपेक्षाकृत कम समझना चाहिए ॥१६॥

जो व्यक्ति सिद्धि चाहता है वह गुग्गुल आदि के योग से यज्ञ सम्पन्न करता है ॥१७॥ भ्रष्ट राज्य वाला जो नरेश इस सिद्धि से शोधित होता है वह गुण-योग और जप में असिद्ध होने पर भी व्रती मनुष्य ॥१८॥ संतृप्त और मन्त्र दीपित होने के बाद हीन से हीन होने पर सुखपूर्वक सिद्धि प्राप्त कर लेता है फिर साधक के लिए क्या ॥१९॥ मन्त्र करने वाले साधक को समस्त कर्मों में सदैव मांस[2] और गुग्गुल का होम करना चाहिए और सदैव संकट में जप-वृद्धि करनी चाहिए ॥ २० ॥ जो व्यक्ति संकल्प हीन है उसे सिद्धि नही मिलती इसलिए पहले संकल्प करके तब साध्य की सिद्धि करनी चाहिए ॥ २१ ॥ जो व्यक्ति सत्यवादी, जित द्वन्द्व[3], दृढ़चयरित, पवित्र, मित्रपोषक, मितभाषी होता है वह उत्तम सिद्धि प्राप्त करता है ॥२२॥ मंत्र-साधक व्यक्ति को प्रमादपूर्वक शूद्र[4] के साथ वार्तालाप नहीं

---

१. द्रष्टव्य है कि सौरोपासना का फल सामान्यत: सूर्य-लोक की प्राप्ति बताया जाता है यहाँ पर शिव-लोक की प्राप्ति का उल्लेख है जो सौरोपासना पर शैव प्रभाव को प्रकट करता है देखिए श्रीवास्तव, **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया**

२. आभिचारिक क्रियाओं में मांस एवं गुग्गुल के होम का बहुधा विधान किया जाता है यह तान्त्रिक शैव परम्परा की देन है।

३. समभाव वाला, **गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ.**

४. तान्त्रिक परम्परा में सामान्यतः जाति-भेद को स्थान नही दिया जाता परन्तु यहाँ पर शूद्र से वार्तालप न करने का आदेश है जो रुढ़िगत सामाजिक चेतना के प्रभाववश लगता है।

ाहिये । इस व्रत से जो व्यक्ति रागी न हो वह भी संसार का
। करता है । कामी हो तो अकामुक हो जाता है ।। २३ ।। गृढ
वाला साधक यदि प्रमादी है तो उसे सुदृढ़ क्रिया करनी
साधक को हिंसा नहीं करनी चाहिये ।।२४।

तक साधक व्यक्ति व्रत करता है उसके लौकिक कार्य सफल होते
प्रकार महीने भर जप करके साध्य का प्रयोजन करे ।। २५ ।।
प्रति प्रसूति का विधान करके नमक की आहुति सात रात्रियों तक
ों को अपने वश में कर लेना चाहिये ।।२६।। घातक के प्रतिलोम
शृंगवेर के विष में हवन करके समस्त जन्तुओं को नष्ट करे
जो व्यक्ति व्रती नहीं है उसे सिद्धि नहीं मिलती और जो व्यक्ति
धान को जाने हुए अज्ञानपूर्वक इस क्रिया को प्रारम्भ करता
रा जाता है ।। २८ ।। यदि वेधकाम मन्त्रज्ञ रूप का चित्र
तो उसे पूर्वोक्त विधान से तीन मुख वाली तथा चार भुजाओं वाली
ाहिए।। २९ ।। अष्ट शक्तियाँ को दिक्पतियों के रूप द्वारा बनाना
से सूर्य की रश्मियाँ होती हैं उसी प्रकार मंत्र की ये शक्तियां
हैं ।। ३० ।। जैसे विष्णु उसी प्रकार रुद्र[2] और बगल में वीरभद्र की
वित को सभी कालों में इन्हीं मन्त्रों के द्वारा करनी चाहिये ।।३१।।
म काल में जप से विनियोग करे । रोगों के विनाश कर्म में भी
अपनानी चाहिये ।।३२।।

साधक संशयी हो तो इस विधि को करना चाहिए और अपनी

काली से अभिप्राय है, काली मारण की देवी मानी जाती है ।
माली, तन्त्रसाधना, पृ० ९७

विष्णु और रुद्र की एकात्मकता प्रकट करता है देखिए वासुदेव
सोशियोरेलीजस कन्डीशन आफ नार्थ इण्डिया,

कामना के अनुसार अर्थों की सिद्धि करे ॥३३॥ राष्ट्र भंग होने पर, संकट वेला में और स्थान त्याग के प्रसंग में इस व्रत का सम्पुट पाठ तब तक करना चाहिए जब तक कि वह विपरीत काल न आ जाए ॥ ३४ ॥ तदनन्तर संहारान्त कार्य करके बीच में पुनः मंत्र योजित करे और इसके बाद संहार का आयोजन करके बीच में बीज से विष्टित करे ॥३५॥ दशवर्ण बीज के द्वारा अंग प्रत्यंग का योजन करके मंत्र को विन्यस्त करना चाहिए ॥३६॥ ओंकार स्मरण करके दोनों पैर में दीर्घ स्वर बारम्बार बायें हाथ में श्योंकार ॥३७॥ हृदय में मकार और जठर में श्योंकार, पीठ में पिकार और मुख में नकार ॥३८॥ मस्तक पर ओंकार साधक को विन्यस्त करना चाहिए ॥३९॥ मंत्रों की यह विधि सूक्ष्म एवं सर्वतोमुख है। निस्सन्दे [illegible]-त-विधि से मंत्र-वेत्ता इसे सिद्धि करे ॥४०॥

मंत्रग्रहण में मूल साधन का प्रयोग करना चाहिए। आद्यान्त की विधि क्रमशः होनी चाहिए ॥४१॥ जो लोग क्रमानुसार यह साधन नहीं सम्पन्न करते हैं उनकी सिद्धि आमंत्रित करने पर भी लौट जाती है ॥४२॥ जो लोग मंत्र-जप में लगे होते हैं और जो लोग जप विधि में विद्यमान है जो व्रत-विधि में कुशल है उन्हें सिद्धि मिलती है ऐसा शास्त्रों में कहा गया है ॥४३॥ स्वल्प साधन में भी जप और व्रत में व्यक्ति को युक्त होना चाहिए। अन्यथा साधक गतिहीन हो जाता है और कर्म भी उसका निरर्थक हो जाता है ॥४४॥ महीने भर साधन योग में संहिता का जप करके असिधार व्रत पाँच रात्रियों का व्रत पालन करके यथाक्रम कार्य करे ॥४५ ॥ छोटे

---

१. वि० में अठरे अशुध्द है जठरे होना चाहिए।

२. अत्यधिक कठिन

३. पाँच रात्र व्रत वैष्णवों के संदर्भ में आता है देखिए 'इन्ट्रोडक्शन टू पाँचरात्र ऐण्ड अहिर्बुध्न्य संहिता'

मोटे रोगों को, ग्रहों को व्यक्तियों, को, उपद्रवों को इच्छानुसार ही तीक्ष्ण व्रत में लगा हुआ मनुष्य, सिध्द कर लेता है ॥४६॥ महातपस्वी जितेन्द्रिय अनन्य भक्त महेश्वर प्रिय साधक व्यक्ति विद्याज्ञान में और तत्त्वों में महा स्थिति को प्राप्त कर लेता है और विद्याधरों की मुख्य लक्ष्मी को भी प्राप्त कर लेता है ॥ ४७ ॥ उस दशात्मक बीजतत्त्व को पूर्णरूप से जान कर पदबीजों के नियोग को जानकर और पूर्वोक्त बुध्दि सिध्दि प्राप्त करते हैं ॥४७॥ देवता सर्वमंत्रात्मक होते हैं। और समस्त देवता शिवात्मक[1] हैं। शिवतंत्र के पदों के द्वारा सम्यक बुध्दि यथान्याय इन सबका सम्यक् ज्ञान करके साधक व्यक्ति शीघ्र ही सिध्दि प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर नामक ६८वें अध्याय में सर्वसामान्य साधन नामक १५वाँ पटल समाप्त होता है।

१. शैव प्रभाव को प्रकट करता है। देखिए हाजरा, अध्यायस ३६, पृ० ८३.

अध्याय ६९

अब इसके बाद तत्वानुसार पथ का वर्णन क्रमशः किया जा रहा है जिस पथ से कोई गृही व्यक्ति (गृहस्थ) शिवलोक को प्राप्त करता है ॥ १ ॥ गण[1] और मण्डल[2] के तत्व को जानने वाला और उसमें पारंगत अभिषिक्त, शिव सदृश्य गुरु की पूजा करने वाला ॥२॥ शिवयोनि में अर्पित और अम्बिका द्वारा गर्भ में धारण किये गये योग से उत्पन्न, यौगात्मक, योग से सम्भव ॥३॥ जातकर्म गुणों से युक्त, स्नानादि के कारण विगत कल्मष, रक्षण युक्त, धूप के कारण सत्यात्मा, सत्य-सम्भव ॥४॥ विवत अन्न को फैलाने वाला, शिवात्मा द्वारा मस्तक भाग पर आघ्रात, चूडाकर्मयुक्त, मंत्रशक्ति से युक्त शरीर वाला ॥५॥ विधिपूर्वक उपनयन[3] किया गया, मौन्जी मेखला और मृगचर्म को धारण करने वाला, पवित्र, देवव्रत-

---

१. गण का अर्थ यहाँ पर जप माला के लिए लगता है जो तान्त्रिक-पूजा का एक अभिन्न अंग है, गण का दूसरा अर्थ -शिव के सेवकों से भी लगाया जा सकता है ।

२. तान्त्रिक पूजा में दिव्य बिभूतियों के आवाहन के लिए एक प्रकार का गुप्त रेखचित्र या तन्त्र, देखिए काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, (हि०) भाग ५, पृ ७१-७३.

३. तान्त्रिक परम्परा में १० संस्कारों को स्थान दिया गया है जिन जात कर्म चूड़ाकर्म, उपनयनादि का उल्लेख यहाँ किया गया है देखि महानिर्वाणतन्त्र, अध्याय ९ पृ० २१६-२५३.

धारी, मुण्डी, जटी, भिक्षा का अन्न खाने वाला ॥६॥ विधिपूर्वक विद्याध्ययन किया हुआ, सर्वज्ञ, बीजवित्त, कृतात्मा, कृतविद्या, कृतगोदान, कृतदक्षिणा ॥७॥ पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ करने वाला सोमयागी, शिवमार्गानुसारी, योगवान, धनवान ॥८॥

यथोक्त ज्ञान कर्मस्थ, गुणदोषविवर्जित ऐसा व्यक्ति सभी तत्त्वों में सिद्धि प्राप्त करता है ॥९॥ इस प्रकार के गुणों से विशिष्टात्मा वाला, तपस्वी, द्वन्द्व-वर्जित, क्रोधादि से विमुक्त, मिट्टी पत्थर और सोने को समान समझने वाला वह साधक व्यक्ति समस्त जीवों में अपने ही समान विचार रखता है और सबको अपने में ही देखता है। प्राणायाम आदि से खिन्न ॥११॥ विशुद्ध आचार वाला वह साधक पुरुष हो ा है । इस कर्मयोग से साधक पुरुष को उस परम् प्रभु में लीन होना चाहिए ॥१२॥ गुरु की तरह कार्य करने वाला, गुरु की तरह ध्यान धरने वाला, आत्मस्थ शिव का चिन्तन करने वाला ऐसा साधक व्यक्ति आचार्य को भी ोष कर देता है । दीक्षा से विमल मन वाला मुक्त वह साधक परम पद को प्राप्त करता है ॥१४॥ उत्पन्न विज्ञान वाला साधक अनिन्दित मुक्तिव्रत को करे, सिद्धि के लिए एकान्त में क्षमा शील साधक को भूव्रत करना चाहिए ॥१५॥ सदैव आत्मप्रधानहित की बात कहने वाले व्यक्ति को छोड़कर और विपरीत मतों को छोड़कर नित्य सदा शिव का ध्यान धरे ॥१६॥

जो शिव निराकार है, वग्विशुद्ध हैं, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ हैं । प्रमाण विषयातीत हैं और दृष्टान्तादि से विहीन लक्षण वाले हैं ॥१७॥ जो नक्षत्रों के प्रकाश हैं, ज्ञानराशियों के श्रेष्ठ स्थान हैं, तत्त्वों के परम तत्त्व है और

१. द्रष्टव्य है कि तान्त्रिक धर्म का अन्तिम उद्देश्य परम ब्रह्म की प्राप्ति है इस आदर्श का निरूपण यहाँ पर हुआ है **महानिर्वाणतन्त्र**, अध्याय २-३ में इसी परम ब्रह्म का चित्रण किया गया है ।

२. पाशुपत दर्शन में शिव को वाग्विशुद्ध कहा गया है देखिए दासगुप्ता एस०, एन०, **ए हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी**, भाग ५ पृ० १४०.

गतियों की परमगति हैं ॥१८॥ तत्त्व द्वारा उस शिव को उसके तत्त्व को और फैली हुई उसकी निष्कल सत्ता को भली भांति जानना चाहिए ॥१९॥ ध्येय योग को जानने वाला, बिन्दु, नाद और तनु में विद्यमान ज्ञानमय श्रेष्ठ आत्मा को जानकर मोह छोड़ देता है ॥२०॥ निरन्तर अभ्यास के योग से और काल से प्रायः मनुष्य भाव-शुद्धि-विधि से श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर लेता है ॥२१॥ आधे मुहूर्त मात्र से बीज कलादि के सहारे आत्मा तत्काल दिवार्द्ध भाग को प्राप्त कर लेता है ॥२२॥ जो प्राकृत तत्त्व हैं, स्वभाव से ही जो प्रकृत हैं, जो तीव्र तत्त्व है, परम सूक्ष्म है, वे पच्चीस हैं ॥ २३ ॥ तत्त्वज्ञ योगवान योगपण्डित आत्मा-तत्त्व से युक्त होकर शीघ्र ही शान्ति लाभ करता है ॥२४॥

जपध्यान आदि से दीपित परम सौम्य देवता को योजित करता हुआ साधक व्यक्ति सफलता प्राप्त करता है ॥२५॥ इस प्रकार गुण विशिष्ट जो व्यक्ति तत्त्व मण्डल को युक्त करता है उसे पुण्य लाभ होता है । अगुणी को भी इसी प्रकार योजित करना चाहिए । वह मन्त्रवान और विद्येश्वर से समादरित होता है । इस प्रकार श्री साम्बपुराण में ६९ वाँ अध्याय समाप्त होता है ।

१. द्रष्टव्य है कि यह सम्पूर्ण अध्याय शैव प्रभाव से अनुप्राणित है सूर्यलोक के स्थान पर शिवलोक, सूर्य देव के स्थान पर शिव का उल्लेख किया गया है । पूर्व मध्यकाल में सौर एवं शैव धर्मों के मध्य समन्वय स्थापित हो चुका था देखिए श्रीवास्तव, **सन वरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया** पृ० ३६१-३६२.

अध्याय ७०

जप की सम्पूर्ण विधि बताई गई और कर्मों के साथ विश्व-बीज भी बताया गया और वह विधान भी कहा गया जिससे कि परमेश्वर बीज की इच्छा करता है ॥१॥ हे प्रभु । अब आप सम्पूर्ण रूप से युक्त भक्त को ज्ञान-दान दे। इस प्रकार कहे जाने पर देवता (सूर्य) ने विधि का प्रवचन किया ॥२॥ जिन चालीस अक्षरों को मैंने पहले बताया उन्हें फिर से बता रहा हूँ जिससे कि बीज[१] उत्पन्न होता है ॥३॥ तीन चार, दो. तीन पाँच चार, तीन चार दो, तीन पांच चार, चार इस प्रकार इन्हीं वर्णों से समायुक्त रूप में दशात्मक प्रसव होता है। व्यंजन और स्वर परमेष्ठी भूताधिपति इनसे उत्पन्न होते हैं और उससे परम ज्योति उत्पन्न होती है ॥६॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में बीज-प्रसव में ७०वाँ अध्याय समाप्त होता है।

१. वर्णों से बीज-मन्त्रों की उत्पत्ति के लिए देखिए वुडराफ, दी गारलैण्ड आफ लैटर्स, २५७-२६६

अध्याय ७१

कृष्णचक्र एवं काम्य रूपी अरनीष्टक से युक्त देव अर्थात देवाधिदेव सूर्य का शरीर बीजों का परम बीज शंकर अर्थात कल्याण करने वाला परमेश्वर है ॥१॥ भिन्न मूलों में विनयस्त सबिन्दुक और अक्षर है वह भक्ति द्वारा घिरा हुआ है और देवाधिदेव का शरीर बीजअक्षरों से युक्त है ॥ २ ॥ प्रणव इत्यादि से संवृत है और चार भिन्न वर्णों सदृश जिसकी आत्मा है ॥३॥ ओंकार यन्त्रिक[1] के पूर्व में और सुकारादि पूर्व–दक्षिण में। इस प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति सम्यक् रूप से इस तथ्य को जानकर चतुराक्षर को स्थापित करे ॥४ ॥ तत्त्वज्ञ पश्चिम में तकारादि की स्थापना करे इससे कल्याण होता है ॥५॥ तदन्तर तत्त्वज्ञ व्यक्ति पृथ्वी पर आत्म प्रसूति प्राण अन्यान्य अक्षरों को विनयस्त करे ॥६॥ पकार से लेकर चकार से अंत होने वाले शब्दों को पंचिकाशक्ति का नाम दिया गया है जिसके बीज में संपूर्ण जगत के स्वामी शंकर को व्याप्त करके शिवधात्री[2] विद्यमान है ॥७ ॥ तदन्तर नरेश क्रमानुसार विशिष्ट अन्य अक्षरों को विनयस्त करके ईशान और दक्षिण दिशा में दो दो के दल में स्थिर करे ॥८॥

अकार-इकार और रेफ आदि तदन्तर स्थापित करे ॥ ९ ॥ इस प्रकार साम्ब-पुराण में बीज-प्रसव में ७१वां अध्याय समाप्त होता है।

---

१. यन्त्र के माध्यम से पूजा तन्त्र की विशेषता हैं काणे, **हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र**, (हि०) भाग ५ पृ० ७३-७६.

२. शक्ति से अभिप्राय है।

अध्याय ७२

शब्द रूपों की सिद्धि के लिए पूर्व दक्षिण दिशा में क्रमशः प्रथम वर्णनाश विधि और व्यंजन[1] क्रमानुसार होना चाहिए ॥१॥ द्वितीय वर्ग को नैऋत्य दिशा में, तृतीय वर्ग को वायु की दिशा में और चतुर्थ को समस्त देवताओं की दिशा में विनयस्त करे ॥२॥ अन्तस्थ वर्णों और प्रथम वर्ग के वर्णों को दक्षिण ओर स्थापित करे। शेष वर्णों तथा शकार आदि को पश्चिम दिशा में स्थिर करे ॥३॥ उत्तर दिशा में चकार, सकार और आकार तथा अकार इन चारों को विनयस्त करे ॥४॥ पूर्व दिशा में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत इन तीनों को विनयस्त करे और उत्तर दिशा में अन्य तीन को इस प्रकार यह बारह अक्षर हैं ॥५॥ एकार को नैऋत्य, उत्तर और वायु की दिशा मे स्थिर करे यही दि्‌विशक्तिस्थ बीज-चक्र है ॥६॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर में ७२वाँ अध्याय समाप्त होता है।

---

१. वे० में व्यंजनानि मुद्रित है, व्यंजनानि होना चाहिए।

अध्याय ७३

योनि बीज प्रणव को बार बार आद्यान्त जानना चाहिए और फल चाहने वाले (साधक व्यक्ति) को पंचाक्षर स्वरुप वाले परमेष्ठी[1] को पृथ्वी पर विनयस्त करना चाहिए ॥१॥ प्रारम्भ में बिन्दु सहित अष्टाक्षर बीज न्यस्त करे और शेष प्रणव से प्रारंभ और अंत होने वाले दूसरी दिशा में ॥ २ ॥ दक्षिण दिशा में श्रेष्ठ देवता हो और विपरीत दिशा में सविन्दुक हो ॥३॥ बिन्दु और उकार पूर्वक अक्षर पर दिशा में न हों ॥४॥ आद्यान्त व्योम ही परमदेव है विराम में प्रणव है। जैसी बीज योनि हो उसी प्रकार के अक्षर भी जानने चाहिए ॥५॥ प्रसूति नाम वाला देवता हो और सत्रह वर्ण हों ॥६॥ जिसके दोनों ओर ओंकार हो और पन्द्रह अक्षरों वाला सृष्टि नाम वाला श्रेष्ठ देवता व्योम के बीच में विनयस्त हो ॥७॥ इन (वर्णों) के आदि पदों द्वारा सत असत् आत्मा वाला देवता ईशान दिशा में विनयस्त होना चाहिए जिसे धाता, सृष्टि एवं संहार नामों से जाना जाता है ॥८॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण बीज-प्रसव में ७३वाँ अध्याय समाप्त होता है।

---

१. शिव की उपाधि।

अध्याय ७४

उन अक्षरों की उत्तम योनियां हैं और उनसे मंत्र निकले हुए हैं। आठ अक्षरों वाली व्योमादि से युक्त पहली शिवयोनि है ॥१॥ ओंकार से प्रारंभ होने वाली तथा हकार से अंत होने वाले श्रेष्ठ अक्षर जिसमें हो और जो मुक्ति के लिए उपयोगी हो उस पुण्ययोनि को शब्द वेत्ताओं ने ॥ २ ॥ परयोनि[1] बताया है। विन्दुसहित आकार जिसके प्रारंभ में हो और जिसके अन्त में अक्षर हो वह कारणयोनि है ॥३॥ इकार से प्रारंभ होने वाली और हकार से अंत होने वाली सर्व कल्याण के लिए पाँच वर्णों वाली क्रिया शक्ति वाली त्रिगुणवाली ॥४॥ क्रियायोनि है वारुणों के द्वारा भूत-योनि होती है। उकार से प्रारंभ होने वाली छः अक्षरों वाली और मकार से अंत होने वाली भुवन और वन के लिए वह भूत-योनि है ॥५॥ भूत योनि के अनन्तर सात अक्षरों वाली व्योम से प्रारंभ और वायु देवता से अंत होने वाली वायव्या बीज योनिक है ॥ ६ ॥ इसे बीज योनि कहते हैं। नकार से प्रारंभ होने वाली मकार से अंत होने वाली व्योम से समीरण तक मध्य में तेरह अक्षरों वाली सृष्टि योनि है ॥ ७ ॥ प्रणव से प्रारंभ और अंत होने वाला, सम्पूर्ण वाङ्मय का संहार करने वाला एक मात्र प्रभु संहार-योनि है ॥ ८ ॥

ओंकार दो द्वारपाल हैं जो समस्त जीवों द्वारा धारण किये गये हैं ॥९॥ इस तंत्र की तीन पार्थिव योनियाँ हैं जो विभक्ति का प्रणवाष्टक बनकर भू लोक को व्याप्त करती हैं ॥१०॥ क्रमानुसार आदि वर्ण वाली अक्षरों की

---

१. परम योनि होना चाहिए ?

योनि होती है। ज्ञानी व्यक्तियों के लिए प्रणव द्वारा सर्वत्र बीजिन का कार्य होना चाहिए। इसे अपा योनि कहते हैं ॥ ११ ॥ समस्त जीवों के कल्याणार्थ तेजस की योनि होती है। जो कि अग्निवर्ण वाले महापुरुषों की उत्पत्ति के लिए है इसे आग्नेयी योनि कहते हैं ॥१२॥ शब्द रूपों की सृष्टि के लिए काल इत्यादि विधि से युक्त शब्द गुणों वाली आकाशात्मिका योनि होती है ॥१३॥ वांगमय की सिद्धि के लिए भूतयोनि का विधान कराये जो कि श्रेष्ठ योनि है और भकार से प्रारंभ होने वाली है ॥ १४॥ यम संज्ञा वाले चार अक्षरों को द्वार देश पर विनयस्त करके जो व्यक्ति विषम श्रेष्ठ देवता की उपासना करे वह सफलता प्राप्त करता है। इसे नपुंसक योनि कहते हैं ॥१५ ॥ इसके अनन्तर विश्व योनि है जो कि द्वारपाल रूपी नमस्कार वर्ण कही गई है। विश्व सृष्टि करने वाली तथा सर्वज्ञा कही गई है ॥१६॥

प्रणव तत्त्व के बीच में नमो नमो होना चाहिए। इस प्रकार का दीपन विश्व कल्याण के लिए होता है इसे विश्व योनि कहते हैं ॥१७ ॥ भूतात्मा के साथ परम कारण करना चाहिए। बीज योनि और सृष्टि और संहार-यह पुनः आठ हैं ॥१८॥ देवाधिदेव के विधान को मन से ही जो कीर्तित करता है वह समस्त बन्धनों से मुक्त होकर परम देवता में प्रवेश करता[1] है ॥१९॥ इस प्रकार सम्पूर्ण संसार के गुरु श्रेष्ठ देवता (सूर्य) विद्वानों द्वारा पूजा योग्य है चिन्तनीय है और परमार्थ की सिद्ध करने वाले हैं ॥२०॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में बीज-प्रसव नाम वाला ७४ वाँ अध्याय समाप्त होता है।

---

१ इस अध्याय में भी सूर्योपासना पर शैव प्रभाव परिलक्षित होता है

अध्याय ७५

इस प्रकार अंकुर सहित वह योनि बीज बताया गया ... विशाल प्रसव भी बताया गया। समस्त प्राणियों के लिए उसका पुण्य फल ...तदायक है ॥१॥ हे देव! पहले विषय में मुझे संशय है इसलिए कृपा करके उसे पुनः बतायें। मैं भगवान सूर्य में भक्ति रखता हूँ ॥२॥ यह ... सुनकर प्रभु ने विधिवत उसे बताया। समयादि के तत्त्व को और चतुर्विध दीक्षा को ॥३॥ यह ज्ञान उस भक्त के लिए है जो परीक्षित हो, सुभषण रत हो, विनीत हो, तपस्वी हो, क्रोधादि रहित हो ॥४॥ पहले कहे गये विधान के अनुसार देवेश की पूजा करके तब उसमें दशात्मिका भूत योनि का आवाहन करे ॥५॥ समस्त भूतों द्वारा देखकर श्मशान में सकलीकृत कर ... बार सम्पात् करके तदन्तर दर्भपुंज पर बैठें ॥ ६ ॥ दूसरे स्थान ... बैठे हुए आज्या आदि से सुपूजित शिष्य को और नीचे कुश के द्वारा तीन बार नाभि के ऊपर पवित्र करे ॥७॥ इसके बाद क्रमानुसार आहुतियां प्रदान करे। शिष्य में सम्पातों को गिराये और दोष मुक्त हो जाय ॥८॥ बाद में सूर्य के स्वरूप को सकलीकृत करके पवित्र होकर पुनः यज्ञ करे और दक्षिण दिशा में अग्नि स्थापना करके अपने पापों का हवन कर दे ॥९॥ तदन्तर अग्नि को लेकर उसमें भस्म मुष्टि प्रदान करे। इस प्रकार के व्रत का पालन करने वाले व्यक्ति की संस्कार[1] योग्यता बढ़ती है ॥१०॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर में बीजप्रसव में ७५वाँ अध्याय समाप्त होता है।

---

१. तान्त्रिक परम्परा में १० संस्कारों को स्वीकार किया गया है देखिए शक्ति एन्ड शाक्त, पृ० ४८३ तथा महानिर्वाणतन्त्र- २१६-२५३.

अध्याय ७६

इसके बाद इसकी (शिष्य की) योग्यता को जानकर गुरु संस्कार प्रारंभ करे प्राणी की पवित्र तत्त्वों से पूजा करके ॥१॥ दशात्मा विधान द्वारा संहार शक्ति का आवाहन करके आत्मा को सकलीकृत करके शिष्य में न्यासों का प्रयोग करे ॥२॥ पूजादिक को सम्यक रूप से सम्पन्न करके प्रतिमंत्र का प्रयोग करे तदन्तर अग्नि कर्म को प्रतिपन्न करे ॥३॥ पाप शुद्धि के लिए दस दिन तक यज्ञ करे। इससे ब्रह्महत्यारा भी पवित्र हो जाता है वस्तुत: अन्यत्र महापापों मे केवल तीन रात्रि का विधान है ॥४॥ प्रत्येक देवता को तीन आहुतियां देकर दक्षिणाग्नि में संहार संस्थित होकर गुरु क्रमश: लाभ प्राप्त करता है ॥५॥ आठ सौ आहुतियाँ देकर और इक्कीस सम्पातों का प्रयोग करके शिष्य के मस्तिष्क पर सम्पात का प्रयोग करे तथा शिवयोनि मे अंजलि प्रदान करे ॥६॥ दशात्मा के द्वारा तीन बार दर्भ में हवन करे और क्रिया योनि में निक्षिप्त करे ॥७॥ इस प्रकार संक्षिण क्रिया योनि में पुंसवन कर्म[1] करके इक्कीस बार चावल से हवन करे ॥८॥

इसी प्रकार दशात्मा मंत्र द्वारा मस्तक पर जल डालकर जात कर्म[2] करे और व्याहृति[3] होम करके पान करे ॥९॥ हिरण्यगर्भ की क्रिया योनि परम असित है। मधु से युक्त पदार्थ का हवन करके प्रशमन करे ॥१०॥

---

१. पुंसवन संस्कार के विस्तार के लिए देखिए **महानिर्वाणतन्त्र**, पृ० २३३ (१२८-३२)

२. **महानिर्वाणतन्त्र** पृ० २३६, (१४६-५७)

३. व्याहृति से अभिप्राय भू: भुव: स्व: से है। **महानिर्वाणतन्त्र** पृ० २२३ (५१ ७०)

और भी अन्यान्य जो प्राशन[1] आदि शिष्ट संस्कार है उन्हे भी काले मृग चर्म आदि प्रतीकों के साथ दशात्मा के द्वारा पूर्ण करे ॥११॥ कारण योनि में केन्द्रित होकर होम करे। सात व्रतों को सात-सात दिन तक करे ॥१२॥ यज्ञवान पुरुष वर रूप वाले कारण के लिए वैवाहिक कर्म करे ॥१३॥ यज्ञवान (पुरुष) हवियज्ञ द्वारा सोमपान करे ॥१४॥ तदनन्तर गूलर की लकड़ी पर विनयस्त दशात्मा मंत्र द्वारा न्यास करे ॥१५॥ देवता को निवेदित करके यज्ञ के अधिकारी को दक्षिणा देकर गुरु की प्रदक्षिणा करे और उससे आज्ञा ले ॥१६॥ इस प्रकार संस्कृत हुआ व्यक्ति समस्त सिद्धियों को प्राप्त करता है और मरने के बाद मोक्ष प्राप्त करता है और परम पद में प्रवेश करता है। इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर में बीजप्रसव में ७६ वाँ अध्याय समाप्त होता है।

---

१. अन्नप्राशन से अभिप्राय लगता है देखिए **महानिर्वाणतन्त्र** पृ० २३८, (१६५-७०)

अध्याय ७७

जिससे बन्धन का विनाश हो इसलिए यह यज्ञ शिव के समान है इसलिए इस श्रेष्ठ संस्कार का क्रमश वर्णन करूंगा ॥१॥ वीर पुरुष यथोचित रूप से देव का दर्शन करके और पहले की भांति संस्कार करके सम्यक रूप से भूतों का मण्डल विधिवत निर्मित करे ॥२॥ उस भूतों के मण्डल में देवता की यथोचित रूप से पूजा करके तत्वज्ञ व्यक्ति मन्त्र से पवित्रित जल द्वारा उस यज्ञ को पूर्ण करे ॥३॥ मंगलमय द्रव्यों से देवता को अभिषिक्त करके अलंकार को लेकर सुपूजित देवता को निवेदित करे ॥४॥ तदनन्तर प्रदक्षिणा करके विधिपूर्वक प्रणाम करके देवता से यह कहे कि आप प्रसन्न हो जाए ॥५॥ इस प्रकार यथाशक्ति व्रताचरण से मनुष्य बन्धनों से मुक्त हो जाता है और महान प्रसाद को प्राप्त करता है ॥६॥ इसके बाद दक्षिणाग्नि द्वारा सूर्ययोनि में विधान पूर्वक हविष्य देकर एकाग्रचित्त बैठकर ॥७॥ यथोचित पुरुष देव को स्थापित कर पूजित करे और इस प्रकार का निवेदन करे जिससे कि वह देवता उसके प्रति अनुग्रहवान हो ॥८॥

अग्नि की दिशा में और पूर्व की ओर पुरुष को स्थापित करके मंत्रों से हवन करे ॥९॥ शिष्य को अभिमन्त्रित करके १००–१०० आहुतियाँ दे ॥१०॥ घुटने के बल बैठकर मूलयोनि का सम्पादन करे ॥११॥ नाभि में भाव योनि होनी चाहिए ॥१२॥ हृदय में परमायोनि और बाहुओं में कारण वाली क्रिया योनि उसमें बीज बोना चाहिए ॥१३॥ तदन्तर अष्ट बीज के रूप में प्रकीर्तित संहार चक्षु हो ॥१४॥ पुष्प सहित अंगुष्ठ से न्यास करने पर सर्वत्र प्रशंसा होती है और इसके बाद पात्राधिवासित भस्म प्रतिमान के रूप में प्रदान करे ॥१५॥ साधक संपुट द्वारा विश्वसक तर्पण करे उससे विघ्नों का

निवारण होता है और भी कार्य होता है ॥१६॥ देवता के समक्ष उसका अनुशासन सुनाना चाहिए और कहना चाहिए कि आपके द्वारा शिष्य अनुग्रह योग्य है जैसे शास्त्र में अनिन्दित है ॥१७॥ देवता के समान सगोचर गुरु को भी यथावत संयुक्त करे और सबको प्रदक्षिणा करके देवता का विसर्जन करे ॥१८॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में विसर्जन[1] विधि नामक ७७ वाँ अध्याय समाप्त होता है।

१. तान्त्रिक पूजा में अनेक उपचारों का उल्लेख किया गया है जिनमें विसर्जन भी सम्मिलित है देखिए निबन्धतन्त्र, पटल ३८, फेत्कारिणीतन्त्र पटल ३

अध्याय ७८

अब इसके पश्चात मैं सन्यास के मार्ग को बताऊँगा ॥१॥ आज ही उन पाशों[1] को पूजा करके समादिरत करता हूँ। बिना यथोचित रीति से हवन किये हुए पूजा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। हृदय को हृदय में न्यस्त करके होम भस्मादि से निर्माण करे ॥२॥ कर्म सहित ब्रह्मसूत्र को स्वयोनि में विन्यस्त करे तदन्तर विश्वसृग्जाग्नि में यज्ञ करे और गृह आकर आचमन करे ॥३॥ अग्नि की प्रदक्षिणा करके बीजाक्षर के द्वारा ही पवित्र भस्मोदक पिये ॥४॥ और मैं सन्यस्त हूं इस प्रकार कहें और व्रत का आचरण करे। इसके बाद देवता अग्नि और गुरु-तीनों की प्रदक्षिणा करे ॥५॥ शिष्य के सहित सिर को मुण्ड कराके इसके बाद सब कुछ छोड़ दे। सुख और दुख में एक समान समझे। देव और लोक सबको समान माने ॥६॥ पवित्र जल से हाथ और पैर धोये इसके पश्चात धीरे धीरे संचरण करे। वर्षाकाल में सुनसान घर और वृक्ष के मूल भाग का आश्रय न ले ॥७॥ मौन भाव साधे और देह का ध्यान छोड़ दें, हृदयाधिप देवता का ध्यान धरे, देवता और गुरु को देखकर मनसा पूजा[2] करे ॥८॥ इस प्रकार का आचरण करता हुआ वह व्यक्ति निःसन्देह शुद्ध हो जाता है उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती और सर्व प्रकार से मुक्ति का अधिकारी हो जाता है ॥९॥ इसप्रकार श्री साम्ब-पुराण के ज्ञानोत्तर में ७८ वाँ अध्याय समाप्त होता है।

---

१. पाश—सन्यासबन्धन

२. वाह्य पूजा मानसिक पूजा के अभाव में व्यर्थ है। **महानिर्वाणतन्त्र,** ०पृ २५७-८४, **देखिए सनतकुमारतन्त्र** भूतशुद्धितन्त्र उद्धिरित वुडराफ, **प्रिन्सपिल्स आफ** तन्त्र, पृ० ७६९-७१

अध्याय ७६

जब राष्ट्र दस्युओं से नष्ट हो जाये अथवा बलवान शत्रु द्वारा पराजित हो जाये तब राजा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर चाहे जीर्ण हो चाहे विगत चेष्टा वाला हो सन्यास[1] से लौट आना चाहिए ॥२॥ इसके पश्चात लौटकर तीन दिन तक शुभ गोष्ठ[2] संहार मंत्र का जाप करे तदन्तर नमस्कार आदि पूजन द्वारा संभाष्य योग्य बने ॥३॥ इसके बाद स्नान कर पवित्र होकर देवाधिदेव को प्रणाम करके यह प्रार्थना करे कि मुझे क्षमा करें मेरी रक्षा करे ॥४॥ बीजयोनि का आवाहन करके इसके बाद पृथ्वी का सन्यसन करे जल को मस्तक पर डाले और दशात्मा द्वारा यज्ञ करे ॥५॥ संहार शक्ति का आवाहन करके आत्मा न्यास का प्रयोग करे सकलीकृत करके तदन्तर यज्ञ करे ॥६॥ इसके पश्चात शेष सौ हविष का पान करे प्रकृति को प्राप्त करके दीक्षा शक्ति प्राप्त करे ॥७॥ पार्थिव मन्त्रों से अग्नि में सौ घृताहुतिया देकर वारुण द्वारा हविष देकर उसी प्रकार पान इत्यादि करे जैसा पहले बताया गया है ॥८॥

तदन्तर बीजयोनि द्वारा स्तुति करके पूजा और प्रणाम करके यह प्रार्थना करे कि हे देवेश ! मैं कृपा के योग्य बनूं और काम और सब समृद्धियो के लिए समर्थ होऊं ॥९॥ इसका पूर्वपक्ष क्षमा कहा गया है इसी विधि में न्यास द्वारा निवर्तन करना चाहिए ॥१०॥ इस प्रकार श्री साम्ब पुराण में ज्ञानोत्तर में ७९वां अध्याय समाप्त होता है ।

---

१. द्रष्टव्य है कि भारतीयों की राजनीतिक चेतना एवं देश-भक्ति की भावना इतनी प्रबल थी कि राष्ट्रीय संकट में सन्यासियों के लिये भी विधान था कि वे संसार में लौट आयें ।

२. गोष्ठ का अर्थ यहाँ सभा अथवा समाज लिया जा सकता है

अध्याय 80

अथवा संशयापन्न स्थिति में तत्काल मुक्ति का प्रयत्न करे। दक्षिण-मूर्ति[1] में आश्रित होकर देवता की सम्यक रूप से पूजा करे ॥१॥ देवदर्शन के फल स्वरूप धीर स्थिर चित्त और दृढ़व्रत होकर पूर्वोक्त विधानानुसार अपने हृदय में परम पुरुष का न्यास करे ॥२॥ आचमन के बाद पुनः आचमन करके यथाक्रम मंत्रों का प्रयोग करे। वायव्य कोण में अग्नि को निविष्ट करके स्वंय को वहीं प्रयुक्त करे। तदनन्तर संहार देवता द्वारा अग्नि सृष्टि करे ॥४॥ संहार मह्नि कही गयी योनि पाप का विनाश करती है और तत्व बीज के जप से पाप को शीघ्र ही नष्ट करके ॥५॥ भ्रमेण योनि को दग्ध करके क्रमशः शिव योनि में प्रवेश करके इसके पश्चात एक संयुक्त होकर वायु के द्वारा अचलीकृत होकर ॥६॥ शिव और अग्नि की परिचर्या करे जिससे कि भूतक्षय हो। इसके पश्चात हृदय में कही गई अग्नि के समीभूत होने पर ॥७॥ शरीर के पापों को दग्ध करे। परमेष्ठी के मंत्रों का जप करे ॥८॥

द्वारों के शीर्ष पर मधपमंडली को ब्रह्मा ने व्यवस्थित किया इसके अनन्तर विद्वानो ने सौ यज्ञों के लोभ से अग्नि के मार्ग को रुद्ध कर दिया। अविनाशी ईश्वर के ऊँचे ललाट भाग को भेद कर प्रविष्ट हो गया। मकार से उत्पन्न होने वाले विसर्गास्त को स्वंय न आविष्ट करे। ॥९॥ इस प्रकार इस साधना द्वारा मनुष्य मृत्यु के अनन्तर परम शिव[2] में प्रवेश करता है ॥१० इस प्रकार साम्ब-पुराण में ज्ञानोतर में ८०वाँ अध्याय समाप्त होता है।

---

१. शिव का एक रूप जिसमें वह योग, ज्ञानादि के शिक्षक बताये गये हैं देखिए राव, एलीमैन्ट्स आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, २ (१), पृ० २७३.

२. शैव प्रभाव परिलक्षित करता है।

अध्याय ८१

इन आठो नामों के पश्चात अनुपूर्वी के अनुसार भिन्न भिन्न अर्थवेदन मे संवत्सर शरीर के रूप में परवान् योग विद्यमान है ॥१॥ इन प्रतिलोम प्रश्नी कहा गया है। इसे सात्विक पूजक क्रमशः दीप दिखायें और स्पर्श करे और २४ अग्नियों से ३ योगों से सम्पन्न करे विसर्गस्थ व्यंजन आदि और अंत मे उपस्थित होना चाहिए और अन्त में बिन्दु से संयुक्त हो ॥३॥ २२ अन्तराओं और ११ आकूर से युक्त हो और ओंकार तथा वषट्कार से दीप्त हो ॥४॥ अन्तस्थ वर्णों को तथा उष्मों को भी शलाका के अंत में संयुक्त करना चाहिए ॥५॥ अन्तग वर्णों को प्रतिमंत्र विधि से प्रसव में युक्त करे ॥६॥ अंत में अलग एक एक के तीन तीन खंड कल्पित करे ॥७॥ मन्त्रों के साधन से प्राण चालन में नित्य उद्योग करे ॥८॥

आसन पर क्षुरिका विन्यस्त करके मंत्र प्रयुक्त करे और तदन्तर शलाका पूजन करे ॥९॥ अग्नि के अर्चा विधान में दीपन और अभिषेचन में और ध्यान में जप करें और परम विधि का उपयोग करे ॥१०॥ शान्ति कर्म में शमी, बेल, पलाश, दूब काला तिल, कुश और फूलों के समूह प्रयुक्त करे ॥११॥ दूध सहित पुष्प वृक्षों का प्रयोग करे। किंशुक[1] वृक्ष नित्य धन प्रदान करने वाला है ॥१२॥ करवीर कनक यह वृक्ष क्षेम दायक है प्रियंगु और लोध्रपुष्प ये भी जीवन दायक है ॥१३॥ सतपुष्पों, बीजों, लवण

---

१. ढाक का वृक्ष जिसके फूल सुन्दर किन्तु निर्गन्ध होते है—विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुका: चाणक्यशतक, ७. ऋतु० ६.२०, रघु०, ३१.

मांस, और मल्लिका आदि को जप द्वारा होम कर्म में प्रयुक्त करना चाहिए ॥१४॥ कौवे और उल्लू के पंखों अथवा जिन जीवों में परस्पर बैर नही है उनके पंखों को प्रयुक्त करे ॥१५॥ बहेड़ा, खैर, सहचर और बासक इन लकड़ियों का प्रयोग उच्चाटन यज्ञों में करे ॥१६॥

स्वल्प विधानों में और परकीय तंत्रों में जो कुछ बताया गया है उन्ही से सबकी सिद्धि होती है ॥१७॥ जो रस विहीन हों बीजों का प्रयोग समस्त अभिचार कर्मों में ऐसे बाह्य प्रयोग करना चाहिए । ॥१८॥ कल्पों द्वारा कही गयी विधियों से सबको सिद्धि तत्काल करनी चाहिए ॥१९॥ मंत्र सम्पुट योग से शलाका से सिद्धि करे ॥२०॥ अरिष्ट और कर्लरी द्वारा दक्षिण निर्वाण का आवाहन करे ॥२१॥ तीनों लक्षों के योग से साधक को परमेष्ठिन को साधना चाहिए । क्रिया कारण को सिद्ध करने वाले व्यक्ति को यह सब कार्य श्रेष्ठ शिलातल पर करना चाहिए ॥२२॥ सूर्य देवता को कारण बनाकर की गयी यह साधना आनन्ददर्शिनी होती है । भूतेश्वर शंकर की साधना केवल जल और वायु का पान करके भयानक रात्रि में करनी चाहिए । ॥२३॥ साधना युक्त मनुष्य को श्मशान भूमि में भक्ष ग्रहण करते हुए सारी साधना करनी चाहिए ॥२४॥

ज्येष्ठ मास में जबकि बालू संलग्न रहती है साधक को सृष्टि का जप करना चाहिए ॥२५॥ जप के अंत में मंत्र साधक को दीपक दिखाना चाहिए भस्म को लगाये, भस्म में शयन करे और जौ का भोजन करे ॥२६॥भस्म निष्ठ साधक को भस्म द्वारा सिद्धि मिलती है यही भास्कर का व्रत है ॥२७॥ इसे सम्पन्न करने से क्रमशः साधक संक्रमण और विद्येशता को प्राप्त करता है ॥२८॥ व्रत के अंत में साधक पुरुष स्वेच्छा से बीज कार्य में संचारण करे जैसा कहा गया है मन्त्र कोष में अनेक शास्त्र है ॥२९॥ मूलो अथवा पके कंदमूल फलों तथा पत्रों का भोजन करे असमर्थ इस विधि से आठ याम का पान करे ॥३०॥ अथवा विधिपूर्वक मंत्रों द्वारा प्राप्त किया भिक्षा अन्न अग्निविधि के सहारे सिद्धि करे ॥३१॥ साधक व्यक्ति को चाहिए कि

व्योमस्थ अथवा अग्निस्थ कार्यों को संत्रत्नरतनु लिंगत पूजा मंत्रों के पूर्व सिद्ध करे ।।३२।। अनुलोम विधि से हृदय मंत्र का जप करके कर्तरि क्षीरकवच और शलाका इन तीनों का उपयोग करे। अर्गल, शिर, सौम्य, स्वायोनि, शिखा अपरा प्रतिमास्था और परा ये आठ शक्तियोनियां है ।।३४।। पूरब और पश्चिम में तथा दक्षिण और उत्तर में अथवा अन्याय दिशानुसार स्वरों की पूजा करे ।।३५।। प्रतिदिन यज्ञ करे और रात्रि में भी द्रव्यों के अभाव में मंत्र तत्पर होकर सिद्धि प्राप्त करे ।।३६।। और पृथक पृथक रूप से क्षुरिकादि साधक को जप से ही एक-एक योग की चतुर्मुखी सिद्धि प्राप्त करना चाहिए ।।३७।। इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्तर में ८१वाँ अध्याय समाप्त होता है।

---

१. भस्म-स्नान और भस्म-शयन पाशुपतों का विशिष्ट कर्मकाण्ड था देखिए **गणकारिका, रत्नटीका,** ७ पृ. १७ **सर्वदर्शनसंग्रह**, पृ. १६६ "...भस्मना त्रिषवणं स्नायीत भस्मनि शयीतेति" **बृहत्संहिता,** अध्याय ५९ पद्य १९.

अध्याय ८२

अब इसके उपरान्त मंत्र तत्त्व से उत्पन्न होने वाला परम रहस्य[1] बता रहा हूं जिससे कि चराचर युक्त सम्पूर्ण मंत्र पूर्ण तथा व्याप्त है।

फल, व्याघ, सम, अयालु, मध्य, मध्य, निविष्य ओऽम, किक्रा, समनी परम, परम, क्षूरिका, फट्ना, अयथाना अयन्ताना, आदि शब्दों से तथा दिग्दर्शित बीजों से बना हुआ मन्त्र कर्त्तरी (मन्त्र,) कहा जाता है। फट् सेपा तथा पीड़ा के योग से जो गां, गी, गुं, पं, नाम का चक्र बनता है उसे शलाका मन्त्र कहते है। जिह्वामूलीय नं क, ख, को जोड़कर परमेष्ठी आदि अक्षरों से दक्षिणा मन्त्र बनता है। इसके बाद हरा, योग शलाकों अर्क फट् गुददेश तथा वायव्य से फट् तक क्षूरिका मन्त्र होता है। यह क्षूरिका मन्त्र सभी नाड़ियों का विरोध करने वाला मंगलमय निरंजन के सभी मन्त्रों का सारभूत तत्त्व है तथा सभी मन्त्रों का उपकारक है। क्रिया के मन्त्र में सभी व्रतों के साथ इसका (क्षूरिका मन्त्र) प्रयोग[2] होता है। इस प्रकार का बीस लाख की संख्या वाला क्षूरिका मन्त्र[3] समाप्त हुआ। ब्रह्मा ने कहा-समस्त भूतों का आलय और समस्त प्राणियों के हृदय में यही भाव स्थित है ।।१।। विद्वान लोग हृदय में स्थित भाव-पुष्पों से सदैव अर्चना करते हैं। भावज पुष्पों से ही अर्चना करनी चाहिए अन्य से नहीं ।।२।।

---

१. मन्त्रों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों से अभिप्राय है।

२. बे० में प्रयोनामंत्राण अशुद्ध है, प्रयोगानामंत्रणा होना चाहिए।

३ तान्त्रिक अभिचार में प्रयुक्त होने वाला एक मन्त्र विशेष।

जरा मरण कारण दिव्य ब्रह्माक्षर पदों द्वारा प्रफुल्ल पद्म संस्थान मे स्थित मुख में ही उस देव की उपासना करनी चाहिए ॥३॥ विश्व के इस विशाल आयतन को ही हृदय समझना चाहिए ब्रह्मा के इस वचन को सुन-कर शंकर ने कहा ॥४॥ यत्न पूर्वक सुनो-तुम्हे पुष्पों का उपदेश कह रहा हूँ अहिंसा प्रथम पुष्प है तदुपरान्त इन्द्रियनिग्रह (दूसरा पुष्प) ॥५॥ (तीसरा) धृति पुष्प, (चौथा) क्षमा पुष्प, और (पाँचवा) शौच पुष्प, (छठा) अक्रोध पुष्प, सातवाँ लज्जा पुष्प ॥६॥ और आठवाँ सत्य पुष्प इनके द्वारा शिव प्रसन्न होते है ये आठों पुष्प[1] अक्षत और अव्यय हैं ॥७॥ इन पुष्पों को प्रभावतः प्रकल्पित करके निवेदित करें इस प्रकार जो सदैव अव्यय शिव को उपासित करता है ॥८॥

वह तमोद्वार का उद्‌घाटन करता है निरंजन शिव को देखता है। वैदिक लिङ्ग को प्रत्याहार के द्वारा करके ॥९॥

---

१. शिव की अष्टपुष्पों द्वारा पूजा भारतीय धर्मसाधना की एक विशेषता है देखिए **हर्षचरित** पृ०. २१, १०२, पाठक, **हिस्ट्री आफ शैव कल्ट्स इन नार्दन इण्डिया**, पृ० १७-१८. मजुमदार, रमेश, चन्द्र, **इन्सक्रिप्सन्स आफ कम्बुज**, पृ० १७७, के० भट्टाचार्य दी अष्ट मूर्ति कन्सेप्ट आफ शिव इन इण्डिया इण्डोचायना ऐन्ड इण्डोनेशिया, आई० एच० क्यु० २६, पृ०. २३३।

२. द्रष्टव्य है कि तान्त्रिक पूजा में शुद्ध भाव को ही प्रधानता दी गई है। तुलना के लिए देखिए **प्रिन्सपिल्स आफ तन्त्र**.

ध्यान धारण पुष्पों द्वारा अव्यय शिव की अर्चना करता है। तृणोन्धन क न्यास करके शरीर में अग्नि दीपित करता है ॥१०॥ मन को सुनिश्चित करके तद्गत दोषों से युक्त करके धारणा के सहारे नासाग्र भाग पर शिव का ध्यान धरे ॥११॥ इस प्रकार देहज पूजा को सम्पन्न करके सदा शिव की प्रकृष्ट इन्द्रियां क्षण भर में ह्रस्वता को प्राप्त हो जाती हैं ॥१२॥ ध्यान में मलग्न मंत्र साधक दोषों में लिप्त नहीं होता। और ज्ञान शुद्ध होकर विषय वासनाओं से अस्पष्ट होकर विचरण करता है ॥१३॥ मन को भाव[१] ग्राह्य बनाकर भोग्य ईश्वर को समझे। इस प्रकार वह साधक सर्वगोचर बनकर समत्व भाव को प्राप्त होता है ॥१४॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में ज्ञानोत्त... में ८२ वां अध्याय समाप्त होता है।

---

६ तुलना कीजिए गीता

अध्याय ८३

साधक व्यक्ति त्रिविधाकार और पंच संस्थित त्रिविधि निश्चल तन्त्र को त्रिविध योग से प्राप्त करता है ॥१॥ जिसका योग परम देवता से उत्पन्न शास्त्र में बताया गया हैं। ज्ञान, योग और कर्म के द्वारा उसी लिङ्ग का ध्यान सदैव करना चाहिए ॥२॥ अहिंसा, क्षमा, धैर्य, इन्द्रिय-निग्रह, शौच, अक्रोध, और सत्त्व से कर्मशास्त्र जानने वाले साधकों के लिए श्रेष्ठ तत्त्व है ॥३॥ शास्त्र ज्ञान से योग से और गुरु सेवा से इस प्रकार त्रिविध रीति से विकल्प मुक्ति बताई गयी है ॥४॥ श्वासन तथा अपान, निःश्वास उच्छ्वास तथा दृष्टियों में तीनों उपचारों में जब ज्ञान से समता हो जाय तब षटमान कारणों को योगी साधक व्यक्ति नियमित कर ले क्योंकि इसके उत्पन्न होने पर विषय रुपी सर्प क्रीडा करते है ॥६॥ तथा कथित कारणो विघ्नों का आवास नष्ट करके तथा स्वंय को संयमित करके सदैव गुरु की पूजा करनी चाहिए बिना विज्ञान योग के मृत्यु का विपर्यय संभव नहीं हैं ॥७॥ योग से ज्ञान अधिक प्रकृष्ट होता हैं और लौकिक कर्म हीन होता है विज्ञान से प्रेरित व्यक्ति कर्मयोग को सदैव दग्ध करे ॥८॥

एक मात्र ज्ञान के ही सहारे साधक स्वयं विचरण करे आत्मादि के भेद को जानने वाला सुख से विचरण करे ॥९॥ प्रकृति और पुरुष को जानकर ज्ञानी पुरुष कभी दुखी नही होता। इन सबके भी ऊपर और इसे भी सूक्ष्म सर्वव्यापी अव्यय शिव है ॥१०॥ ज्ञान बुद्धि स्वरूप उसी शिव को जानकर मनुष्य श्रेष्ठ वेदवित हो जाता है इस प्रकार स्वकर्म से ही कार्य होता .. न योग से न कर्म से ॥११॥ अपने ज्ञान से वह चराचर को देखता है जो

पुरुष प्रकृति में लीन है और प्रकृति बन्धनों में [illegible] हुई है ॥१२॥ पर और अपर कर्मों का रहस्य जानता हुआ साधक [illegible] कर्मों को न छोड़े। प्रकृति से श्रेष्ठ पुरुष है और प्रधान [illegible] है ॥१३॥ पर और अपर[1] का विचार करने वाले विवेकी पुरुष इससे मुक्त हो जाते हैं वह व्यक्ति उस प्रकृति में विपर्यय में स्थित है ॥१४॥ यदि [illegible] और [illegible] ही है तो फिर बन्धन किसका होगा और यदि बन्धन [illegible] है तो कैवल्य कैसे मिले ॥१५॥ और यदि पुरुष का [illegible] है तो वह निर्भर होगा इसलिए ज्ञानवान योगी सदैव सुख प्राप्त करता है ॥१६॥

कालान्तर में ज्ञान-योगी अपनी इच्छा से विचरण करता है उस ज्ञान संस्कार के कारण ही रक्षा में किसी को बाँधता है ॥१७॥ [illegible] आत्मज्ञान द्वारा सांसारिक बन्धन के नष्ट हो जाने पर वह [illegible] मुक्त हो जाता है ॥१८॥ इस प्रकार सम्यक ज्ञान के संयोग से वह आत्ममुक्त हो जाता है और आत्मा से आत्मा की हिंसा नहीं करता और न [illegible] की हिंसा करता है ॥१९॥ दिशायें उसके श्रोत्र में विद्यमान होती हैं और [illegible] श्रोत में व्यवस्थित होता है ॥२०॥ तब वह योगी [illegible] आत्मा से परमात्मा को देखता है। वायु का परित्याग करने पर ही आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है ऐसा कहा जाता है वायु को [illegible] गया है अतः योगी को शीघ्रता पूर्वक वायु को रोकना चाहिए ॥२१॥ आँख में उत्पन्न होने वाला रूप आँखों द्वारा ही ग्राह्य होता है ॥२२॥ [illegible] वाली जिह्वा रसज्ञ होती है और रस [illegible] होता है ॥२३॥ इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय में गन्ध का ग्रहण होता है और गन्ध पृथ्वी का गुण है [illegible] युक्त इस पृथ्वी में कुछ नहीं है ॥२४॥ अग्नि को सर्वत्र [illegible] है [illegible] कि समस्त आत्माओं में विद्यमान है वायु को वहीं पर [illegible] ॥२५॥

१. वे० में 'परावर' अशुद्ध है 'परापर' होना चाहिए।

इन्द्रियाँ इन्द्र द्वारा रक्षित होती हैं और हाथ इन्द्र से युक्त होते हैं। पुरुष पाणिसंयुक्त है और अज्ञान से लिप्त नहीं होता। ॥२६॥ विष्णु भोक्ता हैं और पापों का मुक्तिस्थान कहा गया है ॥२७॥ वायु वर्चस का मार्ग है और पुरुष उससे संयुक्त है दूसरा लिप्त नहीं होता है ॥२८॥ विश्वात्मा वह प्रजापति आनन्दित करता है श्रवण के अनुसार मन के प्रदेश को जाना चाहिए ॥२९॥ जहाँ आत्मा की स्थिति है वहीं मन की भी[1]। साधक का मन उससे संयुक्त होकर स्थिर हो जाता है ॥३०॥ 'मैं करता हूँ', यही अहंकार है। अहंकार से युक्त होकर मनुष्य श्रेष्ठ नहीं बन पाता[2] ॥३१॥ ब्रह्म का ज्ञान श्रेष्ठ है, सर्वात्मक है वह अज्ञान का विपर्यय है ॥३२॥

जो तत्वज्ञानी अन्तःकरण में त्रैविध्य को समझता है और जो तेरह तत्वों को जानता है वह योगवित है ॥३३॥ इन तत्वों के द्वारा आत्मा जानने योग्य है जो भाव अभाव्य हो उसकी भावना करनी चाहिए भाव-भावकों द्वारा जानने योग्य नहीं होते ॥३४॥ भाव के भावना ज्ञान से प्रजाओं का विपर्यय होता है त्रिशंक तत्त्व के जानने से ज्ञान होता है और ज्ञान योगवित को क्रम से मिलता है ॥३५॥ कर्मरत व्यक्ति इस रहस्य को जानकर मुक्त हो जाता है ॥३६॥ योग और साधना इसमें कभी ह्रास नहीं होता, अनेक बन्धनों से घिरे होने पर भी अनुसरण करता है ॥३७॥ योग के ही द्वारा विचरण करता है, योग से ही ज्ञानी होता है उसका संभव, प्रसव और आलय सब पृथक पृथक है ॥३८॥ करणों[3], आकृति और चित्त इन तीनों को और दश इन्द्रियों को भली भाँति भावित करना

---

१. आत्मा-परमात्मा में लीनता का आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

२. अहंकार ही बन्धन का कारण है देखिए **महाभारत**, शान्ति, ११२-२०

३. इन्द्रिय-वपुषा करणोज्झितेन सानिपतन्ती प्रतिमप्यपातयत, रघु ८.३८,४२.

चाहिए ॥३९॥ जो समस्त भावों द्वारा भावना योग्य नहीं है ऐसे इस प्रकार अव्यय शिव को जानना चाहिए और यह कार्य एक मात्र ज्ञान[1] से ही संभव है॥४०॥ लौकिक (प्राकृत) कर्म में भी शास्त्र के अनुसार शिव[2] का ध्यान करना चाहिए। श्री साम्बपुराण में-ज्ञानोत्तर में ८३ वाँ अध्याय समाप्त होता है।[3]

---

१. ज्ञानयोग को ही इस अध्याय में मुक्ति का साधन बताया गया है, तुलना कीजिए **श्वेताश्वतर उ०** ११२-२०.

२. ५५ से ८३ अध्यायों तक वर्णित सौरोपासना शैव प्रभाव से परिपूर्ण है देखिए हाजरा, आन साम्ब-पुराण, सोरवर्क, **अनाल्स आफ भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्सटीच्यूट**, ३६ (१९५५) पृ० ६८-८२,

३. ४७ से ८३ अध्यायों तक का भाग उत्तर कालीन है। १२५०-१५०० ई० के मध्य रचा गया होगा देखिए हाजरा, वही।

अध्याय ८४

श्री साम्ब ने कहा, हे भगवान! मुनिश्रेष्ठ! समस्त कुष्ठ रोगादि उपद्रवों[1] से प्राणीजन सदैव पीड़ित होते रहते हैं ॥१॥ जिस कर्म विपाक से, हे महात्मे ब्रह्मज्ञ! यह सब होता है वह सब सुनने की मेरी इच्छा है ॥२॥ नारद बोले-व्रतोपवासों द्वारा सूर्य देवता जिनके द्वारा अन्य जन्मों में नहीं सन्तुष्ट किए गए हैं हे यदुसिंह! वही मनुष्य कुष्ठरोगादि के भागी होते हैं ॥३॥ साम्ब बोले-हे मुनि! उनके रोगों का उपशमन कैसे होता है सत्य-सत्य मुझे बताइये? ॥४॥ नारद बोले-हे महाबाहु साम्ब! सुनो वे लोग सूर्य देवता की उपासना करें जिससे कि समस्त रोगों से मुक्ति मिल जाती है इसमें कोई संशय नहीं ॥५॥ साम्ब बोले-श्रुति का विस्तार करने वाले, प्रभूत अर्थ वाले इन समस्त रहस्यों को आपने बताया जिसे सुनकर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥६॥ सूर्य को उद्देश्य करके महात्मा पाठक को क्या देना चाहिए कि पाप नाशक सूर्य प्रसन्न हो जाएँ ॥७॥ नारद बोले-हे महाबाहु! निष्पाप साम्ब! सुनो मैं तुम्हें बता रहा हूँ उस सूर्य को जानकर यथाविधि उनकी पूजा करके ॥८॥

गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, स्वर्ण भूषण, वस्त्र, शिरोरत्न, आभूषण इन सबके द्वारा ॥९॥ सूर्य रूप वाले उस पाठक की पूजा करके पवित्र कपिला गाय दान दे। गेहूँ, जौ, उड़द और मूग का दान दे ॥१०॥ हाथी, घोड़ा,

---

१. द्रष्टव्य है कि साम्बपुराण की रचना का कारण साम्ब का कुष्ठ-रोगग्रस्त होना कहा जा सकता है वही विषय इस पुराण के अन्तिम अध्याय में पुनः प्रमुख हो गया है।

भैंस और विविध रत्न, सोना, चाँदी, कांच और ताँबे के बर्तन का दान दे ॥११॥ दास और दासियाँ दे और उपजाऊ जमीन दे। विशुद्ध मन से अनेक पट्ट वस्त्र दे ॥१२॥ जो सूर्य की दो पत्नियाँ—हैं निशुभा और राज्ञी, उनकी प्रसन्नता के लिए पाठक को वस्त्रालंकार देना चाहिए ॥१३॥ इस प्रकार जो व्यक्ति इस भूतल पर भक्तिपूर्वक दान कर्म सम्पादित करता है वह पुत्र पौत्रादि से संयुक्त होकर हर्ष से भरे हुए मन वाला होकर ॥१४॥ पृथ्वी पर समस्त भोगों को भोगकर सूर्य-लोक में आदर प्राप्त करता है अट्ठारहों पुराणों को पढ़ने से जो फल मिलता है वही फल उसे साम्ब-पुराण के पढ़ने से मिलता है यह मैं सब सत्य सत्य कह रहा हूँ ॥१५॥ इस प्रकार श्री साम्ब-पुराण में वसिष्ठ-बृहद्बल सम्वाद में ८४ वां अध्याय[1] समाप्त होता है। श्री साम्ब सदाशिव को अर्पित है। शुभ हो। यह ग्रन्थ समाप्त हो गया।

---

१ भाषा के इस आधार पर अध्याय को साम्ब-पुराण के मूल भाग का अंश, मान्य जा सकता है अस्तु इसकी तिथि ६००-८०० ई० के मध्य निश्चित की गई है देखिए हाजरा, वही पृ० ५७.

विशिष्ट ग्रन्थ-सूची

अग्रवाल वी० एस०, मार्कण्डेय पुराण, एक सांस्कृतिक अध्ययन, इलाहाबाद, १९६१

मत्स्य पुराण, ए स्टडी, वाराणसी, १९६३

वामन पुराण, ए स्टडी, वाराणसी, १९६४

अली एस० एम०, दी जियाग्रफी आफ दी पुराणाज़, दिल्ली, १९६६

आप्टे, वी० एस०, संस्कृत-हिन्दी कोश, वाराणसी, १९७३

अरोरा, आर० के०, दी मगाज, सनवरशिप ऐण्ड दी भविष्य पुराण, पुराणम् १३ (१) जनवरी १९७१

अवस्थी, ए० बी०, एल०, स्टडीज इन दी स्कन्द पुराण,

इग्लिङ्ग जुलियस, ए डिसक्रिप्टिव कैटलाग आफ दी संस्कृत मैनस्क्रप्ट्स इन दी लाइब्रेरी आफ इण्डिया आफिस, लन्दन (भाग ६) १९४४

कविराज गोपीनाथ, ए कैटलाग आफ संस्कृत मैनस्क्रप्ट्स इन गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज लाइब्रेरी, सरस्वती भवन, वाराणसी, (भाग १) १९१८-३०

काणे पी० वी०, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र भाग ५, (२), पूना, १९६२

कान्ताबाला, एस० जी०; कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दी मत्स्य पुराण, बड़ोदा, १९६४

कीथ ए० बी०, कैटलाग आफ दी संस्कृत ऐण्ड प्राकृत मैनस्क्रिप्ट्स इन दी लाइब्रेरी आफ इण्डिया आफिस, भाग २ (पार्ट १-२) आक्सफोर्ड १९३५

किरफिल, डब्लू० दास पुराण पंच लक्षण, बान, १९२७

गाङ्गाधरन एन०, गरुड पुराण, ए स्टडी, वाराणसी, १९७५

ग्यानी, एस० डी०, अग्निपुराण ए स्टडी,

चटर्जी, अशोक, पद्म पुराण, ए क्रिटिकल स्टडी, कलकत्ता, १९७२

दीक्षितार वी० आर० आर०, पुराण इन्डेक्स, मद्रास (भाग १-३) १९५१, ५२, ५५,

दी मत्स्य पुराण, ए स्टडी, मद्रास, १९३५

देसाई, एन० वाई, एन्सियन्ट एण्डियय सोसाइटी, रेलीजन ऐण्ड माइथालाजी ऐज डिपिक्टिड इन दी मार्कण्डेय-पुराण, बड़ौदा, १९६८

पारजीटर, एफ० ई०, पुराण, इन्साइक्लोपिडिया आफ रेलीजन ऐण्ड इथिक्स, भाग १०

दी पुराण टेक्स्ट्स आफ डायनस्टीज आफ दी कलि एज आक्सफोर्ड, १९१३

ऐन्सियन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रडीशन, लन्दन १९२२

पाटिल, डी० आर०, कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दी वायु पुराण, पूना, १९४६

पाण्डेय एल० पी०, सनवरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, वाराणसी १९७१

पुशालकर, ए० डी०;	स्टडीज इन दी इपिक्स ऐण्ड पुराणाज, बम्बई, १६५५
मिराशी, वी० वी०,	थ्री मोस्ट फमस टैम्पुल्स आफ दी सन, पुराणम्, (८) १६६६
मनकड डी० आर०,	पुराणिक क्रानालाजी.
मणि, वी०,	पुराणिक इन्साइक्लोपिडिया, वाराणसी, १६७४
बोनर, अलिस,	न्यू लाइट आन दी सनटेम्पुल आफ कोनार्क, वाराणसी, १६७२
बेहरा, के० एस०,	पामलीफ मैनस्क्रप्ट आन कोनार्क टेम्पुल, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस १६७४
बर्नेल ए० सी०,	ए क्लासीफाइड इन्डेक्स टू दी संस्कृत मैनस्क्रप्ट्स इन दी पैलेस ऐंड तन्जौर, लन्दन, १८८०
राय, एस० एन०,	पौराणिक धर्म एवं समाज, इलाहाबाद, १६६८
विल्सन, एच० एच०,	विष्णु पुराण (१-५) लन्दन १६६४-७०
वुडराफ सरजान,	दी गारलैण्ड आफ लेटरस मद्रास, १६७४
	प्रिन्सपिल्स आफ तन्त्र, मद्रास,
	शक्ति ऐंड शाक्त, मद्रास; १६६३
	दी सरपेन्ट पावर, मद्रास १६७४
	महानिर्वाण तन्त्र, मद्रास १६७१
वेदकुमारी	नीलमत पुराण भाग १ वाराणसी १६६८
	इन्ट्रोडक्शन टु तन्त्र शास्त्र, मद्रास १६६६

शास्त्री एच० पी०, ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग आफ संस्कृत मैनस्क्रिप्ट्स इन दी गवर्नमेन्ट कलेक्शन अन्डर दी केयर आफ एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, भाग ५ कलकत्ता १९२८

श्रीवास्तव, वी० सी०, सनवरशिप इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९७२

पुराणिक रेकार्ड्स आन दी सनवरशिप, पुराणम, ११ (२) जुलाई १९६९

एन्टीक्यूटी आफ दी मगाज इन ऐन्सियन्ट इण्डिया, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस १९६८, मगाज दी ईरानियन प्रीस्ट्स इन इण्डिया, ओसीरिज्म इन्टर यूनीवर्सिटी सेमीनार, सेन्टर आफ ऐडवान्स्ड स्टडी, डिपार्टमेन्ट आफ ऐन्सियन्ट हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर, कलकत्ता युनिवर्सिटी, १९६८, दी मगाज ऐण्ड दी सनवरशिप, आल इण्डिया ओरियन्टल कान्फ्रेन्स, अलीगढ़ १९६५

सनवरशिप इन बलि, ए हापोथीसिस पुराणम भाग १७ (१), जनवरी १९७५

शास्त्री एवं गुई, ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग आफ संस्कृत मैनस्क्रिप्ट्स इन दी लाइब्रेरी आफ संस्कृत कालेज, कलकत्ता, १९०२

शास्त्री, पी० पी० एस, ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग आफ दी संस्कृत मैनस्क्रिप्ट्स इन दी तंजौर महाराज सरफोजी महल लाइब्रेरी, तंजौर, श्रीरंगम, १९३२

स्टेटेन्कान, एच० वान०, इन्डिश्च सोनिन प्रीस्टिर साम्ब अण्ड देई शाकद्वीपीय ब्राह्मण, वेसबेडिन, १९६८

हाजरा, आर० सी०; स्टडीज इन दी पुराणिक रेकार्डस् आन हिन्दु राइट्स एण्ड कस्टम्स, ढाका १९४०

स्टडीज इन दी उपपुराणाज, भाग १ कलकत्ता, १९५८

दी उपपुराणाज, अनाल्स आफ भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट (२१) १९४०

दी साम्ब-पुराण थ्रु दी एजेस, जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी, लेटर्स, भाग १८ (२)

दी साम्ब-पुराण-ए सोरवर्क आफ डिफरेन्ट हैन्ड्स, अनाल्स आफ भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भाग ३६, १९५५

दी मोस्ट एन्शियेन्ट प्लेसेज आफ सन वरशिप, भारतीय विद्या, ४ १९४२-४३

शब्दानुक्रमणिका